# मेरी कलम व मेरे गुरुदेव

प्रथम भाग

गुरु सुदर्शन जन्म शताब्दी विशेषांक

आगम ज्ञाता योगीराज
गुरुदेव श्री अरुणचंद्र जी महाराज

# मेरी कलम
# व
# मेरे गुरुदेव

## भाग-1


प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थल

**रत्नत्रय प्रकाशन समिति, दिल्ली**

**पीपी-114, निकट गोपाल मंदिर, पूर्वी पीतमपुरा, दिल्ली**

**फोन न. : 9911177434**

**Website : www.gurusewakparivaar.org**

**e-mail : info@gurusewakparivaar.org**

प्रबंधन सहयोगी

पंकज जैन, अहमदगढ़

शब्दशिल्प, संयोजन एवं मुद्रण व्यवस्था

विमल विवेक जालंधर


### प्राप्ति स्थान

| | | | |
|---|---|---|---|
| कुशल जैन, गंगानगर | 9462961490 | नितिन जैन, दिल्ली | 9871416763 |
| विनोद जैन, जींद | 9462961490 | आशीष जैन, बड़ौत | 9837210341 |
| विनोद जैन, लुधियाना | 9814033180 | मुकेश जैन, दिल्ली | 9911177434 |
| दीपक जैन, नरवाना | 9034112000 | जय भगवान, गन्नौर | 9896617368 |
| राजेश जैन, पंचकूला | 9216640005 | वनीश जैन विक्की, भटिंडा | 9872900022 |
| संजीव जैन गोल्डी, जालंधर | 9417429000 | संजीव जैन, चंडीगढ़ | 9876180117 |

# शब्दातीत व्यक्तित्व के लिए
# दो शब्द......

कौन थे गुरु सुदर्शन? यह स्वयं में एक अद्‌भुत प्रश्न है। इस प्रश्न की थाह लेने के लिए अनेक जन्म भी कम पड़ सकते हैं।

'सुदर्शन' शब्द समक्ष होते ही, उनकी 76 वर्षीय फिल्म दिल के पर्दे पर चलने लगती है.... ! मन डूब जाता है उस फिल्म के रोमांच में.... सामने होती है एक प्रेरक जीवन की कहानी.... !

इस कहानी की शुरुआत उस बालक से होती है जिसे बचपन के उदयकाल में ही माँ का अभाव झेलना पड़ता है। फिर वैराग्य का किस्सा इस कहानी के साथ एक भावुक दृश्य के रूप में जुड़ता है। वह बालमानस उपजे विचारों को मूर्त्त रूप देने के लिए प्रव्रज्या का प्लेटफार्म हासिल कर लेता है। और! प्रारंभ हो जाता है उस कहानी का एक नया युग....अतिशीघ्र ही वह युग स्व-पर उद्धार का सार्थक उदाहरण बनता हुआ दिखाई देता है।

संयम-सेवा-स्वाध्याय-सरलता-सत्यता-समता-साधना-समन्वय-सादगीप्रियता की सीढ़ियों पर कदम-दर-कदम चढ़ते हुए कहानी एक ऐसा रूप ले लेती है जो सुर्खियों में सर्वश्रेष्ठ साबित होती है। इस फिल्म के कुछ दृश्य ऐसे भी रहे जिससे कहानी का इतिहास धुंधला हो सकता था परन्तु पात्र का किरदार इतना जोरदार और जबर्दस्त था कि धुंधलेपन की परछाई छू भी न सकी। वो सिरफिरी हवाएँ दूर से ही किनारा कर गईं। हर महापुरुष के जीवन में प्रतिकूलता की आँधी आती है अत: मेरे गुरुवर इसका अपवाद कैसे होते? वह उस आँधी में और ज्यादा अड़ोल-अकंप-अटल होकर निखरते गए। हर महापुरुष की उन्नति में व्यवधान के पत्थर बारिश बनकर बरसते हैं और महापुरुष होते हैं कि उन पत्थरों से घायल होने की बजाय पुल का निर्माण कर लेते हैं, फिर बुलंदी और आसान हो जाती है।

मैं क्यों न शुक्रिया करूँ उन आँधी और पत्थरों का जिनके कारण मेरे गुरुवर की जीवन रूपी फिल्म सुपरहिट हो गई। फिल्म का मध्यकाल मुख्य पात्र (गुरु सुदर्शन) को इतना उत्कर्ष देता है कि वो जन-जन के 'आस्था-स्थल' बन जाते हैं। उनकी प्रेरणा से लाखों मुखवस्त्रिका से सुसज्जित होते हैं। उनकी कृपा से हजारों परिवार निराशा के गर्त्त से बाहर निकलकर आशा की ओर उन्मुख होते हैं।

सबकी एक ही भावना हो चली थी कि ये फिल्म Unlimited समय के लिए चले, कभी समाप्त न हो पर शास्त्रों के शाश्वत सिद्धांत इस बात की अनुमति नहीं देते।

और 25 अप्रैल की शाम को अन्तत: भूकंप के समान वो अनचाहा पल भी आ ही गया जिसे स्वीकार करने के लिए लाखों भक्तों को अश्रुधारा बहानी पड़ी।

समग्र कहानी का सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन किया जाए तो यही ज्ञात होता है कि वह अपने लिए कम, अपनी परम्परा, अपने संयम व अपने अनुयाईयों के लिए अधिक जीए।

76 वर्ष अधिक 21वें दिन के आखिरी क्षण तक वह अपनी देह का लहू बाँटते रहे। उन्होंने कौम को अकेले दम वो दिया जो हजारों दम भी मिलकर नहीं दे सकते।

उनकी कहानी निड़रता-साहस-निर्लेपता-वैराग्य-प्रेरणा-हर पल मुस्कुराहट-दुख भंजकता-वात्सल्यता आदि असंख्य मौलिक गुणों से भरी थी। उस कहानी पर आज कायनात फिदा है।

आज हम अपने गुरु के विषय में गर्व और गौरव के साथ कह सकते हैं कि उनकी फिल्म का एक भी दृश्य ऐसा नहीं था जिसे मजबूरन सैंसर बोर्ड द्वारा हटाना पड़े। गुरुदेव जाते-जाते हमें भी यही प्रेरणा देकर गए हैं कि चादर को बेदाग-पाक रखना। उस युग के दिग्गज महापुरुष यथा वाचस्पति गुरुदेव, आचार्यश्री आनंदऋषि जी म., तपोधनी श्री बद्रीप्रसाद जी म., गणावच्छेक श्री बनवारी लाल जी म., भगवन् श्री रामप्रसाद जी म., तपस्वी श्री फकीरचंद्र जी म., आचार्यश्री आत्माराम जी म. तथा और भी अनेक इत्तर संघों के महापुरुषों के मुख से उस फिल्म को देखकर बरबस शब्द फूट पड़े-''सुदर्शन जी जैसी पुण्याई अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होती, इनका तो आचार्यों जैसा गौरव है।''

मैं अपने सौभाग्य को क्या शब्द दूँ जो मुझे ऐसे गुरुदेव की महानतम शरण मिली। आज भी मुझे अच्छे से याद है कि सन् 1975 होशियारपुर का वो पल....जब गुरु महाराज ने मुझे पहली नज़र में ही प्रभावित कर दिया था। एक वृक्ष के नीचे उन्होंने मंगलदेशना फरमाई तथा बाद में जब मैं दर्शनार्थ पक्तिबद्ध हुआ तो कृपा भरा हाथ मेरे सिर पर रखा। बस फिर तो एक धुन सवार हो गई कि अपना जीवन इन चरणों में अर्पित करना है। उन्होंने मुझे संयम ही नहीं अपितु सुरक्षा भी प्रदान करी। उन्होंने मुझे आज्ञा ही नहीं दी बल्कि आज्ञा पालन करने का बल भी दिया। यह मेरा सौभाग्य रहा कि वो मुझ से अपना दिल खोल लेते थे। अपने जीवन की आलोचना मुझ शिशु के समक्ष कर मुझे अहसास करवाया कि मैं वस्तुत: उनका कृपापात्र हूँ। यूँ तो दो ही चातुर्मास उनके चरणों में हुए पर वो सदा कहते थे-'अरुण मुनि! तेरा शिष्यत्व देखकर देखकर मेरी कृपा सहज ही अन्तर से बरसने लगती है, मैं सदा तेरे साथ हूँ।' सच कहूँ तो यह मेरे जीवन की सबसे बड़ी संतुष्टि है कि वह मुझसे सदा प्रसन्न रहे। मैं अपने आगमों का अनुभव आपके साथ सांझा करते हुए कहना चाहता हूँ कि शिष्य के लिए इससे बड़ी उपलब्धि हो भी नहीं सकती।

एक दिन सामूहिक रूप से संबोधित करते हुए फरमाने लगे-'अरुण मुनि! एक दिन ऐसा आएगा कि जम्मू से जयपुर तक का इलाका तेरा कायल होगा।' पर मैं इन दुनियावी बातों से ऊपर होकर सोचता हूँ तो 'सुदर्शन और जिनशासन' के समक्ष सब तुच्छ और नगण्य लगता है। ये दुनियावी बातें तो नश्वर हैं बस शाश्वत है तो केवल उन महापुरुषों के गुणों का सान्निध्य। आप सोच रहे होंगे कि मैं कहाँ से कहाँ पहुँच गया हूँ, क्या कहूँ? उन्होंने मुझे अपनी कृपाओं से इतना भिगोया है कि कृपा-सरोवर से बाहर निकल ही नहीं पाता हूँ....।

अब मैं संक्षेप में पुस्तक-निर्माण की योजना के विषय में कुछ बातें स्पष्ट करना चाहूँगा :

गुरु महाराज के जीवन से संबंधित आलेखन होता रहता है। प्रयासों की बहुलता रंग लाई है। मेरा तो मानना यह भी है कि उनको एक तंग गली के रूप में देखना ठीक वैसा ही होगा जैसे गंगा को किसी संकरी गली में बहते हुए देखना।

मन में विचार उपजा उस विस्तृत गंगा का दिग्दर्शन हो। वो गंगा किसी नए रूप में हर देहली को पवित्र करे। पर पुन: वह विचार शांत हो गया यह सोचकर कि पहले भी तो बहत कुछ लिखा जा चुका है। मेरे लिखने से कौन सी नूतनता आ जाएगी। फौरन विचार कौंधा क्यों नहीं?

नूतनता लाई जा सकती है और गुरु महाराज के जीवन को भिन्न शैली में प्रस्तुत करने की आवश्यकता भी है।

यह विचार तब तक विचार ही रहा जब तक श्रावकों एवं मेरे चरणानुवर्ती मुनियों के सुझाव नहीं आए। विचार कलम की सीढ़ी से कागज पर उतरने लगे और शुरु हो गया लेखन....। मैं आँखें मूँद कर बैठ जाता और उनके जीवन को नए सिरे से महसूस करता। एक-एक गुण को क्रमवार लिया और उससे संबंधित गुरु महाराज के जीवन में जो था लिख दिया, लिखता रहा....न दिमाग थका और न ही हाथ रुका....हालांकि जीवन-लेखन का यह मेरा प्रथम अनुभव है। साहित्य लेखन पूर्व में भी किया है पर यह उनसे कहीं भिन्न है। जहां पर व्यवधान आया मैं गुरु महाराज के सिमरण में खो जाता और यकिन मानिए व्यवधान, समाधान बनता नजर आता। कार्य को तेजी विहारों में मिली और विहारों में भी मुकेरियां से अमृतसर 110 किमी. जो मेरी जिंदगी का बगैर किसी पड़ाव के लगातार होने वाला लम्बा विहार था। स्थान-स्थान पर मैंने अपने अनुभव भी सांझा किए हैं।

शताब्दी वर्ष पर 100 तथ्यों के आलेखन से मुझे खुशी है। मैंने औपचारिकता की बजाय आत्मीयता से लिखा है। जो सुना-देखा-पढ़ा-समझा उसी के आधार पर शब्दों की सजावट को दरकिनार कर लिखा है। केवल उनके मौलिक गुणों को भावनात्मक अवस्था में स्थित होकर दर्शाने का प्रयास भर किया है।

प्रूफ रिड़िंग के दौरान पठन किया तो लेखन के सफल होने का अंदेशा हुआ। महसूस किया कि ऐसी पुस्तकों के माध्यम से उस अतीत हुई कहानी को पढ़ा-गाया और गुनगुनाया जा सकता है। बाकी पाठकों पर निर्भर करता है। मैंने अपना कर्त्तव्य निष्काम भाव से किया है। मैं जय/पराजय दोनों ही अवस्थाओं में संतुष्टी का लक्ष्य रखता हूँ।

जिन महानुभावों की बदौलत पुस्तक सम्पूर्ति तक पहुँची है यदि उनका नामेल्लेख रह गया तो पुस्तक सम्पूर्ण होकर भी मेरे लिए अधूरी रहेगी। अत: सर्वप्रथम सहयोग तो मेरे सप्तऋषि शिष्यों का उल्लेखनीय है। मेरे वरिष्ठ शिष्य श्री मनीष व अमन मुनि जो मेरा दायां व बायां हाथ बनकर मेरे तन व मन समाधि का ख्याल रखते हैं। श्री अतिमुक्त-अनुराग-अभिषेक मुनि, इस सम आयु की त्रिवेणी से मुझे बड़ी उम्मीदें हैं। इन्होंने होश संभालते ही मुझे गुरु रूप में स्वीकार कर लिया था। नवदीक्षित मुनिराज द्वय अभिनंदन मुनि व अरविंद मुनि, इस नवल कपोल की खिलखिलाहट मुझे आनंद विभोर कर देती है। यह शिष्यगण सूर्य (अरुण) के रथ को खेंचने वाले सप्त अश्वों के समान हैं।

इनके साथ ही पुस्तक में विशेष सहयोग करने वाले श्री पंकज जैन (अहमदगढ़) ने लेखन को व्यवस्थित रूप दिया। इनकी आज्ञा-आराधना कृपा को खेंच लेने वाली है। मैं अंत:करण से इनका आभार व्यक्त करता हूँ....।

और भी अनेक बंधुओं ने इस महायज्ञ में अपनी आहुति ड़ाली है पर सबका नाम संभव नहीं। इनका नामोल्लेख किए बगैर ही हार्दिक धन्यवाद।

आप कुछ ग्रहण करने की दृष्टि से पढ़े ताकि युग को फिर से 'सुदर्शन' मिलने शुरु हो जाए....यदि किसी में 'सुदर्शन' बनने या उनके अनुगामी होने का भाव उमड़ा तो प्रयास सफल समझूँगा। अंत में दशवैकालिक सूत्र की वो गाथा जिसे मैं पूज्य गुरुदेव के जीवन में चरितार्थ पाता हूं.....

***हत्थ-संजए पाय-संजए, वाय-संजए संजइंदिए।***
***अज्झप्प-रए सुसमाहियप्पा, सुत्तत्थं च वियाणई जे स भिक्खू***

यह आदर्श गाथा गुरुवर का स्मरण करवाती रहती है। अतिशयोक्ति/अल्पोक्ति हुई हो तो क्षमाप्रार्थी हूँ...। प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा में.....

# प्रकाशकीय...

**गुरु** सेवक परिवार उत्तर भारत का मानद संगठन है। परोपकार से परमात्मा की यात्रा ही इसका उद्देश्य है। इसके अन्तर्गत ही रत्नत्रय प्रकाशन समिति द्रुत गति से साहित्य की दिशा में गतिमान है। समय-समय पर आवश्यक साहित्य प्रकाशित होते रहे हैं....।

संघशास्ता गुरुवर का शताब्दी वर्ष आया तो सामूहिक रूप से निर्णय किया गया कि गुरु महाराज के जीवन से संबंधित कुछ नवीनता के साथ प्रकाशित हो, पर क्या? संशयात्मक स्थिति में हम गुरुदेव श्री अरुणचंद्र जी महाराज के सान्निध्य में पहुँचे तो विचार-विमर्श के दौरान ज्ञात हुआ कि गुरुदेव के उर्वर मस्तिष्क में यह योजना जन्म ले चुकी है। हमारे अनुरोध पर गुरुदेव ने लिखना प्रारंभ किया और गुरुदेवों की कृपा इतनी रही कि कार्य संपूर्ण होता नजर आया। आज विशेषांक हमारे हाथों में है। सर्वप्रथम आभार तो गुरुदेव का व्यक्त करते हैं जिन्होंने व्यस्तता के बावजूद हमारी भावना को साकार किया।

गुरुदेव का लक्ष्य आत्म साधना के साथ-साथ धर्म की प्रभावना का भी है। धर्म-प्रभावना के लिए हुए उनके प्रयास खूब रंग लाए हैं। बात चाहे इतिहास-अनुसंधान की हो, चाहे नव क्षेत्र निर्माण की या फिर साहित्य-सृजन की, हर दिशा में सार्थक कदम उठाएँ हैं। जिनशासन ने गुरुदेव को बहुत कुछ दिया है तो यह सत्य का दूसरा पक्ष है कि जिशासन की प्रभावना के लिए बहुत कुछ किया है।

पुस्तक को देखकर हम हैरान रह गए। संघशास्ता गुरुदेव के विषय में इतना लिखा जा सकता है, यह कल्पना वास्तविक हो गई। संघशास्ता गुरुदेव उत्तरी भारत की विश्रुत हस्ती रहे हैं। वह हमारे आध्यात्मिक जीवन के लिए ऑक्सीजन प्रदान करने वाले वो पेड़ थे जो स्वयं धूप सहकर भी भक्त को छाया प्रदान करते रहते थे

***'तमाम दिन जो धूप में झुलसते हैं***
***वो ही दरख्त मुसाफिर को छांव देते हैं।'***

कहना होगा-पेड़ को समयानुसार पतझड़ का भी सामना करना पड़ता है पर आप तो कमाल थे, हरदम बसंत वाले संत थे। एक कृपा और काबिले गौर है कि पेड़ तो आने वाले को छाया प्रदान करते हैं परन्तु आप तो इतने मेहरबान थो कि स्वयं जा-जाकर छाया प्रदान करते रहे।

ऋणी है उत्तरी भारत आपकी छाया का....मन में यही भाव उमड़ा था कि गुरुदेव के ऋण से किंचित उऋण हुआ जाए....इसी भावना के साथ हमारी पूरी टीम ने काम किया, पुरुषार्थ परिणाम में झलक रहा है।

पुस्तक के संपादन, प्रकाशन व लेखन से जुड़े सभी सहयोगियों का हम रत्नत्रय प्रकाशन समिति की ओर से आभार व्यक्त करते हैं। उनका यह सहयोग जनमानस के लिए निश्चित रूप से प्रेरणादायी बनने वाला है। इनके सहयोग से ही हमने पुस्तकों की संख्या में एक और महत्त्वपूर्ण अंक का इजाफा कर लिया है। यह संख्या निरंतर वर्धमान होती रहेगी, ऐसा लक्ष्य लेकर हम चले हैं।

आप अपने सुझाव व्यक्तिगत रूप से हमें भेजें। हम जिनवाणी के अधिकाधिक प्रचार-प्रसार के लिए संकल्पबद्ध हैं.....

**-रत्नत्रय प्रकाशन समिति**

# जीवन सर्वस्व

**-अरुण मुनि**

**न हर मजार पर यादों के दीप जलते हैं, न हर सीप में मोती सदा-सदा निकलते हैं।**
**बसन्त जिनके महकने से धन्य हो जाए, ऐसे महापुरुष सदियों के बाद मिलते हैं।।**

**25 तारीख** हमारे लिए कलमुंही अपशकुन भरी निकली कि हमारा सर्वस्व लुट गया। हृदय-सम्राट पथ-प्रदर्शक चला गया और एक मसीहा धरती को अलविदा कह गया। हम निष्प्राण से हो गए। मानों सूर्य को ग्रहण लग गया हो। चन्द्र को केतु ने ग्रस लिया हो। सुमेरू ढह गया हो। हृदय शून्यता से भर गया। मन किंकर्त्तव्य विमूढ हो गया। आंखें छल छला उठी, शब्द गूंगे हो गए और पैर लड़खड़ा गए।

फिर मन की एक अदृश्य-शक्ति से ऐसा आभास हुआ कि महापुरुष कभी विदा या जुदा नहीं होते। महापुरुष तो सदा अमर होते हैं। वो कभी **Out of Date** नहीं होते अपितु सर्वदा **up to date** रहते हैं। गुरु सुदर्शन नाम अमर हो गया।

सुप्रसिद्ध चिंतक इमरसन ने एक बार कहा था-'कब्र की मिट्टी में मेरा शरीर नश्वर है पर सुगन्ध की तरह सद्‌गुण चिरकाल तक महकते रहते हैं। व्यक्ति मरता है पर व्यक्तित्व अमर रहता है। व्यक्ति पंचभूत से बना हुआ है पर व्यक्तित्व चैतन्य-तत्व से निर्मित है जो शताब्दियों व सहस्राब्दियों तक अपना अस्तित्व बनाए रखता है। आने वाली पीढ़ियों के लिए वह प्रेरणा का पावन स्रोत होता है। प्रकाश स्तम्भ की तरह वह सर्वदा आलोक विकीर्ण करता रहता है। हमें पूर्ण विश्वास है कि अब गुरुदेव देव नगरी से अपनी कृपावृष्टि धरती पर बरसाते रहेंगे।

गुरुदेव कहाँ पैदा हुए उनका गोत्र क्या था? कौन-से खानदान के थे? उनका जन्म कब हुआ? ये महापुरुषों का मौलिक व्यक्तित्व नहीं होता। हर आदमी कहीं न कहीं तो पैदा होता ही है। जन्म को तो जैन दर्शन ने दु:ख रूप कहा है। जन्म का इतना महत्व नहीं जीवन का महत्व होता है। जन्म से कोई महापुरुष नहीं बनते जीवन से बनते हैं। हमारे चारित्र-नायक गुरुदेव ने ऐसा आदर्श एवं सहज जीवन जीया कि जिस से वे जन-जन की श्रद्धा के केन्द्र बन गए।

ठाणांग जी सूत्र में तीन बोल आते हैं कि देवता तीन कारण से पश्चात्ताप करते हैं : 1. मैंने पूर्वभव में लघुवय में संयम ग्रहण नहीं किया। 2.दीर्घ काल तक संयम पर्याय का पालन नहीं किया। 3. संयम यात्रा में विशेष ध्यान/ स्वाध्याय नहीं किया। पर मुझे खुशी है कि मेरे गुरुदेव को तीनों बातों का पश्चात्ताप नहीं करना पड़ेगा।

गुरुदेव संयम के पर्यायवाची बन गए थे। संयम शब्द आते ही अंगुली व दृष्टि आपकी ओर ही जाती थी। उन्होंने पंजाब की प्राचीन संयमी-परम्पराओं को अक्षुण्ण बनाए रखा। श्रद्धाओं को एक नया आयाम दिया तथा पूज्य आ. प्रवर श्री काशीराम जी महाराज की मुनि समाचारी को आमूल चूल ईमानदारी से पाला। सुविधावादी, स्वच्छन्दतावादी युग में गुरुदेव ने कठोर संयम पाला व पलवाया। उस युग की हवाओं में अपनी चाल को नहीं बदला। गुरुओं की परम्परा से विचलित नहीं हुए। गुरुदेव का अमूल्य मन्थन था कि आचार में दृढ़ता हो, व्यवहार में मधुरता हो साधक की तभी शान है। सिद्धांत-प्रिय होते हुए भी गुरुदेव का जीवन असाम्प्रदायिक था। उन्होंने कभी भी संप्रदायवाद का विष नहीं फैलाया। उन्होंने जीवन भर अपनी कोई धार्मिक पत्रिका, साध्वी संघ व श्रावक संघ का पृथक् गठन नहीं खड़ा किया। सबसे संतुष्टि वाली बात ये है कि गुरुदेव चमत्कारों से कोसों दूर रहे। गुरुदेव कहा करते थे कि मुनि मदारी नहीं होता। महापुरुषों का मापदंड चमत्कारों से नहीं, संयम से होता है।

गुरुदेव स्थानकवासी समाज के सुरक्षा कवच थे। वे लोकाशाह की गुणपूजक प्रणाली के सजग प्रहरी थे। आज का युग फोटो का युग है पर आज तक उनका स्वयं खिंचवाया हुआ कोई भी फोटो नहीं है। ताबीज व लॉकोटों से वह कोसों दूर थे। वे कहते थे कि गुरुओं को दीवारों पर मत टांगो हृदय में विराजित करो। उन्होंने अपनी जिन्दगी में किसी भी जड़ समाधि का समर्थन नहीं किया। तभी गुरुदेवों के शिष्यों की भी यही विचारधारा है कि गुरुदेव की भी जड़ समाधि नहीं बनेगी। गुरुदेव ये कहा करते थे कि अगर तुम संयम में रहोंगे तो तुम ही मेरे चलते फिरते स्मारक हो। तब मैं श्रद्धेय तपस्वीराज श्री प्रकाश चन्द जी महाराज की निश्राय में चार वर्ष का राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्रादि का प्रवास करके सन् 1993 में दिल्ली गुरुदेव जी महाराज के चरणों में आया तो एक बार प्रतिक्रमण से पूर्व प्रशांत विहार में गुरु महाराज को अर्ज की-'गुरुदेव! उत्तरी भारत के काफी श्रावक स्थानकवासी समाज के धर्म प्राण क्रांतिकारी वीर लोकाशाह के महान् व्यक्तित्व से अपरिचित है। उनके सिद्धांत वर्तमान में विशेष प्रासंगिक है। उनका गुणगान-दिवस रखा जाए।' गुरुदेव बोले-'तू ही हमारा लोकाशाह है। मैं तो शरीर से शिथिल हो गया अब तुम करो।' मैंने कहा-'गुरुदेव! आपकी दृष्टि के बिना न कोई कार्य सफल हुआ है, न होगा। तब गुरुदेव जी महाराज ने मेरी इस अर्ज को मानकर 23 मई 1993 में रोहिणी सैक्टर-3 में वीर लोकाशाह का स्मृति-दिवस मनाया। दिल्ली के इतिहास में शायद ही पहले कभी इस तरीके से सादगीपूर्ण लोकाशाह का स्मृति दिवस मनाया गया हो।

गुरुदेव के नाम के आगे एक विशेषण लगता था-'शासन-प्रभावक'। गुरुदेव ने जो जैन जगत में खासकर उत्तरी भारत के स्थानकवासी समाज में धर्म की प्रभावना करी है उसे सदियों तक याद रखा जाएगा। आज समाज में जो सामायिक की व्यापक प्रथा है ये गुरुदेवों की देन है। उन्होंने हजारों श्रावकों के मुहंपट्टी बंधवाई तथा उत्तरी भारत में कई नए क्षेत्रों का निर्माण किया।

ऐसे महान् मंगलकारी गुरुदेवों का शरण मुझे भी मिला है। मुझे भी फक्र है कि मैं भी गुरुदेव की माला का एक मोती हूँ। उन्होंने मुझ जैसे अनगढ़ पत्थर को तराश-तपाश कर संयम की प्रतिमा का रूप दिया। मेरे पूर्वजन्मों का कोई अनन्त पुण्य ही था जो ऐसे गुरुदेवों की छत्र-छाया मिली। मेरा जन्म शुद्ध स्थानकवासी ओसवाल (भावड़े) परिवार में हुआ। भटिंडा क्षेत्र निरंतर मुनियों की पद रज से तीर्थस्थली बना रहता था। मेरी संसार पक्षीय माता सुश्राविका श्रीमती दयावती को उनकी माता जी ने मेरे जन्म से पूर्व ये नियम करवा दिया था कि अगर तेरी कोई संतान दीक्षा के पथ पर अग्रसर होना चाहे तो रोकना मत। माता जी के कारण बाल्यकाल से धर्म संस्कार प्रबलतम थे। भटिंडा में संत विराजमान होते

तो उनका आदेश यही होता था कि पहले दर्शन करो फिर भोजन करो। बचपन से मेरे मन का ये दृढ़ संकल्प था कि मुनि बनना हैं। जहाँ तक मुझे याद पड़ता है कि मेरी मनोभूमि में वैराग्य का बीज किसी मुनिराज ने नहीं डाला। वैराग्य का बीज पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण सहज ही डाला था। कई वर्षों तक संघर्ष चलता रहा। परिवार वालों ने आज्ञा नहीं दी। मेरे भाव प्रबलतम होते गए। मैंने कहा-आज्ञा दोगे तो गुरुचरणों में जाऊँगा, भागकर नहीं। आखिर परिवार को झुकना पड़ा। मेरे साथ एक समस्या और थी कि जिन संतों से मैं परिचित था वहां मेरा दीक्षा लेने का मन नहीं था। मेरा लक्ष्य प्रारंभ से ही शुद्ध संयम पालने का था। मुझे किसी सद्गुरु की खोज थी जहाँ मैं स्वयं को समर्पित करके निश्चिंत हो जाऊँ। मैंने अपने संसारपक्षीय पिता श्री हंसराज जी से कहा-'मेरे लिए किसी पथ प्रदर्शक गुरु की खोज करो। आत्मार्थी रायचंद भाई ने एक जगह लिखा है-'साधक! तुम सारी खोजें छोड़कर सर्वप्रथम सद्गुरु की खोजें कर। फिर मोक्ष दूर नही। मेरे संसारी पिताजी व ताया जी पंजाब के सभी संतों से परिचित थे। उन दोनों की अंगुली गुरुदेव जी महाराज की ओर गई।

**शैले-शैले न माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे-गजे।**
**साधवो नहि सर्वत्र, चन्दनं न वने-वने।।**

पिताश्री जी ने मुझे कहा 'उत्तरी भारत की श्रमण परम्परा में गुरुदेव श्री सुदर्शन लाल जी महाराज संयम की साक्षात् प्रतिमा है। कथनी व करनी के धनी है। अनुशासन गजब का है। उन्हीं ने पंजाब परम्परा के जैनाचार्यों की संयम-मूलक परम्पराओं को जीवित रखा हुआ है। उनकी जीवन यात्रा में सारे आचार्य, उपाध्याय और मुनि समवेत प्रतिच्छायित हुए हैं। तुम्हें हम ऐसे गुरु भगवन्तों के चरणों में ही सौंपकर आएंगे।'

दिसम्बर सन् 1981 में वे मुझे बुटाना ग्राम में गुरु महाराज के चरणों में सौंप आए। गुरुदेव जी महाराज से ये मेरा प्रथम परिचय था। गुरुदेव के प्रथम दर्शन से ही मैं मंत्र मुग्ध हो गया। उनकी करुणा-भरी दृष्टि ने मेरे वैराग्य के अंकुर को वटवृक्ष का रूप दे दिया। वह हरियाणे का इलाका मेरे लिए अपरिचित-सा था। यहाँ का खानपान बोली और कुछ व्यक्तियों का व्यवहार मुझे अटपटा लगा। इस वातावरण से मेरे मन में ऊहापोह हो गया। गुरुदेव समयज्ञ थे। उन्हें समझते देर न लगी। मुझे एकांत में बुलाकर बोले-'अरुण! संयम व सुविधा का कोई मेल नहीं है। संयम का मार्ग तो कांटों का मार्ग है।' यह कहते हुए अपना वात्सल्य-पूर्ण वरदहस्त मेरे सिर पर रखा। मेरा मन पूर्णत: समाहित हो गया। अन्यथा पता नहीं आज जीवन की क्या दशा होती।

**तुम्हारे नाम में यश था, तुम्हारे वचन में रस था।**
**त्याग व संयम की प्रतिमूर्ति! तेरा युग तेरे वश में था।।**

एक सप्ताह में गुरुदेव जी महाराज ने अपने मुखारविन्द से मुझे सामायिक के पाठ, 25 बोल, साधु प्रतिक्रमण कण्ठस्थ करवा दिया। अभी मेरा अंतराय कर्म प्रबलतम था कि मेरी समाना वाली संसारी बहन जबरदस्ती मुझे समाना अपने ससुराल ले गई। मैं पंजाब का प्रथम ही वैरागी गुरु-चरणों में आया था। उस मौके गुरुदेव ने मेरे पर अनन्त कृपा करके निरंतर मेरे से संपर्क बनाए रखा। जिससे मेरा मनोबल दृढ़ बना रहा। जब मेरा मन प्रलोभनों से प्रभाविक नहीं हुआ, तो मुझे पुन: 12 फरवरी 1982 को नरवाना गुरुचरणों में सौंप दिया।

गुरुदेव ने 24 अप्रैल 1982 को मुझे भागवती दीक्षा देकर अपनी शरण में ले लिया। 24 अप्रैल को देवसी प्रतिक्रमण से पूर्व गुरुदेव ने 3 शिक्षाएं दी :- 1. श्री मयाराम जी महाराज की संयमी परम्परा की आन, कान-शान को सुरक्षित रखना। 2. गुरु से पर्दा न करना । 3. गुरु आज्ञा को आगे रखकर चलना। उसके बाद प्रथम चातुर्मास बरनाला गुरु महाराज के चरणों में ही हुआ। उस चातुर्मास में मैंने गुरुदेव की अनुकंपा

से बीकानेर की जैन विशारद की परीक्षा दी। गुरुदेव ने मेरे विद्याध्ययन पर विशेष ध्यान दिया। तब मैंने शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की। समय-समय पर गुरु महाराज ने सारणा, वारणा व धारणा के द्वारा तराश कर मेरे संयमी जीवन का संवर्धन किया।

सन् 1996 में गुरुदेवव ने फरमाया कि इस वर्ष तेरी जन्म व दीक्षा-भूमि पर तेरा प्रथम चातुर्मास करवा ने का भाव है। मेरे मन में कुछ ऊहापोह था। मैंने कहा, गुरुदेव! मेरे में इतनी योग्यता नहीं है। वे बोले-'चातुर्मास तेरा नहीं मेरा है। मैं तेरे साथ हूँ। फिर बोले-'तेरे पास आगम, विवेक, कथा तथा गुरुकृपा ये चार चीजें है। फिर क्या कमी है।' इस तरह गुरुदेव अपने शिष्यों को होंसला देकर शासन की प्रभावना करवाते थे तथा क्षेत्रों में अपना ही प्रतिनिधि बनाकर भेजते थे। भटिंडा चातुर्मास करने से पूर्व मुझे तीन शिक्षा दी-तेरा प्रथम स्वतंत्र चातुर्मास करवा रहे हैं। तीन बातों का ध्यान रखना 1. समाज की राजनीति में नहीं पड़ना। 2. पास के मुनियों का पूरा ध्यान व सम्मान रखना। 3. अपने संसारिक परिवार से निर्लेप रहना।

भंठिडा चातुर्मास के बाद 1997 में जींद में गुरुदेवों के पावन दर्शन हुए। तभी जींद में मैंने एक बार पृच्छना करी- गुरुदेव! मंत्र व शास्त्र गाथा में क्या अंतर है? गुरुदेव बोले-'एक हीरा है व दूसरा कंकर है। मंत्र तो कंकर है।' तभी मैंने गुरु महाराज से कहा-'नियम करवा दो कि किसी को मंत्र नहीं दूँगा। तब गुरुदेव ने मुझे चार शास्त्रीय गाथाएं दी और बोले-ये दे सकते हो। ऐसी अगाध अटूट श्रद्धा थी आगम वाणी के प्रति गुरुदेव की। आगम तो उनके मुख पर ही बसता था। जब श्रद्धेय श्री प्रकाश चंद्र जी महाराज के चरणों में मेरा राजस्थान विचरण चल रहा था। तब में कभी-कभी आगमीय प्रश्न समाधान के लिए गुरु-चरणों में भेजता रहता था। तब एकदा गुरु महाराज के पत्र में आया कि आगम मंगलकारी है। आगम की रूचि रखने वाले मुनियों को देखकर मेरा रोम-रोम खिल उठता है। पिछले कई वर्षों से गुरुदेव दिनभर आगम-श्रवण में ही रत रहते थे। उन्हें भीड़ों में रूचि न थी। शस्त्र-श्रवण में विशेष रूचि थी।'

**'तेरी ज्योति से नूर मिलता था,**
**गमे दिल को सरूर मिलता था।**
**जिन के सर तेरे कदमों पर झुकते थे,**
**उनको कुछ न कुछ जरूर मिलता था।**

जब मैं सन् 1997 में दूसरे स्वतंत्र चातुर्मास के लिए नवांशहर की ओर प्रस्थान कर रहा था तो लुधियाना में मुझे कमर में विशेष दिक्कत हो गई। मुझे कुछ आर्तध्यान हुआ। मेरा मन लुधियाना चातुर्मास करने का बन रहा था। डा.वर्ग भी यही कह रहा था कि आपको चलना नहीं चाहिए। मन में विशेष ऊहापोह चल रहा था। तभी गुरुदेव का पावन-पत्र आया, मन को समाधान मिल गया। गुरुदेव ने फरमाया, 'आप निश्चिन्त होकर साधु मर्यादा में ईलाज कराएं। चातुर्मास नवांशहर ही होगा। आप ठीक हो जाएंगे।' जैसा-जैसा गुरुदेव ने पत्र में लिखा था अक्षरश: वही हुआ। नवांशहर चातुर्मासोपरान्त अंबाला में गुरुदेव के पावन दर्शन हुए।

अंबाले का प्रवास मेरी जिन्दगी के लिए स्वर्णिम ही रहा। विशेष ही आनन्दानुभूति व गुरुकृपा मिली। अंबाले में 3 जून को गुरुदेव ने मुझे अपने पास कमरे में बुलाया। मैं वंदन करके चरणों में बैठ गया। तभी गुरुदेव पट्टे से नीचे उतरकर एक दम मेरे सामने बैठ गए। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। पता नहीं क्या बात है। मैंने अपना आसन दिया। गुरुदेव बोले-'आज मैं अपनी आलोचना करना चाहता हूँ। तुम ध्यान से सुनो। तेरे पर मुझे विश्वास है। तुम हलुकर्मी हो।' मैंने कहा-'गुरुदेव! मैं तो

लघुमुनि हूँ। अन्य भी महामुनि है।' मैं वाक्य पूरा भी न कर सका तभी गुरुदेव बोले आप ध्यान से सुनो-इस से पूर्व भी मैंने महामुनि श्री रोशन लाल जी महाराज से अपनी आलोचना की थी। काफी समय तक गुरुदेव अपने जीवन की आलोचना करते रहे। ऐसे निश्चल हृदय से कोई विरत ही साधक आलोचना कर सकता है। वे बोले-'हृदयस्थ रखना।' ऐसी कृपा गुरुदेव ने मुझ नादान पर बरसाई। गुरुदेव पापभीरू थे। उनके रोम-रोम में आत्म-कल्याण के भाव थे। एकदा 5 जून को मैं गुरुदेव को अंबाला में आहार के लिए अंदर कमरे में ले जा रहा था। गुरुदेव का हाथ मेरे कंधे पर था बोले- 'अरूण। तू निकटभवी है परित्त संसारी है। मुझे ऐसा आभास लगता है आगे केवली जाने।' गुरुदेव के इन शब्दों ने मुझे धन्य-धन्य कर दिया। एक साधक को और क्या चाहिए? मेरा रोम-रोम खिल उठा मैंने कहा-'गुरुदेव! आपकी वाणी सत्य है और सत्य हो। मुझे भव-भव तक आप सरीखे गुरु का शारणा मिले।'

एकदा गुरुदेव बोले-'अरुण! जब तू कथा करता है तेरी आवाज में मेरा लटका आता है तूने मेरा गला ले लिया।' मैंने कहा-गुरुदेव! आपकी पूर्ण कृपा मेरे पर है। आपश्री जी का नाम लेकर ही प्रवचन प्रारंभ करता हूं। आप श्री जी के नाम में ही चमत्कार है।

सन् 1995 के अंबाला चातुर्मास के बाद पटियाला में गुरुदेव के पावन दर्शन हुए। एकदा रात्रि को प्रतिक्रमण के बाद गुरु महाराज से पृच्छना की 'गुरुदेव कई वर्षों से मेरे मन में यह ऊहापोह रहता है कि इस भव में तो आपकी पावन शरण मिल गई। आगे मेरा जन्म कहाँ होगा? जैन धर्म कैसे मिलेगा? कल्याण कैसे होगा? कहीं भटक तो नहीं जाऊंगा। गुरुदेव ने एक ही वाक्य में मेरा समाधान कर दिया-'बोले वर्तमान में अपनी समकित दृढ़ रखो। भविष्य की चिन्ता न करो।' तभी मेरे मन को समाधान मिल गया। कुछ देर बाद गुरुदेव बोले-'अरूण! मैंने लगातार तेरे तीन चातुर्मास पृथक् करवाए। तू पास है। मैंने तुझको पास कर दिया, तू पुण्य का धनी है। मैं तेरे पांच और चातुर्मास पृथक् करवाना चाहता हूं। पर मैंने आग्रह किया कि इस वर्ष तो मेरा चातुर्मास आपश्री के चरणों में ही होगा। कैथल जाकर गुरुदेव ने मुझे साथ रखने का आश्वासन देकर महती कृपा भी कर दी थी, पर विधि का विधान कुछ और था। चातुर्मास से पूर्व ही गुरुदेव हम सब को असहाय छोड़ गए। कल्पनाओं का महल ढ़ह गया। मन मायूस हो गया। अब देखों कब गुरुदेव अपने साथ चातुर्मास करवा हैं।

गुरुदेव तो वाग्मी थे। शब्दों के बादशाह थे। कोकिल कंठी थे। वाग्मी का विरुद बहुत ही कम वक्ताओं को प्राप्त होता है। सौभाग्य की बात है कि गुरुदेव को प्राप्त था।

वे कुदरत की अद्‌भुत विरल कृति व विभूति थे। मैंने राजस्थान आदि के प्रवास के समय कई बड़े-बड़े संतों व आचार्यों को देखा, जो सर्वांग विलक्षण व्यक्तित्व गुरुदेव का था वह मुझे कभी न मिला। आश्चर्य तो इस बात का है कि एक ही व्यक्तित्व में अगणित विलक्षणताएं भरी हुई थी। आज गुरुदेव चले गए पर अपने पीछे संगठित, सुगंधित और संयमित शिष्यों की कतार छोड़ गए हैं। फूल चला गया, पर सुगंध कायम है।

मेरी तो गुरु महाराज को यही सच्ची श्रद्धांजलि है कि आपने जो मार्ग बताया है उस पर हम चलते रहेंगे। ऐसा मेरा दृढ़ प्रण है। जो संयम की चादर सन् 1983 में हमें दी थी। उस पर स्वप्न में भी दाग नहीं लगाऊँगा तथा आपकी दी हुई विरासत को संभालकर रखेंगे। इसी गच्छ में शुद्ध संयम पालकर अपने लक्ष्य को पाएंगे।

**'सुदर्शन-सुदर्शन बोलो रे बड़ा प्यारा है नाम,**
**पापमल अपने धो लो रे बड़ा प्यारा है नाम।**
**प्रातः जपो और सायं जपो रे, खाते जपो और पीते जपो रे,**
**जय सुंदरी के लाल की बोलो रे बड़ा प्यारा है नाम।।'**

जय सुदर्शन 卐 जय अरुण
4 अप्रैल 2022-23
GSP
GSP
100
GURU SEWAK PARIVAAR
SOCIAL HELPING HAND
गुरु सुदर्शन
जन्म शताब्दी वर्ष

# श्रीमत् सुदर्शन गुरवे नमः

## अनुक्रमणिका

01 जन्म शताब्दी वर्ष और गुरुदेव 1 - 3

02 जन्मभूमि और गुरुदेव 4 - 6

03 बाल्यावस्था और गुरुदेव 7 - 9

04 युवावस्था और गुरुदेव 10 - 12

05 वैराग्य जीवन और गुरुदेव 13 - 15

06 गुरुत्व और गुरुदेव 16 - 18

07 विनम्रता और गुरुदेव 19 - 21

08 बुद्धि-वैभव और गुरुदेव 22 - 24

09 दादा गुरुदेव और गुरुदेव 25 - 27

10 द्वितीय गुरुभ्राता और गुरुदेव 28 - 31

11 तृतीय गुरुभ्राता और गुरुदेव 32 - 34

12 चतुर्थ गुरुभ्राता और गुरुदेव 35 - 38

13 गुरु परम्परा और गुरुदेव 39 - 41

14 पूज्य योगीराज रामजी लाल जी म. और गुरुदेव 42 - 44

15 पूज्य भंड़ारी बलवंत राय जी महाराज और गुरुदेव 45 - 47

16 करुणा और गुरुदेव 48 - 50

17 समय प्रबंधन और गुरुदेव 51 - 53

18 सामायिकऔर गुरुदेव 54 - 56

19 दिनचर्या और गुरुदेव 57 - 58

20 दिव्य संदेश और गुरुदेव 59 - 61

21 कलाएं और गुरुदेव 62 - 67

22 समकालीन आचार्य और गुरुदेव 68 - 71

23 चुनौतियां और गुरुदेव 72 - 74

24 लोच और गुरुदेव 75 - 77

25 सेवाभाव और गुरुदेव 78 - 80

26 वैरागी और गुरुदेव 81 - 83

27 ईयासमिति और गुरुदेव 84 - 86

28 भाषा समिति और गुरुदेव 87 - 89

29 एषणा समिति और गुरुदेव 90 - 92

30 आदान भंड मात्र निक्षेपणा समिति और गुरुदेव 93- 94

31 उच्चार प्रश्रवण परिट्ठावणिया समिति और गुरुदेव 95 - 97

32 मनगुप्ति और गुरुदेव 98 - 99

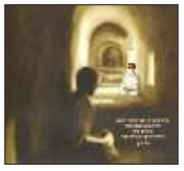

33 वचन-गुप्ति और गुरुदेव 100 - 102

34 काय गुप्ति और गुरुदेव 103 - 105

35 प्रतिलेखना और गुरुदेव 106 - 108

36 प्रतिक्रमण और गुरुदेव 109 - 111

37 जप साधना और गुरुदेव 112 - 114

38 संत मिलन और गुरुदेव 115 - 117

39 भजन और गुरुदेव 118 - 120

40 चमत्कार और गुरुदेव 121 - 124

41 अनुशासन और गुरुदेव 125 - 128

42 रोग और गुरुदेव 129 - 131

43 तप और गुरुदेव 132- 134

44 संयम और गुरुदेव 135 - 137

45 ज्योतिष और गुरुदेव 138 - 140

46 निमितज्ञ और गुरुदेव 141 - 143

47 देवता और गुरुदेव 144 - 146

48 जीवनशैली और गुरुदेव 147 - 149

49 माइक और गुरुदेव 150 - 152

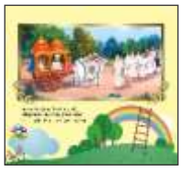

50 वाहन और गुरुदेव 153 - 155

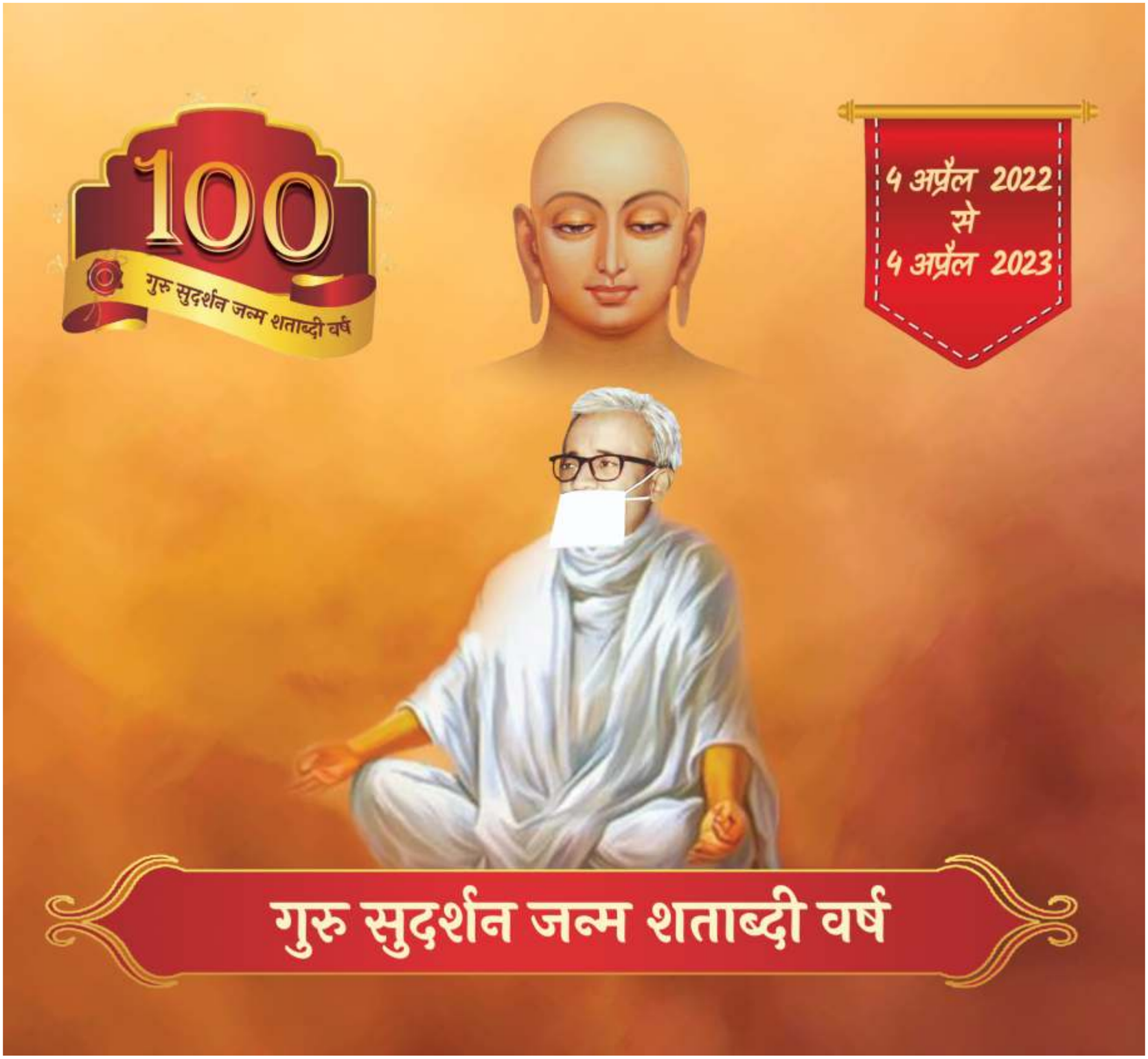
100
गुरु सुदर्शन जन्म शताब्दी वर्ष
4 अप्रैल 2022
से
4 अप्रैल 2023
गुरु सुदर्शन जन्म शताब्दी वर्ष

# 01 | जन्म शताब्दी वर्ष और गुरुदेव

**महापुरुषों** का जन्म ईश्वर की भाँति दिव्य होता है। वे भूलोक के प्राणियों के लिए प्रकाशस्तंभ होते हैं। उनके प्रत्येक कार्य में दिव्यता का समावेश होता है। कोई भी महीना व तिथि स्वयं में महत्त्वपूर्ण नहीं होती। परन्तु जब उस तिथि से महापुरूषों का संबंध जुड़ जाता है तब वह तिथि भी अमरत्व को प्राप्त हो जाती है। वह तिथि जन-जन के लिए श्रद्धा का प्रतीक बन जाती है।

4 अप्रैल 1923 का वह दिन वह समय इतिहास के गौरवमय पन्नों का अंग बन गया। जब गुरुदेव ने इस धरा पर जन्म ग्रहण किया। वह दिवस जन-जन के लिए महोत्सव बन गया। आज उस युग पुरुष के अवतरण के सौ वर्ष पूर्ण होने जा रहे हैं। संपूर्ण उत्तर भारत में हर्ष की लहर व्याप्त है। इस शुभ दिवस का आगाज पंजाब प्रांत के ऐतिहासिक नगर अमृतसर के प्रांगण में हो चुका है। उत्तर भारत के समस्त श्रीसंघों में भगवान महावीर जयंति की भाँति उत्साह है। जनमानस पलक पांवड़े बिछाकर गुरुदेव के शताब्दी वर्ष का स्वागत करने के लिए बेताब है। 4 अप्रैल 2022 के दिन शताब्दी वर्ष का शुभारंभ करते हुए प्रत्येक क्षेत्र में गुरुदेव का गुणगान गाते हुए प्रभातफेरी का आयोजन हुआ। ऐतिहासिक जन-जागरण यात्रा का प्रतिदिन आयोजन उत्तर भारत में चल रहा है। इतिहास में संभवत: किसी महापुरुष का इतने व्यापक स्तर पर शताब्दी महोत्सव नहीं मनाया गया होगा?

4 अप्रैल 2022 का दिन स्थानकवासी परम्परा के लिए दीपावली का दिवस बन गया। प्रत्येक श्रावक के हृदय में गुरुभक्ति के दीप जगमगा उठे। इस दिन को भव्य ढंग से बनाने का प्रारूप कई महीनों से तैयार हो रहा है। जिसे श्री संघों के परिश्रम एवं भक्तों के अथाह उत्साह ने सफल बना दिया।

4 अप्रैल के दिन का स्वागत करने के लिए संतवर्ग एवं श्रावकवर्ग भीलनी की भाँति प्रतिक्षारत था। मुनिवर्ग में भी अपने गुरुदेव के प्रति श्रद्धा का अनूठा उत्साह है। प्रत्येक मुनि अपनी मर्यादा के अनुसार स्व पर कल्याण के कार्यों में संलग्न है। प्रत्येक वर्ग का यही प्रयास है कि गुरुदेव के शताब्दी वर्ष में आयोजित होने वाले कार्य को यादगार बनाया जा सके। यह वर्ष इतिहास में स्वर्णिम पृष्ठों पर अंकित हो।

गुरुदेव के जन्म शताब्दी वर्ष पर जिनशासन की प्रभावना का उद्देश्य कुछ इस प्रकार है।

1. जन-जन में नव चेतना का जागरण।
2. युवा पीढ़ी को धर्म से जोड़ना।
3. बच्चों में संस्कारों का बीजारोपण करना।
4. उत्तर भारत में स्थानकवासी समुदाय को सशक्त पहचान देना।
5. अहिंसा एवं शाकाहार का व्यापक प्रसार करना।
6. व्यसन मुक्त समाज का निर्माण करना।
7. गुरुदेव के उज्ज्वल जीवन-चारित्र से जन-जन को परिचित करवाना।
8. जैनत्व का प्रचार प्रसार करना।
9. चतुर्विध संघ में व्रत, नियम अंगीकार करने का उपक्रम प्रारंभ

करना।

10. शताब्दी वर्ष को जप, तप के सामूहिक  सामाजिक अनुष्ठान से सफल करना।

श्रावक वर्ग ने भी समाजोपयोगी व जनोपयोगी कार्यक्रमों को चलाने का संकल्प लिया है। जो जनहित में वर्षभर गतिमान रहेंगे।

उत्तर भारत में गुरुसेवक परिवार (G.S.P) के हजारों सदस्य हैं। जो गुरुदेव के प्रति पूर्णत: समर्पित हैं। गुरु सेवक परिवार की राष्ट्रीय कार्यकारिणी ने शताब्दी महोत्सव को स्मरणीय बनाने के लिए कुछ ऐतिहासिक घोषणाएं भी की हैं। जिनका विवरण निम्नलिखित है।

1. संपूर्ण उत्तरभारत में वर्षभर गुरु सुदर्शन जन-जागरण यात्रा का आयोजन होगा। 2. आवास योजना के अंतर्गत ऐतिहासिक कार्यक्रम प्रारंभ होगा। साधर्मी बंधुओं को निशुल्क 108 फ्लैट बनाकर दिए जाएंगें। 3. जैन उपकरण भंडार की स्थापना होगी। 4. ग्यारह जैन स्थानक बनाने का संकल्प गुरुसेवक परिवार द्वारा लिया गया। 5. ग्यारह शीतल प्याऊं लगाए जाएंगे। 6. ब्लड कैंप व नेत्र चिकित्सा कैंप का आयोजन होगा। 7. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड के कार्य का शुभारंभ होगा। 8. साधक दीक्षा देने का क्रांतिकारी आयोजन भी शताब्दी वर्ष को ऐतिहासिक बनाएगा। 9. प्रत्येक घर में मिश्री व मुख-वस्त्रिका का वितरण होगा। 10. साधर्मी बंधुओं के लिए फंड की व्यवस्था की जाएगी। 11. पर्यावरण शुद्धि के उद्देश्य से वृक्षारोपण का कार्यक्रम भी चलेगा। 12. साधर्मी भाइयों को राशन भी वितरित किया जाएगा। 13. एम्बुलेंस सेवा का भी श्री गणेश हो चुका है। 14. चमड़े के उपयोग के बहिष्कार के लिए विशेष अभियान प्रारंभ होगा। 15. पशु-पक्षी सेवा के कार्य भी प्रारंभ होगें। 16. कई स्थलों पर भंडारे के आयोजन की भी व्यवस्था की गई है। 17. वस्त्र वितरण का कार्यक्रम भी आयोजित होगा।

उपरोक्त समस्त  घोषणाएं गुरु सेवक परिवार द्वारा अमृतसर के प्रांगण में की जा चुकी हैं।

इस आलेख को पढ़कर ही आप गुरुदेव के जन्म शताब्दी महोत्वस पर उमड़ रहे उत्साह का सहज अनुमान लगा सकते हैं। 4 अप्रैल उत्तरभारत स्थानकवासी समाज के लिए ऐतिहासिक क्षण बन गया है। जिसका युगों-युगों तक स्मरण किया जाएगा।

**ऐसे युग पुरुष श्रद्धेय गुरुदेव के चरणों में कोटि-कोटि नमन!**

हरियाणा का प्राचीन
नगर रोहतक

# 02 | जन्मभूमि और गुरुदेव

**एक** प्रसिद्ध संस्कृत श्लोक का पूर्वार्ध वाक्य है। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।' अर्थात् जननी (माता) व जन्मभूमि स्वर्ग से भी महान होती है। जन्मभूमि का एक अपना आकर्षण होता है। फिर ऐसी जन्मभूमि जिसमें किसी महापुरुष का संबंध जुड़ा हो तो उसका महात्म्य ओर भी अधिक बढ़ जाता है। जन्मभूमि की संस्कृति और परम्परा हमारे चारित्र निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आज हम एक ऐसे प्रतिष्ठित नगर की चर्चा करने जा रहे हैं जिसकी धरा गुरु सुदर्शन जैसे संत रत्न को जन्म देकर धन्य हो गई।

हरियाणा का अत्यंत प्राचीन नगर रोहतक स्वयं में ऐतिहासिक विशिष्टताओं को समेटे हुए हैं। जब हम इस नगर के प्राचीन पृष्ठों को पलटते हैं तो ज्ञात होता है कि स्वयं भगवान महावीर ने इस नगर को अपनी चरणरज से पावन बनाया था।

एक किंवदंति के अनुसार रोहतक में किसी समय जैन समाज का प्रभुत्व था। पांच सौ ओसवाल भावड़ों के परिवार यहाँ जैनत्व का प्रतिनिधित्व करते थे। एक कहावत है कि भावड़ा शब्द ही घिसते-घिसते बाबरा बन गया। बाबरा मौहल्ला आज भी रोहतक का प्राचीन क्षेत्र है। संभवत: भावड़े जैन वहाँ से कहीं अन्यत्र चले गए। अथवा साधु-संतों के सान्निध्य के अभाव में धर्मांतरण हो गया। वर्तमान में रोहतक में अग्रवाल जैन का बाहुल्य है।

यह नगर अपने समन्वय एवं सौहार्दपूर्ण वातावरण के लिए भी प्रसिद्ध है। यहाँ दिगंबर व श्वेताम्बर दोनों आम्नाओं का परस्पर स्नेहिल संबंध है। प्रारंभ से ही जैन संत रोहतक नगर में मुख्य आकर्षण का केन्द्र रहे हैं। अथवा यहाँ का जैन स्थानक रोहतक का मुख्य धर्म स्थल था। वैदिक परम्परा के मंदिरों का निर्माण अर्वाचीन है।

रोहतक नगर का यह सौभाग्य रहा कि यहाँ स्थानक वासी परम्परा के संतों का निरंतर विचरण होता रहा है। उस संत परम्परा में सर्वप्रथम श्री कन्हीराम जी महाराज, पूज्य मयाराम जी महाराज के लघुभ्राता श्री रामनाथ जी महाराज दीर्घकाल तक यहाँ ठाणापति भी रहे। पूज्य भंडारी श्री बलवंतराय जी महाराज ने 1987 तक रोहतक में स्थिरवास किया।

मुझे भी उनकी सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कई महासाध्वियों का भी यहाँ विराजना रहा। इस प्रकार नगर में निरंतर जिनवाणी का निर्झर बहता चला गया। जिससे इस नगर को जैनत्व के संस्कारों का सिंचन प्राप्त हुआ।

रोहतक नगर के एक हिस्से में स्थित बाबरा मौहल्ला जो उस समय क्षेत्र की प्राचीन सभ्यता का अंग था। इसी मौहल्ले की मदीन गली में एक सज्जन जो 250 वर्ष पूर्व मदीना गाँव से आकर मदीन गली के स्थायी निवासी बन गए। मदीना गाँव का यह परिवार सरागी देवी-देवताओं की भक्ति से जुडा हुआ था। परन्तु जैन संतों की कृपा से यह परिवार देवाधिदेव के वीतराग धर्म के प्रति आस्थावान बन गया। यह परिवार भले ही अरिहंत देव का उपासक बना। परन्तु इन्होंने अपने कुल परम्परा के देवों की आराधना का भी त्याग नहीं किया। एक ही छत के नीचे श्रमण व वैदिक संस्कृतियों का पोषण हो रहा था।

कालान्तर में गुरुदेव के दादा श्री जग्गुमल जी जैन धर्म के प्रमुख श्रावक बने। उस अवसर पर स्थानकवासी परम्परा में यह परिवार सामायिक करने वाला मुख्य परिवार बन गया। बाहर गाँव से आने वाले दर्शनार्थियों की सेवा का उत्तरदायित्व भी उसी परिवार ने संभाला।

बाबा जग्गुमल जी का व्यवहारिक शिक्षण भले ही नगण्य था परन्तु धर्मश्रद्धा के क्षेत्र में वे अग्रणीय श्रावक थे। संत चरणों की सेवा करके आनंदित होते थे। व्यापार, सांसारिक प्रपंचों में उनकी रुचि नाममात्र थी। बाबा जग्गुमल जी के तीन पुत्र थे। जिन्हें बाबा जी ने शिक्षा व संस्कारों के क्षेत्र में खूब आगे बढ़ाया। गुरुदेव के पिताश्री नगर में एक नामी वकील थे। एक चाचा मिट्ठनलाल जी व्यापारी व दूसरे चाचा स्कूल में अध्यापक थे। पूरे परिवार में जैन धर्म के प्रति लगाव था।

गुरुदेव का परिवार पूज्य मयाराम जी महाराज की परम्परा का उपासक था। पूज्य मयाराम जी महराज की इस परिवार पर विशेष कृपा थी। पूज्य मयाराम जी महाराज समय-समय पर रोहतक पधार कर इस क्षेत्र को जैनत्व के संस्कारों से सींचते रहे। संभवत: उसी का फल पूज्य गुरुदेव के रूप में जैन-समाज को प्राप्त हुआ। जिसने जिनशासन की गरिमा में चार चाँद लगाए। इस परिवार का पुण्य कितना प्रशस्त था कि इस महान कुल से जिनशासन को तीन जगमगाते नक्षत्र प्राप्त हुए। पूज्य गुरुदेव, पूज्य बाबा जी महाराज एवं पूज्य पद्मचंद्र जी महाराज जो जिनशासन के क्षितिज पर चमकते सितारे बने।

संपूर्ण जैन समाज इस परिवार के ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकता इस परिवार की गौरवमयी गाथा युगों-युगों तक विश्रुत रहेगी। इस परिवार का जैन समाज सदैव आभारी रहेगा। जिसने समाज को गुरु सुदर्शन सरीखा भगवान दिया। जिसने अपनी संयम साधना से जननी व जन्मभूमि दोनों को गौरवान्वित किया।

**ऐसे महान गुरु के चरणों में वंदन!**

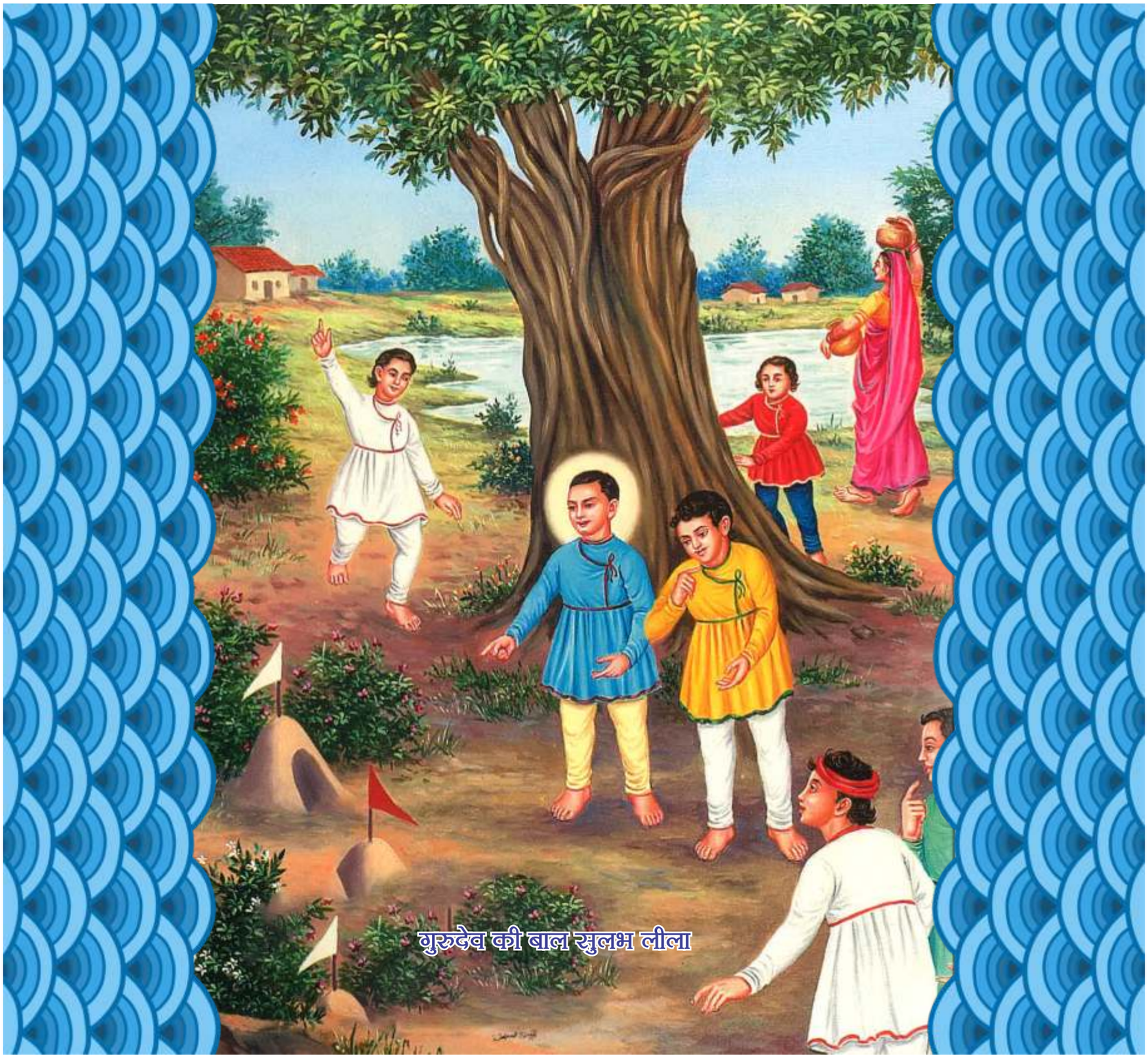
गुरुदेव की बाल सुलभ लीला

# 03 | बाल्यावस्था और गुरुदेव

**बचपन** मनुष्य जीवन का वह सुनहरी पड़ाव होता है। जहाँ उसके समग्र जीवन के विकास की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। बाल्यावस्था में बच्चे के मन में व्यक्ति एवं वस्तुओं के संबंध में जानने की नवीन जिज्ञासाएं उत्पन्न होती है। बचपन वह समय होता है जिसमें बालक के व्यक्तित्व एवं चारित्र का विकास तीव्र गति से होने लगता है। जिसका बचपन संस्कारी हो उसकी युवावस्था भी समृद्ध होती है। जिसकी युवावस्था समृद्ध हो उसकी वृद्धावस्था भी सुखकर रहती है अर्थात् बचपन संपूर्ण जीवन की आधारशिला है।

गुरुदेव का बचपन अत्यंत मनमोहक था। कान्हा की भाँति अपनी आकर्षक किशोरावस्था एवं हाव-भाव के कारण गुरुदेव घर, परिवार व समाज के प्रिय बन चुके थे।



गुरुदेव का बचपन पहाड़ी सरिता की भाँति उतार-चढ़ाव से भरा हुआ था। जैसे पहाड़ी नदी कभी दाएं कभी बाएं, कभी तिरछी, कभी सीधी प्रवाहित होती है। परन्तु इतने अवरोध आने पर भी कभी नदी का वेग मंद नहीं होता। इसी प्रकार गुरुदेव के जीवन में भी कभी पतझड़ की वीरागनी, कभी बसंत का सुहावना मौसम था, कभी पीड़ाओं के कांटे तो कभी फूलों-सा सुकोमल स्पर्श था।

चार वर्ष तक माँ के ममतामयी सुखकर पालने में झूलने वाले बालक की माता सुंदरी देवी अकस्मात् संसार छोड़ककर चली गई। माँ के अभाव में बालक की दुनिया वीरान हो गई। ममता मयी माँ की गोद के अभाव से बालक मायूस रहने लगा। शायद इसी कारण गुरुदेव की प्रकृति प्रारंभ से ही गंभीर बन गई। चपलता, चंचलता, चुलबुलापन प्रारंभ से ही उनके स्वभाव में नहीं था। माँ की असमय मृत्यु ने बालक को गंभीर व गमगीन बना दिया। माँ के जाने के पश्चात् बालक ईश्वर का मुखम्लान व चित्त उदास रहने लगा।

पिता चंदगीराम जी ने बालक के लालन-पालन के लिए द्वितीय विवाह कर लिया। परन्तु संसार की कोई भी स्त्री एक बच्चे के लिए उसकी वात्सल्यमयी माँ का स्थान नहीं ले सकती। फिर भी मौसी तो आखिर मौसी ही रही। इस विषम परिस्थितियों में बालक ईश्वर के लिए आशा की किरण बनकर उभरें उनके दादा बाबा श्री जग्गुमल जी, वही गुरुदेव के बचपन के संरक्षक व संवर्धक बनें। उन्होंने ही गुरुदेव को संस्कारित एवं शिक्षित करने का उत्तरदायित्व संभाला। उनके दादा जी ने ही माँ बनकर उन्हें दुलार से सराबोर किया। और पिता बनकर अनुशासित रहना सिखाया।

स्कूल की छुट्टी के पश्चात् बालक ईश्वर अपने दादा जी की परिक्रमा करते रहते। दादा पौत्र के बिना व पौत्र दादे के बिना श्वास भी नहीं लेता था। बाबा जग्गुमल जी ने बालक का सर्वांगीण विकास किया। गुरुदेव कई बार स्वयं अपने मुख से फरमाते थे कि मेरा बचपन बाबा जी के प्यार व अनुशासन के कारण ही सुंदरतम् बना। बाबा जी ने ही मेरे आहत बाल्यावस्था पर मरहम पट्टी की है।

बाबा जी अपने पौत्र को जैन स्थानक में संत दर्शनों के लिए भी लेकर जाते। यह पूर्वभव के संस्कार ही थे कि संत दर्शन कर गुरुदेव का

मन मयूर की भाँति नाचने लगता था। गुरुदेव ने बचपन में यदा-कदा संतों के पात्र से नीचे गिरे जल का अमृतपान भी किया। गुरुदेव को संतों की शरण में जाकर सेवा करना, ज्ञान-ध्यान सीखना, प्रवचन सुनना व गोचरी में साथ चलना आनंददायक प्रतीत होता था। गुरुदेव ने बचपन में ही पच्चीस बोल, सामायिक-सूत्र इत्यादि कंठस्थ कर लिए थे।

गुरुदेव बचपन से अभिनय कला के शौंकीन थे। गुरुदेव ने कई एकांकी नाटकों में मुख्य किरदार की भूमिका भी निभाई। परन्तु गुरुदेव की सिनेमा देखने, खेलने-कूदने व बाजार जाकर चाट-पकौड़ी खाने की रुचि बहुत कम थी।

गुरुदेव की शरीर संपदा अत्यंत बलिष्ठ नहीं थी। पाचन तंत्र में कुछ विकृति के कारण कभी अस्वस्थ हो जाते थे। परन्तु कुल मिलाकर उनका बचपन में स्वास्थ्य स्थिर था। शरीर से न अधिक कमजोर न अधिक बलशाली थे।

गुरुदेव बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि के स्वामी थे। जो भी पठन-पाठन करते, वह सब शीघ्र कंठस्थ कर लेते थे। स्मरण शक्ति अद्‌भुत थी। प्रत्येक कक्षा में प्रथम स्थान से उत्तीर्ण होते थे। अध्यापक भी उनकी अध्ययन रुचि से प्रभावित थे। गुरुदेव को अध्यापकों ने कक्षा का मोनिटर बनाया हुआ था।

**'होनहार विरवान के होत चिकने पात।'**

धर्म के प्रति गुरुदेव का बचपन से ही स्वाभाविक लगाव था। एक आसन पर बैठकर कई सामायिकों की आराधना कर लेते थे। बचपन में ही उन्होंने गुरु-धारणा ले ली थी। बचपन में ही गुरुदेव की हृदय-भूमि पर संयम रूपी बीजों का पोषण होने लगा था। उनका जीवन निश्छल, निर्लेप, संस्कारी, सदाचारी व समन्वय प्रधान था। बचपन से ही उनके जीवन में महानता के सद्‌गुण झलकने लगे थे।

**ऐसे महान गुरु की महान बाल्यावस्था की बारंबार अनुमोदना!**

गुरुदेव की संस्कारित युवावस्था

# 04 | युवावस्था और गुरुदेव

**युवावस्था** किसी भी कार्य क्षेत्र में प्रगति करने का सुनहरी अवसर है। आचार्य चाणक्य ने युवावस्था को धन की उपमा दी है। जैसे धन का सोच-विचार कर उपयोग करते हैं उसी प्रकार युवावस्था का एक-एक क्षण मूल्यवान है। बचपन में प्राप्त किए संस्कारों को पचाने व पकाने का सुनहरी अवसर है युवावस्था। युवावस्था में ज्ञान व संस्कार प्राप्त करने के लिए तपाया गया तन-मन मनुष्य के व्यक्तित्व को निखारता है। कहावत भी है जवानी में खाया अन्न व कमाया धन वृद्धावस्था में उपयोगी बनता है। उसी प्रकार जवानी में किया गया धर्म ध्यान वृद्धावस्था को व्यवस्थित बना देता है।



यदि युवावस्था में जोश व होश का समन्वय हो तो जवानी कल्पवृक्ष बन जाती है। भगवान महावीर ने तो यहाँ तक फरमाया-

**'जरा जाव न पीडेई, वाही जाव न वड्ढई।**
**जाविंदिया न हायंति, ताव धम्मं समायरे।'**

अर्थात् जब तक वृद्धावस्था से पीड़ित न हुए, जब तक शरीर में व्याधि न बढ़े, जब तक इंद्रियों का बल क्षीण न हुआ हो तब तक धर्म से प्रयत्न कर लेना चाहिए।

क्योंकि युवावस्था ऊर्जा का स्रोत है। ऊर्जावान व्यक्ति ही धर्म के क्षेत्र में उन्नति कर सकता है। जवानी का अर्थ है, मुस्कराता हुआ मुखमंडल, सकारात्मक विचार, भय रहित मन, आत्मविश्वास युक्त हृदय।

संस्कारों की फुहार में वर्द्धमान हो रहे बचपन ने जब युवावस्था की दहलीज पर कदम रखा तो गुरुदेव के अन्त:करण से एक ही आवाज़ आई कि मैंने संयम-मार्ग को अंगीकार करना है। अक्सर बच्चे

युवावस्था में भोगों के पीछे पागल बन जाते हैं। उद्दंड व उच्छृंखल होकर मर्यादाओं की सीमा लांघ जाते हैं। परन्तु गुरुदेव मर्यादा पुरुषोत्तम बने। उन्होंने भोगों को त्यागकर योग का मार्ग चयन किया।

लाखों श्रावक-श्राविकाओं ने गुरुदेव के जीवन को बहुत समीप से निहारा परन्तु कभी किसी ने यह अंगुली नहीं उठाई कि 'अरे, यह मुनि क्या कर रहे हैं?' अथवा 'गुरु मदन के शिष्य को यह कार्य शोभास्पद नहीं है।'

मेरा सौभाग्य है कि मुझे ऐसे शीलसंपन्न, सदाचारी गुरुदेव की शरण प्राप्त हुई। गुरुदेव कभी भी अपने मार्ग से विचलित नहीं हुए। अपितु जवानी में मदांध युवकों के मार्गदर्शक बनें। इस बात का मैं स्वयं साक्षी हूँ कि लाखों युवाओं ने गुरुदेव के प्रवचनामृत को श्रवण कर अपने जीवन का परिष्कार किया। गुरुदेव ने जवानी में ही प्रवचन देना प्रारंभ कर दिया था। युवाओं को कुपथ पर ले जाने वाली बुराईयों व व्यवसनों के विरुद्ध सिंहगर्जन करते हुए धर्म मार्ग प्रशस्त करते थे। गुरुदेव के मन में युवकों को सन्मार्ग दिखाने व सम्यग् दिशा देने की तड़फ थी।



गुरुदेव ने संघ सेवा, गुरु सेवा एवं अपने बाबा जी की सेवा करने में युवावस्था का सदुपयोग किया। गुरुदेव ने तन-मन से अपने बड़े बुजुर्गों की सेवा की। ऐसा नहीं कि आज कल के युवकों की भांति माँ-बाप ने कुछ ऊँचा बोल दिया तो उन्हें छोड़कर बाहर जाकर रहने लगे। गुरुदेव की सेवा से प्रसन्न होकर उनके गुरुदेव वाचस्पति जी म. सा. ने हृदय से आशीर्वाद दिया।

गुरुदेव जब युवा मुनि बने तो योग्यता के आधार पर वाचस्पति गुरुदेव ने प्रवचन की कमान उनके हाथों में सौंपी। ओजस्वी वाणी का श्रवण करने जन सैलाब उभरने लगा। लोग भक्ति-भाव से भरकर जय-जयकार करने लगे। परन्तु गुरुदेव के मन में कभी अहंकार की गुदगुदी नहीं हुई। उन्होंने कभी विनम्रता को तिलांजलि नहीं दी।

गुरुदेव संयम की मर्यादाओं के प्रति इतने आस्थावान थे कि उस युग के गंभीर श्रावक सदैव यही कहते नजर आए कि मुनि सुदर्शन को कभी हमने बहनों से घिरे हुए नहीं देखा। कभी किसी से बेवजह हंसी-मजाक करते नहीं देखा। भरी जवानी से ही गुरुदेव का अंतर्मानस वैराग्य रंग से रंजित था। नेत्रों मे संस्कारों की शर्म का जल था। बहन व माताओं से उपयुक्त दूरी बनाकर रखते थे। पृच्छनाओं का समाधान तो करते परन्तु व्यर्थ की विकथा से परहेज था। गुरुदेव घरों में गोचरी जाते, तो मात्र निर्दोष आहार के संबंध में ही प्रश्न करते। तुम कौन हो? कहाँ की रहने वाली हो? तुम कैसी हो? ऐसे शब्द कभी उनके मुख से किसी ने नहीं सुने। गोचरी के समय मात्र निर्दोष आहार की गवेषणा करते।

गुरुदेव अनासक्त योगी थे। उनका मन सदैव अपने परम लक्ष्य की प्राप्ति की ओर केन्द्रित था। गुरुदेव की युवावस्था में जोश व होश का अद्‌भुत समन्वय था। गुरुदेव ने अपनी असीम ऊर्जा को अंतर्मुखी बनाया। उनका हृदय वैराग्य रंग से परिपूर्ण था। उन्होंने अपनी ऊर्जा का उपयोग विकास में किया, ह्रास में नहीं।

युवावस्था में अपने गुरुजनों को, आदरणीय संतो व श्रावकों को भी कभी कटु शब्द नहीं बोला। कभी उनकी आज्ञा का तिरस्कार नहीं किया। जो भी गुरु ने आदेश दिया। उसे तहत्त कहकर विनयभाव से स्वीकार किया।

**हे गुरुदेव! शील मर्यादा व सदाचार से संपन्न आपकी युवावस्था को लाखों प्रणाम!**

गुरुदेव वैराग्यावस्था में
वाचस्पति गुरुदेव के चरणों में
णमो अरिहंताणं. णमो सिद्धाणं. णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं. णमो लोए सव्वसाहूणं

# 05 | वैराग्य जीवन और गुरुदेव

**अनंतकाल** से चित्त वृत्तियों का प्रवाह परम्परागत संस्कारों के बल पर स्वभाविक भोगों की ओर प्रवाहित हो जाता है। उस प्रवाह को अनरूद्ध करने का एकमात्र उपाय वैराग्य है। मन में वैराग्य की प्रवृत्ति उत्पन्न होने से व्यक्ति उन वस्तुओं व कर्मों के प्रति उदासीन हो जाता है। जिसमें सामान्य लोग आसक्त होते हैं। आसक्ति ही दुख व भय का मूल कारण है। वैराग्य हृदय को प्रकाशित करने वाला ज्योतिर्मय रत्न है। *'सर्व वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्।।'* संसार के समस्त पदार्थ भय से आच्छादित है। मात्र वैराग्य ही भय रहित है। वैराग्य से रंजित मन कमलवत् निर्लिप्त हो जाता है।



गुरुदेव श्री के जीवन का जब हम आद्योपान्त अवलोकन करते हैं तो यह बात सहज ही विदित होती है कि वे पूर्वभव से ही वैराग्य के संस्कारों की पूंजी लेकर आए थे। परिवार में रहते हुए उनके हाव-भाव व वार्तालाप से ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे किसी उच्चकोटि के साधक ने इस कुल में जन्म लिया हो।

गुरुदेव का जन्म यद्यपि एक अजैन कुल में हुआ। परन्तु उस परिवार को पूर्वजों से ही जैनत्व के संस्कारों का पोषण मिल रहा था। पारिवारिक सदस्य सत्संग श्रवण करने वाले एवं सामायिक के आराधक आस्थावान भक्त थे। बाबा श्री जग्गुमलजी अपने पोते ईश्वर (गुरुदेव) को लेकर स्थानक जाते थे। वहाँ बालक ईश्वर घंटों तक खेलता रहता था। इस प्रकार गुरुदेव का बाल्यकाल संतों की शरण में व्यतीत हुआ।

प्रारंभ से ही गुरुदेव के मन में संसार, परिवार, व्यापार के प्रति रागभाव नहीं था। घर में रहते हुए भी उनका मन जल कमलवत् निर्मल था। उनका बाल्यकाल भी वैराग्य की चमक से दीप्तिमान था। गुरुदेव अनासक्त योगी थे। आजीवन उनके मन में कभी यह विचार ही उत्पन्न नहीं हुआ कि उन्हें गृहस्थ का मार्ग अपनाना चाहिए था।

यद्यपि उस समय की परिस्थितियों के कारण गुरुदेव के स्कूल का शिक्षण अनियमित था। परन्तु वैराग्य का बीज उनके रोम-रोम में अंकुरित हो रहा था। गुरुदेव की धर्म दृष्टि को अंतर्मुखी बनाने में उनके परम मित्र हंसराज का भी योगदान रहा है। दोनों में गहरी आत्मीयता थी। दोनों ने एक साथ जैन दीक्षा अंगीकार करने का मन बना लिया था। परन्तु हंसराज अपने पारिवारिक आग्रह को स्वीकार कर वैवाहिक सूत्र में बंध गए। परन्तु नियति को कुछ ओर ही मंजूर था। हंसराज यमुना तट पर स्नान के लिए गए तो यमुना की लहरों में ही समा गए। इस आकस्मिक मृत्यु का संदेश सुनकर जैसे परिवार विशेषत: नवविवाहिता पत्नी के सिर पर दु:खों का पहाड़ टूट पड़ा हो। मृत्यु की भीषणता व जीवन की क्षण भंगुरता का गुरुदेव के हृदय पर गहरा आघात हुआ। वे सारी रात मित्र की चित्ता के समीप खड़े रहे। उसी रात्रि में गुरुदेव ने यह दृढ़ संकल्प कर लिया कि मुझे संसार के चक्रव्यूह में नहीं फंसना है। मुझे दीक्षा अंगीकार करनी है। गुरुदेव के रोम-रोम से गौतम बुद्ध की भाँति वैराग्य रस टपकने (उत्पन्न होने) लगा।

उस अल्पवय में गुरुदेव के हृदय में श्रावक का सर्वोत्तम मनोरथ प्रतिपल गूँजने लगा। वह सौभाग्यशाली दिन कब आएगा जब मैं दीक्षा अंगीकार करूँगा। वैराग्यकाल के अंतराल में गुरुदेव कई बार गुरु चरणों

में चले जाते। परन्तु परिवार वाले उन्हें ढूंढकर पुन: घर वापिस ले आते। सन् 1937 में बाबा श्री जग्गुमलजी ने जैन दीक्षा का मार्ग अपनाया। परिवार की इस दीक्षा ने गुरुदेव का मार्ग भी प्रशस्त कर दिया। यद्यपि परिवार का बहुत विरोध था। फिर भी गुरुदेव सन् 1940 में वाचस्पति गुरुदेव के सान्निध्य में वैरागी के रूप में आकर रहने लगे। वहाँ पर भी परिवार वाले आकर उन्हें घर ले गए।

परन्तु गुरुदेव का उत्साह कम न हुआ। वे संयम प्राप्ति के निरंतर प्रयास करते रहे। अब घर आकर उनका एक ही कार्य था अधिक से अधिक सामायिक साधना करना। गुरुदेव ने 17 सामायिक एक आसन पर बैठकर 14 घंटों में पूर्ण की अर्थात् घर में ही साधु की भाँति रहने लगे। वैराग्य प्रधान द्वादश भावनाओं का चिंतन करते।

अब पुन: पटियाला में आकर गुरु चरणों में वैरागी बन गए। उस समय गुरुदेव को अपने दादा गुरु पूज्य श्री नाथूलाल जी महाराज के चरणों में अपने वैराग्य को पुष्ट करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। बहुसूत्री जी महाराज ने गुरुदेव को धर्म शिक्षा देते हुए समझाया-हे सुदर्शन! तुमने अपने बाबा श्री जग्गुमल जी महाराज के मोह में दीक्षा का मार्ग नहीं अपनाया। तुम्हारी दीक्षा का उद्देश्य कर्म निर्जरा व आत्म-शुद्धि होना चाहिए।

वाचस्पति गुरुदेव ने भी गुरुदेव के तीव्र वैराग्य भाव को देखकर शीघ्र ही दीक्षा की अनुमति दे दी। जिन वैराग्य के भावों के साथ गुरुदेव ने संयम स्वीकार किया था वही वैराग्य के भाव गुरुदेव के जीवन में अंतिम क्षणों तक बने रहे।

**ऐसे उच्चकोटि के वैराग्य को बारंबार अनुमोदना!**

## कर्म गति किसी को नहीं छोड़ती स्वयं **तीर्थंकर भगवान** को भी पूर्वकृत कर्मों का भुगतान करना पड़ता है।

गुरु पद की अनंत महिमा

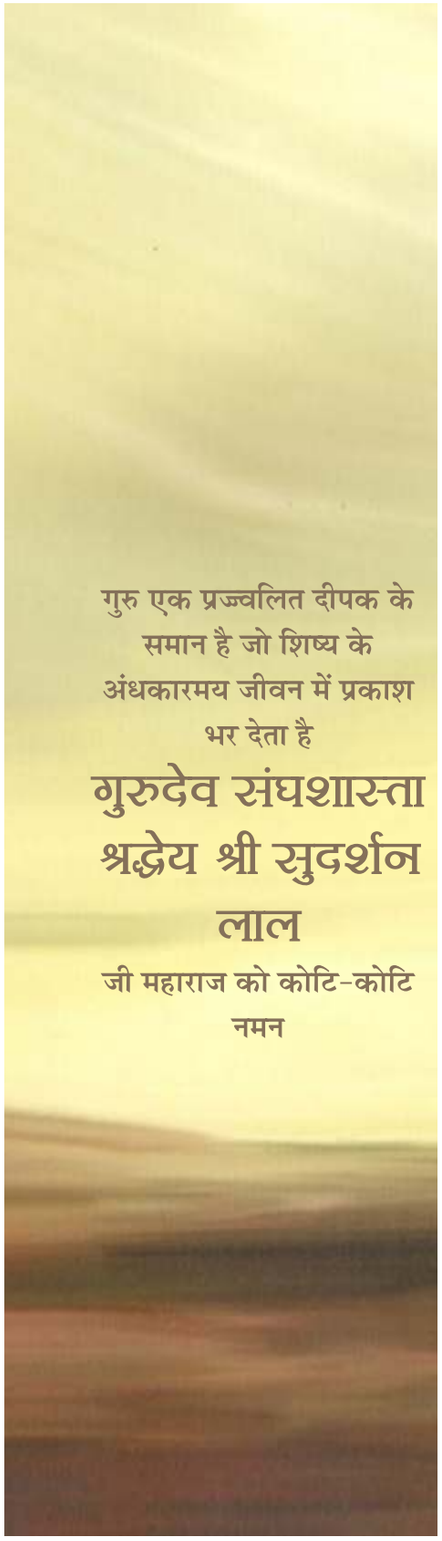


# 06 | गुरुत्व औरगुरुदेव

**पंच परमेष्ठि** महामंत्र के प्रारंभिक दो पदों में वीतराग देव को नमन किया गया। शेष तीन पद, गुरु पद की गरिमा से सुशोभित हैं। अर्थात् यदि हमें अरिहंत या सिद्ध पद को प्राप्त करना है तो गुरुतत्त्व की उपासना अनिवार्य है। गुरु एक प्रज्ज्वलित दीपक के समान है जो शिष्य के अंधकारमय जीवन को प्रकाश से भर देता है। मिथ्यात्व के महागर्त से बाहर निकालकर सम्यकत्व के राजमार्ग पर गति करवाता है। कंटकाकीर्ण पथ पर भटक रहे जीवन को महकती बगिया में परिवर्तित कर देता है।

सभी ग्रंथ, पंथ व परम्पराएं गुरु का गुणगान करते नहीं अघाते हैं। गुरु शिष्य के लिए वह संजीवनी है जो शिष्य के भीतर अमरत्व की प्यास जागृत करती है। वास्तव में शिष्य के साथ ही गुरु का जन्म होता है। गुरु व शिष्य दोनों ही अध्यात्म पथ के पथिक है। अन्तर इतना है कि गुरु इस आध्यात्मिक यात्रा में शिष्य से आगे चलता है और उनका अंतर्मुखी अनुभव शिष्य की प्रेरणा बनता है।

साधना की विभिन्न प्रक्रियाओं में स्वयं को तपाने वाली आत्मा ही गुरुपद की योग्यता प्राप्त करती है। जैसे संसार में जन्म लेने वाला प्रत्येक बालक सर्वप्रथम पुत्र बनता है। तत्पश्चात् संबंधों की इस शृंखला में आगे बढ़कर पिता और फिर दादा भी बनता है। इसी प्रकार साधना के क्षेत्र में प्रवेश करने वाली प्रत्येक आत्मा को सर्वप्रथम शिष्य बनना पड़ता है। फिर वह सम्यकत्वी, स्वाध्यायी व संत बनकर एक दिन गुरु के महिमावंत पद पर आसीन होता है।

दीक्षा ग्रहण कर गुरुदेव सर्वप्रथम एक योग्य शिष्य बने। उनका जीवन विनम्रता, शालीनता, संयमप्रियता व विवेकशीलता आदि गुणों से सुसज्जित था।

मात्र तेरह वर्ष की लघु दीक्षा पर्याय में ही गुरुदेव को गुरु बनने का गौरव प्राप्त हो गया था। परन्तु गुरुपद पर आरूढ़ होकर भी गुरुदेव भीतर से लघुभूत (विनम्र) बने रहे। पंजाब परम्परा के 200 वर्षों के इतिहास में गुरुदेव को सर्वाधिक शिष्य बनाने का गौरव प्राप्त हुआ आप विचार कीजिए, परिवार में एक बालक का सम्यक पोषण के साथ-साथ संस्कार संवर्धन करना कितना कठिन कार्य है। परन्तु गुरुदेव ने तो 29 बालकों (शिष्यों) के भीतर जैनत्व के संस्कारों की ज्योति प्रज्जवलित की। उनके जीवन को सम्यक् साधना से परिष्कृत किया।

गुरुदेव के जीवन को हम सूर्य की उपमा दे सकते हैं। जैसे सूर्य संपूर्ण विश्व पर अपनी किरणें एक समान प्रसारित करता है उसी प्रकार गुरुदेव सभी शिष्यों पर अपनी कृपा का एक समान वर्षण करते थे। अब यह ग्रहण करने वाले शिष्य पर निर्भर है कि वह गुरु की कृपा कितनी ग्रहण कर पाता है।

अक्सर गुरुदेव अपने शिष्यों को फरमाते हैं कि मेरे लिए सभी शिष्य विशेष हैं। कोई कम या अधिक प्रिय नहीं। गुरुदेव का वात्सल्य भाव सभी के लिए एक समान था। उन्होंने कभी किसी शिष्य के जीवन के साथ खिलवाड़ नहीं किया। उन्होंने प्रत्येक शिष्य को साधना के सशक्त पंख देकर ज्ञानालोक के क्षितिज में उड़ान भरने के योग्य बनाया। गुरुदेव ने प्रत्येक शिष्य को आत्म-शुद्धि व आत्म-जागृति का पाठ पढ़ाया। अगर किसी शिष्य के जीवन में कोई स्खलना आई भी तो उसे पुत्रवत शिक्षा दी और प्रायश्चित् देकर साधना में स्थिर किया। गुरुदेव का वात्सल्य अनुपम था।



मुझे 1996 का वह क्षण अभी तक स्मरण है। जब गुरुदेव ने मेरा चातुर्मास नवांशहर में घोषित किया था। चातुर्मास से पूर्व लुधियाना में मेरे पैर व कमर में तकलीफ बढ़ गई। डॉक्टर ने ऑपरेशन का सुझाव दिया। मैं चिंता के कारण आर्त्तध्यान में चला गया तभी दूर विराजित मेरे गुरुदेव ने मेरे गिर रहे मनोबल को संभाल लिया। गुरुदेव ने पत्र के माध्यम से मेरे भीतर आत्मबल जागृत किया। मुझे निराशा के गर्त से बाहर निकाला। गुरुदेव ने पत्र में स्पष्ट आशीर्वाद देते हुए लिखा कि तुम चिंतित मत बनो। तुम शीघ्र स्वस्थ होकर अपने पैरों पर चलकर चातुर्मास प्रवेश करोगे। इस प्रकार गुरुदेव पग-पग पर अपने शिष्यों को संभालते।

**ऐसे करूणाशील गुरुदेव को शत-शत नमन!**

**प्रभु आपके जैसा नाथ मिल जाए तो मैं**

## विभागों की पकड़ से

**अवश्य दूर हो जाऊँगा मुझे ऐसी पूर्ण श्रद्धा है**

## विनय मूलो धम्मो

संघ शास्ता गुरुदेव पूज्य श्री सुदर्शन लाल जी महाराज का विनय भाव सहज गुण था।

गुरुदेव मुनि **सुदर्शन लाल जी** महाराज अपने गुरुदेव **व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी महाराज** की सेवा में

# 07 | विनम्रता और गुरुदेव

**'विनय मूलो धम्मो!'** विनम्रता जिनशासन का मूल प्राण है। विनय समस्त सद्गुणों का आश्रय है। आगमों में भगवान ने फरमाया जिस प्रकार वृक्ष के मूल से स्कन्ध उत्पन्न होता है। स्कन्ध के पश्चात् शाखाएं व प्रशाखाएं निकलती है। इसी प्रकार धर्म रूपी वृक्ष का मूल विनय है। विनय से ही मनुष्य को यश, कीर्ति, श्रुतज्ञान आदि समस्त इष्ट तत्त्व प्राप्त होते हैं। मोक्ष इस वृक्ष का अंतिम फल है। विनयशील साधक ही साधना के क्षेत्र में विकास कर सकता है। यदि वीतरागता एक भव्य इमारत है तो विनय उस भवन की आधारशिला है। संक्षेप में कहें तो विनय सभी गुणों की जननी है।



गुरुदेव का संपूर्ण जीवन विनय का जीवंत उदाहरण था। गुरुदेव के जीवन के किसी भी घटनाक्रम, परिस्थितियों, पक्ष को गहराई से देखें तो आपको प्रत्येक स्थान पर गुरुदेव की विनम्र छवि देखने को मिलेगी। गुरुदेव का विनय मात्र शब्द संरचना नहीं थी अपितु विनय प्रैक्टिकल रूप से उनके जीवन व्यवहार का अंग था।

विनम्रता गुरुदेव का सहज गुण था। गुरुदेव ने गृहस्थ जीवन के स्वल्प काल में अनेकों विषमताओं का सामना किया। मां का देवलोकगमन, दीक्षा के मार्ग में परिजनों का विरोध। परन्तु गुरुदेव ने कभी भी विनम्रता का दामन नहीं त्यागा। बाबरा मौहल्ले का प्रत्येक परिवार बालक ईश्वर की शालीनता से प्रभावित था।

गुरुदेव ने घर पर व्यवहारिक शिक्षण एवं साधु अवस्था में ज्ञानाराधन के क्षेत्र में जिस तीव्र गति से विकास किया। उसकी पृष्ठभूमि में एक ही तत्त्व कार्यरत था वह था गुरुदेव का विनयभाव।

सन् 1942 में दादा गुरुदेव पूज्य श्री नाथूलाल जी महाराज जब खरड़ में अस्वस्थ हुए तो उन्होंने वाचस्पति गुरुदेव को संदेश भेजा कि मुनि सुदर्शन को मेरी सेवा में प्रेषित करें। उस समय वाचस्पति गुरुदेव ने गुरुदेव को संबोधित करते हुए कहा-सुदर्शन! तू कितना सौभाग्यशाली है। गुरुदेव ने तुम्हें याद किया हमें नहीं। गुरुदेव की विनम्रता के कारण उन पर सदैव बड़े संतों का कृपा वर्षण होता रहा। गुरुदेव ने सदैव बड़ों को सम्मान दिया। कभी उनका सामना नहीं किया। उनकी प्रत्येक आज्ञा विनयपूर्वक स्वीकार करते थे।

सन् 1942 में संढोरा चातुर्मास में गुरुदेव के संसारिक पिता श्रीचंदगीराम जी ने वाचस्पति गुरुदेव से पूछा-क्या सुदर्शन मुनि जी आपका विनयभाव करते हैं? गुरुदेव ने मुस्कुराते हुए कहा कि विनय के क्षेत्र में तो सुदर्शन मुनि का गोल्ड मैडल पक्का है। विनयशील गुरुदेव संघ के सभी संतों के हृदयहार बने हुए थे। 1945 के हांसी चातुर्मास में वाचस्पति गुरुदेव संध्या के समय बहिर्दिशा से स्थानक लौटे थे। गुरुदेव ने उनका अभ्युथान पूर्वक स्वागत किया और अपने गुरुदेव के पाद युगल प्रक्षालित कर उन्हें पाट पर विराजित किया। यह गुरुदेव के विनय का अनुपम उदाहरण है।

प्रवचन के क्षेत्र में गुरुदेव ने जिन ऊंचाईयों का स्पर्श किया वह स्वयं में एक मिसाल है। हजारों की जनमेदनी में जब गुरुदेव के वचनामृत का वर्णन होता तो गुरुदेव सर्वप्रथम यही शब्द बोलते कि

'गुरुदेव की कृपा से जो कुछ भी ग्रहण कर पाया हूँ उसे आपके समक्ष रखूँगा।' आप देखिए इतने महान प्रवचनकार फिर भी इतनी विनय।

1947 के मूनक चातुर्मास में गुरुदेव ने पूज्य श्री बनवारी लाल जी महाराज की विनय भाव से सेवा भक्ति कर उनका दिल जीत लिया। एक दिन गुरुदेव ने पूज्यश्री जी से पूछा-क्या आप मेरी सेवा से प्रसन्न है? पूज्य श्री ने गद्‌गद् होकर कहा-सुदर्शन! तेरे दर्शन करके तो मेरी आत्मा खिल उठती है।

1948 के सुनाम चातुर्मास में पूज्य श्री नेकचंदजी महाराज की विनयभक्ति कर आशीर्वाद की पूँजी संग्रहित की। सन् 1950 में चांदनी चौंक चातुर्मास में पूज्य गणेशीलाल जी महाराज गुरुदेव के विनयभाव से अत्यधिक प्रभावित हुए।

गुरुदेव की प्रेरणा से चांदनी चौक में तीन भव्य आत्माओं के मन में वैराग्यभाव उत्पन्न हुआ। गुरुदेव की प्रबल इच्छा थी कि ये तीनों पूज्य वाचस्पति गुरुदेव के चरणों में दीक्षित हो। परन्तु वाचस्पति गुरुदेव ने कहा कि सुदर्शन! मैं तुम्हारे जैसा विनयशील शिष्य पाकर धन्य हो गया। अब मुझे और शिष्यों की अभिलाषा नहीं है। आप इससे अनुमान लगा सकते हैं कि बड़े गुरुदेव की अपने शिष्य पर कितनी कृपा रही होगी।

गुरुदेव ने अपने दिल्ली प्रवास में पूज्य भागमल जी महाराज व पूज्य त्रिलोकचंद जी महाराज की विनयपूर्वक सेवा की।

सन् 1967 में मूनक की धरा पर गुरुदेव को सकल संघ के समक्ष संघ प्रमुख के पद से सम्मानित करते हुए जब पूज्य रणसिंह जी महाराज ने फरमाया कि आज से यही हमारे संघनायक है। हम उन्हीं की आज्ञा में विचरण करेंगे। उस अवसर पर गुरुदेव ने विनयपूर्वक निवेदन किया कि मैं तो अपने गुरुदेव की एक लघु झोंपड़ी हूँ। झोंपड़ी में रहने वाले ही उसकी रक्षा करते हैं। मैं संतचरणों का छोटा-सा सेवक हूँ। सब संतों का वरदहस्त मेरे सिर पर है। इसी कारण मैं निश्चित हूँ। अधिकार प्राप्त होने पर भी गुरुदेव की भाषा व व्यवहार से विनय का निर्झर प्रवाहित होता रहा।

सन् 1970 में पंजाब केसरी श्री प्रेमचंद जी महाराज ने शक्ति नगर में बिना माईक के गुरुदेव के साथ संयुक्त प्रवचन किया। उस अवसर पर पूज्य प्रेमचंद जी महाराज ने फरमाया कि 'जग्गुमल के पौत्र तुम्हारे स्नेह व विनयभाव ने मुझे आज बिना माईक के बोलने पर विवश कर दिया।' गुरुदेव अपनी विनम्रता से बड़े-बड़े महापुरुषों का दिल जीत लेते थे।

लुधियाना में विराजित पूज्य श्रमण श्री फूलचंद जी महाराज की गुरुदेव गुरु तुल्य भाव से विनय भक्ति करते थे। पूज्य श्रमण जी महाराज की कृपा किसी सुमेरू से कम नहीं थी।

हमने शास्त्रों से श्री गौतम स्वामी के भगवान महावीर के प्रति विनय के संवाद सुने हैं। परन्तु सन् 1985 के रोहतक चातुर्मास में पूज्य श्री भंडारी जी महाराज के प्रति गुरुदेव का विनयभाव देखकर श्री गौतम स्वामी का चारित्र मानस-पटल पर तैरने लगता है। गुरुदेव विनय के साक्षात् अवतार थे।

**ऐसे विनयमूर्ति गुरुदेव को कोटि-कोटि नमन!**

गुरुदेव को बुद्धि, प्रखर प्रतिभा व स्मरण शक्ति का वैभव विरासत से ही प्राप्त हुआ था। पितृ परम्परा एवं गुरु परम्परा दोनों का ही बौद्धिक क्षमता का भंडार गुरुदेव को आशीर्वाद स्वरूप प्राप्त हुआ था।

# 08 | बुद्धि-वैभव और गुरुदेव

**बुद्धि** एक मानसिक शक्ति है जो वस्तुओं और तथ्यों को समझने, उनसे परस्पर संबंध खोजने एवं तर्कपूर्ण ज्ञान प्राप्त करने में सहायक है। बुद्धि ही मनुष्य को नवीन परिस्थितियों को ठीक से समझाने और उनके अनुसार स्वयं को अनुकूल बनाने में सहायक है। इस व्यवहार पक्ष के साथ-साथ बुद्धि का अध्यात्मिक पक्ष भी है। जो साधक के आत्मिक गुणों और क्षमताओं को ज्ञान, करुणा, प्रेम व रचनात्मक कार्यों में सक्रिय करता है। ऐसे आध्यात्मिक बुद्धि साधक स्व पर कार्य को साधते हुए नि:श्रेयस के पथ पर अग्रसर होते हैं।

गुरुदेव ऐसी ही अध्यात्मिक एवं विवेक परक बुद्धि के स्वामी थे। वे एक प्रज्ञाशील महापुरुष थे। उनमें मात्र बौद्धिक पांडित्य ही नहीं अपितु उनका अंतस् आध्यात्मिक आलोक की दिव्य दृष्टि से देदीप्यमान था। पूज्य गुरुदेव वैनयिकी एवं औपपातिक बुद्धि के स्वामी थे। उन्होंने अपनी बुद्धि का उपयोग किसी को नीचे दिखाने में नहीं अपितु कल्याण के मार्ग पर आगे बढ़ने में किया। वे अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के बल पर बड़े-से-बड़े उलझे प्रश्नों का समाधान कुछ ही क्षणों में कर देते थे।

आप इसी बात से अनुमान लगा सकते हैं कि जब वे 1940 में वैराग्य अवस्था में गुरुदेव के चरणों में आए तो उन्होंने चंद दिनों में ही प्रतिक्रमण, नवतत्त्व, छब्बीस द्वार, दशवैकालिक सूत्र व अन्य आगमिक सामग्री कंठस्थ कर ली थी। वाचस्पति गुरुदेव अपने शिष्य के बुद्धि वैभव को देखकर गद्‌गद् हो गए।

श्रमण प्रतिक्रमण तो गुरुदेव ने मात्र डेढ़ दिन में ही कंठस्थ कर सबको चमत्कृत कर दिया। यह हमारा भी अहोभाग्य है कि हमें भी ऐसे महान विद्वान और विवेकी गुरुदेव का सान्निध्य प्राप्त हुआ।

गुरुदेव को इस तरह की प्रखर प्रतिभा व स्मरण शक्ति का वैभव विरासत से ही प्राप्त हुआ था। पितृ परम्परा एवं गुरु परम्परा दोनों का ही बौद्धिक क्षमता का भंडार गुरुदेव को आशीर्वाद स्वरूप प्राप्त हुआ था। गुरुदेव के सांसारिक पिता बाबू चंदगीराम जी एक घंटे में आगम की 60 गाथाएं स्मरण कर लेते थे। वाचस्पति गुरुदेव 80 गाथाएं, उसी क्रम में गुरुदेव ने भी एक घंटे में 40 गाथाएं स्मरण कर अपनी योग्यता का परिचय दिया।

सन् 1944 में गुरुदेव को बिहार के सुप्रसिद्ध प्राध्यापक श्री शुकदेव जी अध्ययन करवाने हेतु पधारे। जो अध्ययन सामान्यत: चार वर्षों में पूर्ण होना था गुरुदेव ने अपनी कुशाग्र बुद्धि से उसे एक वर्ष में ही पूर्ण कर लिया। दीक्षा के मात्र तीन वर्ष के स्वल्पकाल में तो गुरुदेव संस्कृत व्याकरण, अमरकोष, भट्टिकाव्य, तर्क-संग्रह, न्याय-मुक्तावली, श्री दशवैकालिक, नंदी सूत्र, आचारांग, सुखविपाक आदि आगमों के धुरंधर विद्वान बन गए। इनमें से अधिकतर आगम गुरुदेव को कंठस्थ थे। यह सब गुरुदेव के बुद्धि वैभव का ही परिणाम था। गुरुदेव की स्मरण शक्ति एवं परिश्रमशीलता तो स्वयं में एक महान कीर्तिमान थी।

गुरुदेव का सन् 1959 का चातुर्मास बड़ौत शहर में हुआ। उस समय गुरुदेव के लिए उत्तर प्रदेश एक नया क्षेत्र था। सभी अपरिचित थे। परन्तु गुरुदेव की स्मरण शक्ति विलक्षण थी। प्रवचन में जो भी श्रावक आते गुरुदेव उनका नाम पूछते। अगले दिन उन्हीं श्रावकों को उनके नाम से बिना किसी त्रुटि के संबोधित करते। उनकी प्रतिभा को देखकर श्रावक वर्ग भी उनकी ओर आकर्षित होने लगा। संत परम्परा में भी ऐसी

प्रतिभा का दिग्दर्शन कहीं अन्यत्र देखने को मिलना सुलभ नहीं है। मैंने स्वयं अपनी आंखों से यह चमत्कार अनेक बार देखा है। ऐसी प्रज्ञा गुरुदेव जैसे महान व्यक्तित्व को ही प्राप्त होती है।

गुरुदेव के जीवन की एक और घटना है जो उनकी स्मरण शक्ति की तीक्ष्णता का परिचय देती है। सन् 1972 में गुरुदेव चंडीगढ़ पधारे। उस समय समाज के एक सुप्रसिद्ध वकील अपने साथ किसी महानुभाव को लेकर गुरुदेव के दर्शनार्थ जैन-स्थानक में पधारे। वंदन करने के पश्चात् उस आगन्तुक ने कहा, गुरुदेव!, क्या आपने मुझे पहचाना? पूज्य गुरुदेव ने उसी क्षण अपने बौद्धिक संगणक (कम्प्यूटर) का बटन दबाया। बोले-अच्छा नटखट प्रेमचंद। आगंतुक व्यक्ति हर्ष-विभोर होकर गुरु चरणों में नतमस्तक हो गया। वह महानुभाव हरियाणा हाईकोर्ट के जस्टिस प्रेमचंद जैन थे। जो कि रोहतक के सुप्रसिद्ध वकील श्री लालचंद जी के सुपुत्र थे। वे गुरुदेव के चरणों में लगभग 35 वर्ष पश्चात् उपस्थित हुए थे। परन्तु गुरुदेव के मस्तिष्क में पुरानी स्मृतियां आज भी अंकित थी।

गुरुदेव तीव्र मेधा के धनी थे। कुछ विषयों पर गुरुदेव का असाधारण अधिकार था। गणित, इतिहास, भूगोल, अंग्रेजी आदि उनके स्कूल से ही प्रिय विषय थे। अर्थशास्त्र में तो उनकी अद्भुत पकड़ थी। जब वे दसवीं कक्षा में अध्ययनरत थे। उसी समय उन्होंने Economics Made Easy नामक पुस्तक का लेखन कर दिया था। जो मास्टर शामलाल जी के नाम से प्रकाशित हुई व बाजार में इसकी बहुत बिक्री भी हुई। पूज्य गुरुदेव बाल्यावस्था से ही कुशाग्र बुद्धि के धनी थे। अध्ययन में इतने कुशल थे कि प्रत्येक कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया।

पूज्य गुरुदेव का गुणगान करते हुए भगवनश्री ने एक स्थान पर लिखा था कि गुरुदेव का बुद्धिबल लाला हरदयाल के समान एवं लग्न आचार्य वृद्धवादी के समकक्ष थी।

**असाधारण प्रतिभा के धनी ऐसे महान गुरु को शत्-शत् प्रणाम।**

पूज्य नाथु गुरु के साथ पूज्य गुरुदेव

# 09 | दादा गुरुदेव और गुरुदेव

**व्यापारिक** क्षेत्रों में एक कहावत प्रचलित है कि मूल से भी अधिक ब्याज प्रिय होता है। यह कहावत संबंधों पर भी यथावत् लागू होती है। संसार में भी पिता का अपने पुत्र से भी अधिक स्नेह पौत्र के प्रति होता है। यह लोकोक्ति गुरुदेव के जीवन पर पूर्णत: चरितार्थ हुई। गुरुदेव को एक नहीं दो-दो दादा गुरु का स्नेह प्राप्त हुआ। सर्वप्रथम संसार में गुरुदेव अपने दादा श्री जग्गुमल जी के चहेते पौत्र थे। दीक्षा के उपरांत दादा गुरुदेव श्री नाथुलाल जी महाराज के लाड़ले पौत्र शिष्य बने। वास्तव में गुरुदेव का विनय व्यवहार ही ऐसा था कि जिस महापुरुष से एक बार भेंट कर लेते उसके हृदय में गहरा अपनत्व का भाव जागृत हो जाता था।



जब गृहस्थावस्था में गुरुदेव घरवालों को बिना बताए फिरोजपुर में दादा गुरुदेव श्री नाथुलाल जी महाराज की शरण में आए। उस समय परिवारिकजन उन्हें पुन: घर वापिस लेने आ गए। उस अवसर पर दादा गुरुदेव ने मुट्ठी बांधकर गुरुदेव को इंगित किया कि वे संयम के मार्ग पर दृढ़ रहें। यह दादा गुरुदेव की गुरुदेव पर प्रथम कृपा थी।

सन् 1940 में गुरुदेव जब विधिवत वैरागी के रूप में गुरुचरणों में आए तो दादा गुरुदेव सर्वाधिक प्रसन्न हुए। उन्होंने गुरुदेव को तत्त्वज्ञान का बोध देकर उनकी आधारशिला को सुदृढ़ बनाया। पूज्य नाथुलाल जी महाराज ने एक बार गुरुदेव से प्रश्न किया। तुम दीक्षा क्यों लेना चाहते हो? गुरुदेव ने भोलेपन से उत्तर दिया कि 'बाबा जी ने संयम लिया तो मैं भी उनका अनुगामी बनना चाहता हूँ।' तभी दादा गुरुदेव ने गुरुदेव की चित्त वृत्तियाँ संशोधित करते हुए कहा-'मोह के वशीभूत होकर संयम स्वीकार करना साधक का उद्देश्य नहीं है। दीक्षा ग्रहण करने का एकमात्र लक्ष्य आत्मशुद्धि होना चाहिए। उन्होंने गुरुदेव को वैराग्य प्रदान दोहा भी सुनाया'

**छूटूं पिछला पाप से, नवा न बांधू कोय।**
**श्री गुरुदेव प्रताप से, सफल मनोरथ होय।।**

पूज्य दादा गुरुदेव अपने पौत्र शिष्य को धार्मिक पहेलियों के माध्यम से भी शिक्षा देते थे। एक दिन उन्होंने पूछा-'न सराहना न विसराना' का अर्थ बताओ। गुरुदेव ने किंचित सोचकर उत्तर दिया। यह पहेली गोचरी से लाए आहार पर लागू होती है। मनोनुकूल आहार प्राप्ति पर प्रशंसा नहीं करनी। मन के विपरीत आहार आने पर खिन्न नहीं होना। यह सुनकर बहुसूत्री जी महाराज का हृदय गद्गद् हो गया। उसी दिन उन्होंने गुरुदेव को आहार संबंधित दोष स्मरण करने की आज्ञा दी।

समय-समय पर बहुसूत्री दादा गुरुदेव अपने पौत्र शिष्य को अयतना संबंधी दोषों के विषय में समझाते। जैसे तेज हवा में वस्त्र नहीं सुखाने। आहार-पानी ग्रहण करते समय विवेक जागृत रखना। भाषा समिति का ध्यान रखना। गुरुदेव को थोकड़े का ज्ञान भी सिखाया।

सन् 1941 में वाचस्पति गुरुदेव का चातुर्मास अहमदगढ़ मंडी में था। दादा गुरुदेव उस समय धुरी में विराजित थे। गुरुदेव रविवार के दिन दादा गुरुदेव के दर्शन करने जाते। एकदा दादा गुरुदेव ने वैरागी सुदर्शन को कहा-मैं प्रवचन में 'जेरे' शब्द का उच्चारण कितनी बार करता हूँ। तू उसकी गणना करना। गुरुदेव ने कथा श्रवण की। समाप्ति पर जब दादा

गुरुदेव ने पूछा–मैंने 'जेरे' शब्द कितनी बार उच्चारित किया। तब गुरुदेव ने कहा कि मैंने प्रारंभ में एक–दो बार गिना। परन्तु उसके पश्चात् कथा में इतना रस आने लगा कि मैं गणना करनी ही भूल गया। तब दादा गुरुदेव ने गुरुदेव की प्रशंसा करते हुए कहा–जिसे संयम में रूचि हो वह बड़ों के अवगुणों को नहीं देखता।

गुरुदेव की दीक्षा पर दादा गुरुदेव भी आशीष देने समारोह में पधारे। दीक्षा की प्रथम रात्रि में जब गुरुदेव दादा गुरुदेव की सेवा में गए तो उन्होंने आशीर्वाद स्वरूप एक शास्त्रीय गाथा स्मरण करवाई।

**विणएण नरो गंधेण, चदणं सोमयाइ रयणीयरो।**
**मधुर रसेण अमयं, जण–पियत्तं लहइ भुवणो।।**

अर्थात्–जिस प्रकार चंदन अपनी सुगंध से, चन्द्रमा अपनी सौम्यता से, अमृत अपनी मधुरता से जनप्रिय बनता है उसी प्रकार मनुष्य अपने विनय गुण से जन–जन का प्रिय बनता है। तत्पश्चात् दादा गुरुदेव ने गुरुदेव को एक शास्त्रीय गाथा दी और कहा–शयन करने से पूर्व इसकी स्वाध्याय करना। निद्रावस्था में जो भी स्वप्न देखो प्रात:काल मुझे अवश्य बताना। गुरुदेव श्रद्धापूर्वक सूत्र का स्मरण कर निद्रा में चले गए। उसी रात्रि गुरुदेव ने स्वप्न देखा कि एक गोलाकार चन्द्र उनके मुख में प्रवेश कर रहा है। वे तभी जागृत हो गए। प्रात: जब अपने स्वप्न का वर्णन दादा गुरुदेव के समक्ष किया। तो उन्होंने पूछा कि चन्द्र पूर्ण था या अपूर्ण। गुरुदेव बोले–चन्द्रमा तो पूर्ण प्रतीत हो रहा था परन्तु आकृति लघु थी। तभी दादा गुरुदेव ने स्वप्न के आधार पर भविष्यवाणी की। तुम अपने जीवन में आचार्य भले न बन सको। परन्तु तुम्हारी संपदा आचार्य तुल्य ही होगी। दादा गुरुदेव की भविष्यवाणी आगे चलकर अक्षरश: सत्य प्रमाणित हुई। दादा गुरुदेव के सान्निध्य में ही गुरुदेव की बड़ी दीक्षा संपन्न हुई।

बड़ी दीक्षा के उपरांत दादा गुरुदेव खरड़ की ओर पधारे। उन्हें यह प्रतीत होने लगा कि मेरा अंतिम समय सन्निकट है। उन्होंने पत्र लिखकर वाचस्पति गुरुदेव को सूचित किया। अगर नवदीक्षित मुनि को आप मेरी सेवा में प्रेषित करोगे तो मुझे अत्याधिक प्रसन्नता होगी। उस अवसर पर वाचस्पति गुरुदेव ने अपने शिष्य को बुलाकर कहा–सुदर्शन! तू कितना भाग्यशाली है। गुरुदेव ने सेवा के अवसर पर तुम्हारा स्मरण किया है। सभी संत दादा गुरुदेव की सेवा में उपस्थित हुए। बहुसूत्री पूज्य गुरुदेव श्री नाथूलाल जी महाराज ने समाधि पूर्वक संथारे के साथ देह त्याग किया। ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी 23 जून 1942 को बहुसूत्री गुरुदेव ने नश्वर देह का त्याग कर संघ से सदा के लिए विदाई ले ली। दादा गुरुदेव की अपने पौत्र शिष्य पर अपार कृपा थी।

**ऐसी विनयमूर्ति गुरुदेव को प्रणाम!**

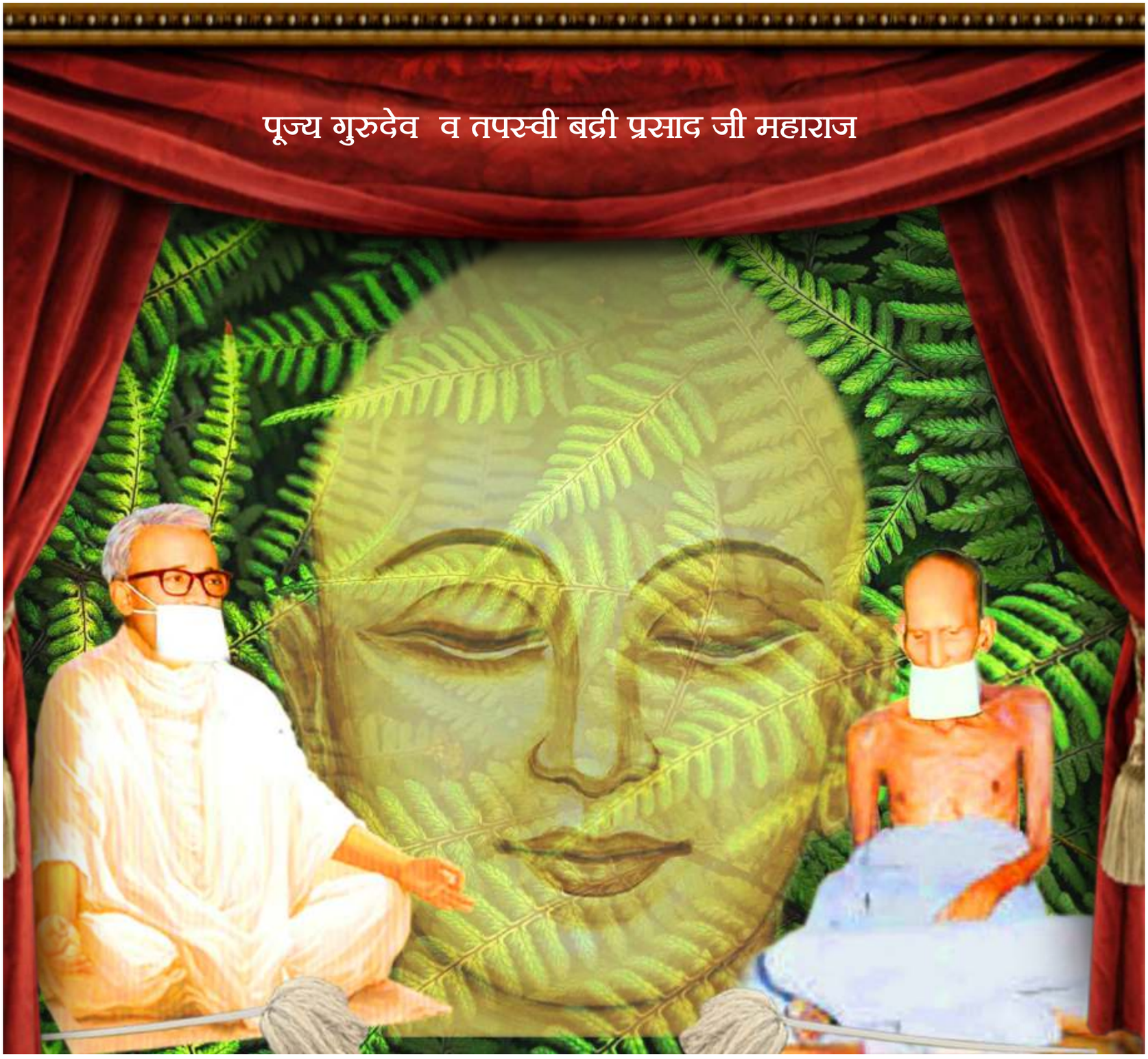
पूज्य गुरुदेव  व तपस्वी बद्री प्रसाद जी महाराज

# 10 | द्वितीय गुरुभ्राता और गुरुदेव

**संसार** में भाई-भाई का संबंध बेहद अनमोल होता है। वहीं अध्यात्म के क्षेत्र में यह संबंध पूजनीय व सम्मान का स्थान प्राप्त करता है। क्योंकि इस क्षेत्र में यह संबंध निस्वार्थ भाव व आत्मीयपूर्ण होता है। भाई उस सच्चे मित्र की भाँति होता है जो जीवन की विषम परिस्थितियों में सम्यक् मार्गदर्शन में सहायक बनता है।

इसी प्रकार अद्वितीय व्यक्तित्व के धनी गुरुदेव के द्वितीय गुरुभ्राता एवं गुरुदेव का परस्पर आत्मीय एवं सौहार्दपूर्ण संबंध था। गुरुदेव ने दीक्षा लेने के उपरांत तथा संघनायक पद पर प्रतिष्ठित होने के पश्चात् भी अपने गुरुभाई को सदैव यथायोग्य सम्मान दिया।

सन् 1943 में गुरुदेव का वैराग्यावस्था में रहे तपस्वी श्री बद्रीप्रसाद जी से साक्षात्कार हुआ। उस अवसर पर वाचस्पति गुरुदेव ने तपस्वी जी के दोनों सुपुत्रों भगवान श्री रामप्रसाद जी एवं पूज्य श्री सेठ जी महाराज के धार्मिक अध्ययन का दायित्व गुरुदेव को सौंपा।

नारनौल में जब तीनों विरक्त आत्माओं ने संयम ग्रहण किया तो गुरुदेव सर्वाधिक उत्साहित थे। गुरुदेव ने पूज्य तपस्वी जी महाराज को सदा पिता-तुल्य सम्मान दिया। दीक्षा के प्रथम दिवस पर ही गुरुदेव ने तपस्वी जी महाराज को निवेदन किया कि आज से आप हमारे पिता के सदृश है। आज से आपके दो नहीं तीन पुत्र है। आपश्री की प्रत्येक भावना व आज्ञा हमें सहर्ष स्वीकार होगी। इतिहास साक्षी है कि गुरुदेव ने अपनों वचनों को अंतिम क्षणों तक निभाया। कभी तपस्वी जी महाराज की भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचाई।

पूज्य तपस्वी जी महाराज भी गुरुदेव की संयम निष्ठा से अत्यंत प्रभावित थे। अपने बड़े गुरु भाई की भाँति सदैव उनका सम्मान करते थे।

सन् 1953 में गुरुदेव अपने पूज्य बाबा जी महाराज की सेवा में दिल्ली चांदनी चौंक में विराजमान थे। चातुर्मास प्रारंभ होने से कुछ दिन पूर्व वे टाईफाइड ज्वर से आक्रांत हो गए। उस समय जींद में विराजमान तपस्वी जी महाराज का चातुर्मास कसून में स्वीकृत हो चुका था। परन्तु जब उन्हें श्रावक लाला दुलीचंद जी के माध्यम से गुरुदेव की अस्वस्थता की जानकारी मिली। तपस्वी जी महाराज अविलंब घोर ग्रीष्म ऋतु में दिल्ली की ओर प्रस्थान कर गए। उस युग में भी गुरु भाईयों में इतनी गहन आत्मीयता थी।



सन् 1961 में पूज्य वाचस्पति गुरुदेव का मन बना कि वे अपने शिष्यों सहित पंजाब का विचरण करें। परन्तु तपस्वी जी महाराज का मन हरियाणा में विचरण का था। उस अवसर पर गुरुदेव ने तपस्वी जी महाराज को निवेदन किया कि हम सभी शिष्यों की भावना है कि हम गुरुदेव की छत्र-छाया में पंजाब का भ्रमण करें। गुरुदेव की इच्छा को सम्मान देते हुए तपस्वी जी महाराज ने अपना निर्णय परिवर्तित कर दिया और पंजाब की ओर विहार कर दिया।

पूज्य वाचस्पति गुरुदेव के देवलोकगमन पश्चात् गुरुदेव तथा तपस्वी जी महाराज का मूनक में समागम हुआ। संघ-व्यवस्था को संभालने का मुख्य प्रश्न ही चर्चा का विषय था। गुरुदेव ने अपनी भावना

व्यक्त करते हुए कहा–हमारे संघ में गुरुदेव के अभिन्न साथी पूज्य श्री रामजीलाल जी महाराज विद्यमान है। मेरा विचार है कि उन्हें संघनायक का पद दिया जाए। उस समय तपस्वी जी महाराज ने कहा कि गुरुदेव की अंतिम वसीयत (मनोरथ) यह था कि मेरे पश्चात् सुदर्शन मुनि ही संघ का उत्तरदायित्व संभाले। हम वाचस्पति गुरुदेव की आज्ञानुसार आपसे ही चातुर्मास इत्यादि संयम संबंधी आज्ञाएं मँगवाएंगे। गुरुदेव ने विनम्रता पूर्वक तपस्वी जी महाराज को सहमत कर श्री रामजीलाल जी महाराज को संघनायक का पद दिया। परन्तु तपस्वी जी महाराज ने यह स्पष्ट कर दिया कि हम आपको ही अपना आदरणीय स्वीकार करेंगे। इस घटना से स्पष्ट प्रतीत होता है कि तपस्वी जी महाराज का अपने गुरुभाई के प्रति कितना स्नेह व समर्पण भाव था।

सन् 1973 में गुरुदेव का गन्नौर चातुर्मास हुआ। उस समय संघ में भोजन व्यवस्था में मिष्ठान देने की परंपरा प्रचलित थी। गुरुदेव के चातुर्मास में श्रद्धालुओं का जन–सैलाब उमड़ पड़ा। स्वाभाविक है कि यदि मिठाई का उपयोग होगा तो समाज पर अत्याधिक खर्चे का बोझ बढ़ जाएगा। गुरुदेव ने भोजन में मिष्ठान का निषेध कर दिया। गन्नौर समाज ने भी गुरुदेव के निर्णय का स्वागत किया। उस समय तपस्वी महाराज मूनक में विराजमान थे। गुरुदेव का सुझाव पूज्य बद्रीप्रसाद जी महाराज को अत्याधिक प्रिय लगा। उन्होंने इस व्यवस्था को स्थायी रूप से सभी क्षेत्रों में प्रयुक्त करने का निवेदन किया। उसी समय से यह व्यवस्था प्रारंभ हुई जो वर्तमान में भी चल रही है।

सन् 1982 में गुरुदेव जींद में चातुर्मास प्रवास हेतु विराजमान थे। पूज्य तपस्वी जी महाराज की रोहतक में नेत्र–चिकित्सा होने वाली थी। ऑप्रेशन वाले दिन गुरुदेव ने स्वयं आयंबिल का अनुष्ठान किया और मुनियों व समाज को भी तप के लिए प्रेरित किया। अपने प्रवचन में भी तपस्वी जी महाराज के स्वास्थ्य की मंगल कामनाएं की। तपस्वी जी महाराज की शुद्ध संयम के प्रति आस्था देखें! उन्होंने ऑप्रेशन के उपरांत दलिया ग्रहण नहीं किया क्योंकि उन्हें आशंका थी कि यह मेरे निमित्त से बना होगा।

चातुर्मास के उपरांत गुरुदेव गोहाना पधारे। वहाँ उन्हें ज्ञात हुआ कि तपस्वी जी महाराज रोहतक मैडीकल में दूसरे नेत्र के ऑप्रेशन व हर्नियों के ऑप्रेशन हेतु भर्ती हुए हैं। समाचार मिला कि कुछ संतों को सेवा में प्रेषित करें। गुरुदेव की आज्ञा से मुनि 32 कि.मी. का उग्र विहार करते हुए तपस्वी जी महाराज की सेवा में उपस्थित हो गए। गुरुदेव भी रोहतक जैन स्थानक में आकर विराजित हो गए। जब तपस्वी जी महाराज मैडीकल से जैन–स्थानक पधारे तो गुरुदेव को वंदन करते हुए भावुक हृदय बोले–मैं जीवन में चिकित्सा के दोष से बचना चाहता था परन्तु विवशता के कारण मैडिकल करवाना पड़ा। गुरुदेव ने समय को देखते हुए उनकी दृढ़भावना की सराहना करते हुए कहा–आप संघ के वज्रपुरुष हैं। दृढ़ता के मापदंड है। हमारे लिए संयम के प्रेरणा स्रोत हैं। कुछ दिन रोहतक में ही गुरुदेव व तपस्वी जी महाराज का प्रवास रहा। उस अवसर पर मेरी (अरुण मुनि) दीक्षा करवाने का भाव गुरुदेव के मन में आया। उन्होंने तपस्वी जी महाराज से कहा–अरुण की दीक्षा भठिंडा में करवाने के भाव है। तपस्वी जी ने कहा–अचल की दीक्षा भी साथ करवा दे। गुरुदेव ने कभी तपस्वी जी महाराज के परामर्श को कमतर नहीं आंका। गुरुदेव ने तत्काल यह बात स्वीकार कर ली।

जब भठिंडा में दीक्षा के लिए गुरुदेव विहार करने लगे तो तपस्वी जी महाराज भावुक होकर कहने लगे। न जाने अब भविष्य में आपके दर्शन कर सकूँगा अथवा नहीं? उस समय गुरुदेव ने हौंसला बढ़ाते हुए कहा–आप मन पर किसी प्रकार का बोझ न रखें। आप दीर्घायु हैं। हम

आपके पुन: दर्शन अवश्य करेंगे। उन प्रसंगों से ही आप अनुमान लगा सकते हैं कि दोनों गुरु भाईयों कितनी आत्मीयता थी।

सन् 1985 में गोहाना में तीन दीक्षाओं का प्रसंग उपस्थित था। अचानक तपस्वी जी महाराज ने फरमाया दीक्षा के अवसर पर किसी भी बाह्य संघ को निमंत्रण पत्र न भेजा जाए। गुरुदेव ने भी तपस्वी जी महाराज की इच्छा को अविचारणीय मानते हुए निमंत्रण पत्र पोस्ट करने से सबको मना कर दिया। गुरुदेव के मन में अपने गुरु भ्राता की भावना का महत् सम्मान था।

गुरुदेव अक्सर फरमाते थे कि तपस्वी जी महाराज के हाथ में एक रेखा ऐसी अंकित है जो उन्हें विश्व प्रसिद्ध करेगी। परन्तु असमंजस यह था कि यह सब कैसे संभव होगा? सन् 1987 में रोहतक में जब गुरुदेव का तपस्वी जी महाराज से अंतिम मिलन हुआ। उस अवसर पर भी गुरुदेव ने यही बात दोहराई। परन्तु तपस्वी जी महाराज गुरुदेव का संदेश सहज भाव से श्रवण करते रहे।

गुरुदेव 1987 में चातुर्मास हेतु गोहाना में विराजमान थे। 16 जुलाई गुरुवार के दिन गुरुदेव ने प्रात:कालीन प्रतिक्रमण से पूर्व संतों से कहा– मुझे रात्रि में अशुभ स्वप्न आया है। जिससे किसी अशुभ घटना के संकेत मिल रहे हैं। संभवत: तपस्वी जी महाराज के प्राणों पर गहरा संकट आने वाला है। गुरुदेव ने सभी संतों को विशेष माला पाठ व स्वाध्याय की प्रेरणा दी और कहा तपस्वी जी महाराज के स्वास्थ्य की मंगलकामना करें। तभी पाँच अगस्त को अचानक समाचार मिला कि तपस्वी जी महाराज ने संथारे का प्रत्याख्यान किया है।

जब तपस्वी जी महाराज ने संथारे का प्रत्याख्यान किया। तभी से गुरुदेव का ध्यान समग्र रूप से उनकी ओर केन्द्रित था। गुरुदेव उनकी प्रशस्ति व मंगल कामना करते रहे। जो लेखन किया अथवा जो कुछ प्रवचन में फरमाया वे सब कथन करना असंभव है। क्योंकि गुरुदेव की चिंतन शक्ति अवर्णनीय थी। उधर तपस्वी जी महाराज आत्मध्यान में तल्लीन थे। इधर गुरुदेव उनके ध्यान में लीन थे। भजन बनाते, पत्र लिखते लिखवाते। जैसे अब उनके पास मात्र एक ही विषय शेष था। 16 अक्तूबर को तपस्वी जी महाराज का संथारा आनंद से संपूर्ण हुआ। उनकी आत्मा दिव्यलोक में विराजित हो गई। परन्तु गुरुदेव का तो जैसे अर्धांग छिन्न–भिन्न हो गया हो। गोहाना में श्रद्धांजलि सभा का आयोजन हुआ। गुरुदेव ने भावपूर्वक अश्रुपूर्ण श्रद्धांजलि तपस्वी जी महाराज को समर्पित की। उस अवसर पर ऐसा प्रतीत होता था। जैसे वे अपनी आत्मा से बोल रहे हो। दोनों महापुरुष भले शारीरिक दृष्टि से भिन्न हो परन्तु आत्मा एक समान थी।

मेरा सौभाग्य रहा है कि मैंने भी पूज्य तपस्वी जी महाराज की भव्य आकृति के दर्शन कर अपने नेत्रों को पावन किया है। मुझे उनकी शरण में शयन व विचरण का सुअवसर भी प्राप्त हुआ। उन्होंने मुझे स्मरण करने के लिए सूत्र पाठ देने की भी कृपा की है। उनकी चरण रज से मेरा मस्तक सनाथ हुआ है। ऐसे महापुरुष की शरण में व्यतीत किए गए दिव्य क्षण मेरे जीवन का सच्चा धन है। गुरुदेव एवं तपस्वी जी महाराज के निस्वार्थ प्रेम का मैं भी साक्षी रहा हूँ।

**ऐसे महापुरुषों के चरणों में लाखों नमन्!**

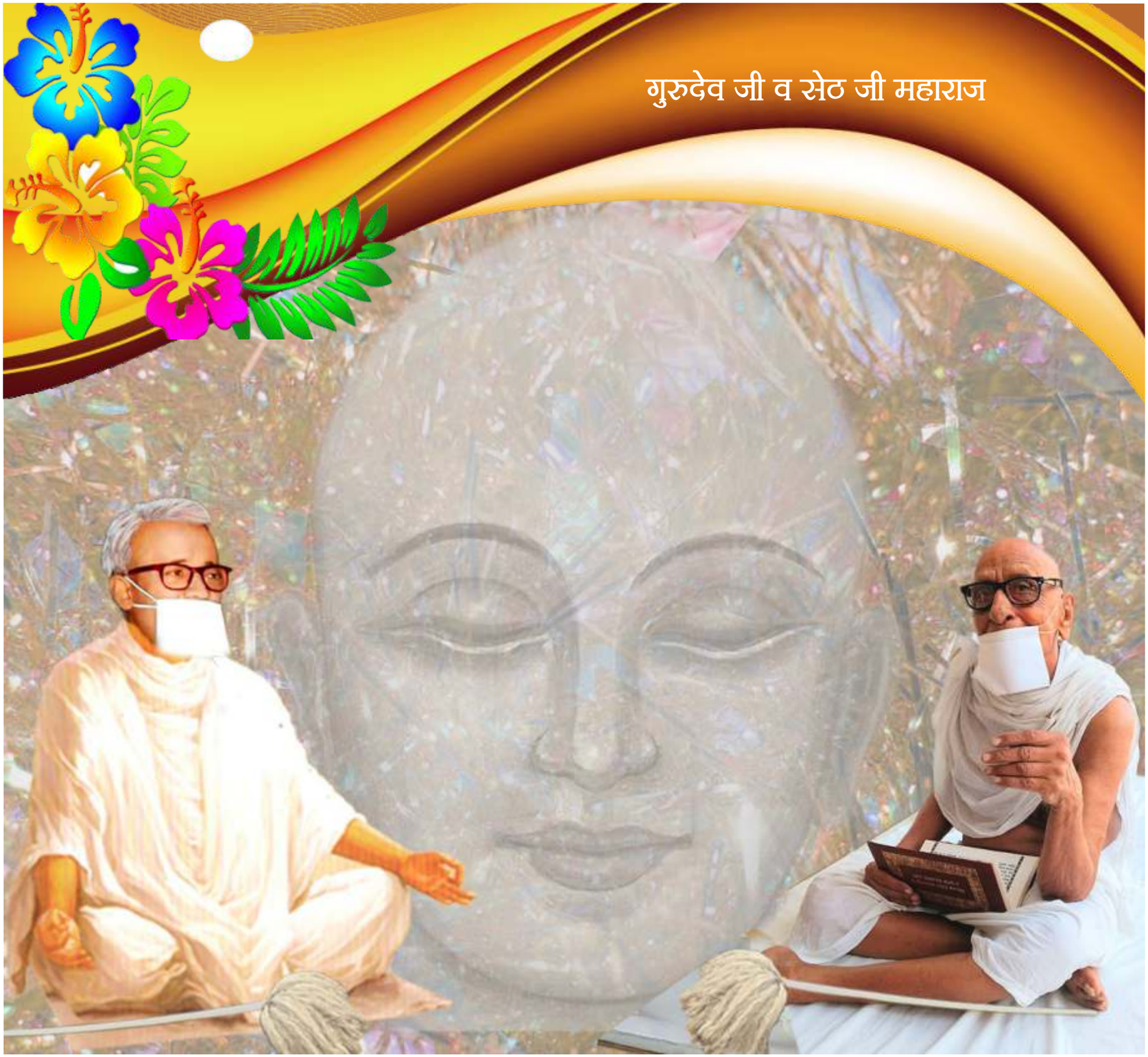
गुरुदेव जी व सेठ जी महाराज

# 11 | तृतीय गुरुभ्राता और गुरुदेव

**गुरुदेव** के गुरुभ्राताश्री की शृंखला में गच्छाधिपति श्री प्रकाश चन्द्र जी महाराज का तृतीय स्थान है। ये महापुरुष आध्यात्मिक साधना की साकार मूर्ति, सरलमना हैं। इन महापुरुषों की जीवन पद्धति में दिव्य स्वरूप की झलक है। इन्होंने भी वाचस्पति गुरुदेव की आज्ञा से गुरुदेव से अध्ययन प्रारंभ किया। पूज्य श्री सेठ जी महाराज में यह विशेषता है कि उन्होंने ज्ञान को पठन या श्रवण तक सीमित नहीं रखा। उसे अपने जीवन का अभिन्न अंग बनाया।

गुरुदेव अक्सर फरमाया करते थे कि मेरे दोनों गुरु भाई साधना के क्षितिज में सूर्य व चन्द्र के समान है। सन् 1960 में रोहतक की ओर विहार गतिमान था। धामड से कान्हीं गाँव के मध्यमार्ग में गुरुदेव का पाँव तीक्ष्ण शूल से बिंध गया। सरलता व सहनशीलता की प्रतिमूर्ति गुरुदेव के पैर में वेदना थी। गंतव्य स्थान पर पधार कर जब पूज्य सेठ जी महाराज ने पैर को उस स्थान से जरा-सा कुरेदा तो कांटा बाहर आ गया। गुरुदेव ने सेठ जी महाराज की प्रशंसा करते हुए कहा-सेठ जी महाराज! आपके हाथों में ही चमत्कार है।

गुरुदेव अक्सर दूज के चन्द्रमा को देखने में रूचि रखते थे। दूज के चन्द्र दर्शन के पीछे गुरुदेव की क्या मानसिकता थी। इस विषय में स्पष्ट जानकारी नहीं है। एकदा प्रतिक्रमण के पश्चात् सभी संतों ने आकाश में चन्द्र देखने के प्रयत्न किए। परन्तु किसी को भी चन्द्र दर्शन नहीं हुए। तभी गुरुदेव को पूज्य सेठ जी महाराज ने इंगित किया तभी चंद्रमा प्रकट हो गया तो उसी मौके गुरुदेव और सभी संतों ने चन्द्रमा देखा। गुरुदेव मुस्कुराते हुए बोले-हमारे सेठ जी महाराज तो खगोल विज्ञान के विशेषज्ञ हैं।

जब मैं 1981 में गुरुदेव के चरणों में वैरागी बनकर आया तो गुरुदेव ने मुझे 17 दिसंबर को इसराणा में विराजित हमारे संघ के तीर्थ स्वरूप त्रिवेणी के दर्शन करने प्रेषित किया। जब मैं दर्शन कर पुन: गुरुदेव के समीप आया तो गुरुदेव बोले-दोनों संतों ने तो तुमसे वार्ता की होगी। परन्तु सेठ जी महाराज ने मौन पूर्वक तुम्हें आशीर्वाद दिया होगा। मुझे आश्चर्य हुआ कि यह सब गुरुदेव को कैसे ज्ञात हुआ? परन्तु गुरुदेव ने स्वयं कृपा करते हुए समाधान दिया कि सेठ जी महाराज अधिकतम मौन साधना करते हैं? वे उच्च कोटि के साधक है।

गुरुदेव पूज्य सेठ जी महाराज की कई बार जाहिर में प्रशस्ति करते हुए फरमाते थे कि पूज्य सेठ जी महाराज हमारे संघ की आन-बान-शान है। ये हमारे संगठन की आधार शिला हैं। भावुक हृदय से निसृत गुरुदेव के ये उद्‌गार जन-जन को द्रवित कर देते थे।

एक बार गुरुदेव ने भाव पूर्ण पत्र लिखकर अपनी भावना प्रकट की। श्री प्रकाश चन्द्र जी महाराज एवं भगवन् श्री रामप्रसाद जी महाराज का तेज़ सूर्यचन्द्र के समान उज्ज्वल है। दोनों आत्माएं निकट भवी हैं। हमें दोनों महापुरुषों का भव-भव तक शरणा प्राप्त हो।

मुझे स्मरण है कि सन् 1985 में गुरुदेव रोहतक में ग्रीष्म ऋतु में

स्थानक के ऊपरी तल पर विराजमान थे। मैंने निवेदन किया–गुरुदेव! जल की कृपा करोंगे? गुरुदेव ने स्वीकृति में इशारा किया। मैं पात्र में जल लेकर गुरुदेव के समीप आया। गुरुदेव ने पात्र तो पकड़ा, परन्तु जल ग्रहण करने से पूर्व ही रुक गए। मैं घबराया। कहीं अनजाने में कोई त्रुटि तो नहीं हो गई। मैंने भय पूर्वक पुनः दोहराया गुरुदेव! कृपा करें। गुरुदेव बोले– यह पानी तुम स्वयं लाए अथवा श्री सेठ जी महाराज से पृच्छा कर लेकर आए हो? मैंने कहा–गुरुदेव! मैं स्वयं लाया हूँ। तभी गुरुदेव ने मुझे समझाया। जल की सारी व्यवस्था का उत्तरदायित्व पूज्य सेठ जी महाराज संभालते हैं। आगे से उनकी आज्ञा से ही जल लेकर आया करो। जिस जल को सेठ जी महाराज स्पर्श कर लेते हैं। वह जल अमृत तुल्य बन जाता है।

इस युग में भी अपने गुरु भाई के प्रति इतना सम्मान का भाव रखना किसी आश्चर्य से कम नहीं है। क्या इसे ही प्रेम की पराकाष्ठा नहीं कहते? क्या यही साधना का प्रैक्टिकल रूप नहीं है? क्या यह मदन गुरु के कुल के संस्कारों की महानता नहीं है?

मैं कृतकृत्य हो गया, जो मुझे इस महान संघ में दीक्षित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। ऐसे आत्मार्थी संतों की चरण रज से अपने मस्तक को अभिमंत्रित करने का अहोभाग्य प्राप्त हुआ। मुझे इस महान परम्परा का प्यार–दुलार मिला। मुझे इस बात का सात्त्विक गौरव भी है कि मैं महापुरुषों द्वारा प्रदर्शित इस पथ पर अग्रसर हूँ।

इन चारों महापुरुषों में एक समानता यह भी थी कि सभी ने 18 जनवरी के दिन दीक्षा अंगीकार की। सन् का अंतर था। परन्तु माह व दिनांक एक ही था। एक ही गुरु परंपरा में दीक्षित हुए।

एक बार मूनक में गुरुदेव व पूज्य सेठजी महाराज का भाव–विभोर करने वाला मधुर मिलन हुआ। गुरुदेव ने पूज्य सेठ जी महाराज को स्नेहपूर्वक अपनी छाती से लगा लिया। हजारों द्रष्टा इस भावुक दृश्य को निर्निमेष नेत्रों से निहार रहे थे। वह दृश्य मनोभिराम था। गुरुदेव के प्रति गुरु भाइयों का समर्पण एवं गुरुदेव का गुरु भाईयों के प्रति स्नेह व सम्मान स्वयं में अद्वितीय उदाहरण है। ऐसा पवित्र संबंध दृष्टिगोचर होना, इस युग में दुर्लभ है।

**ऐसे महान गुरु को शतशः नमन!**

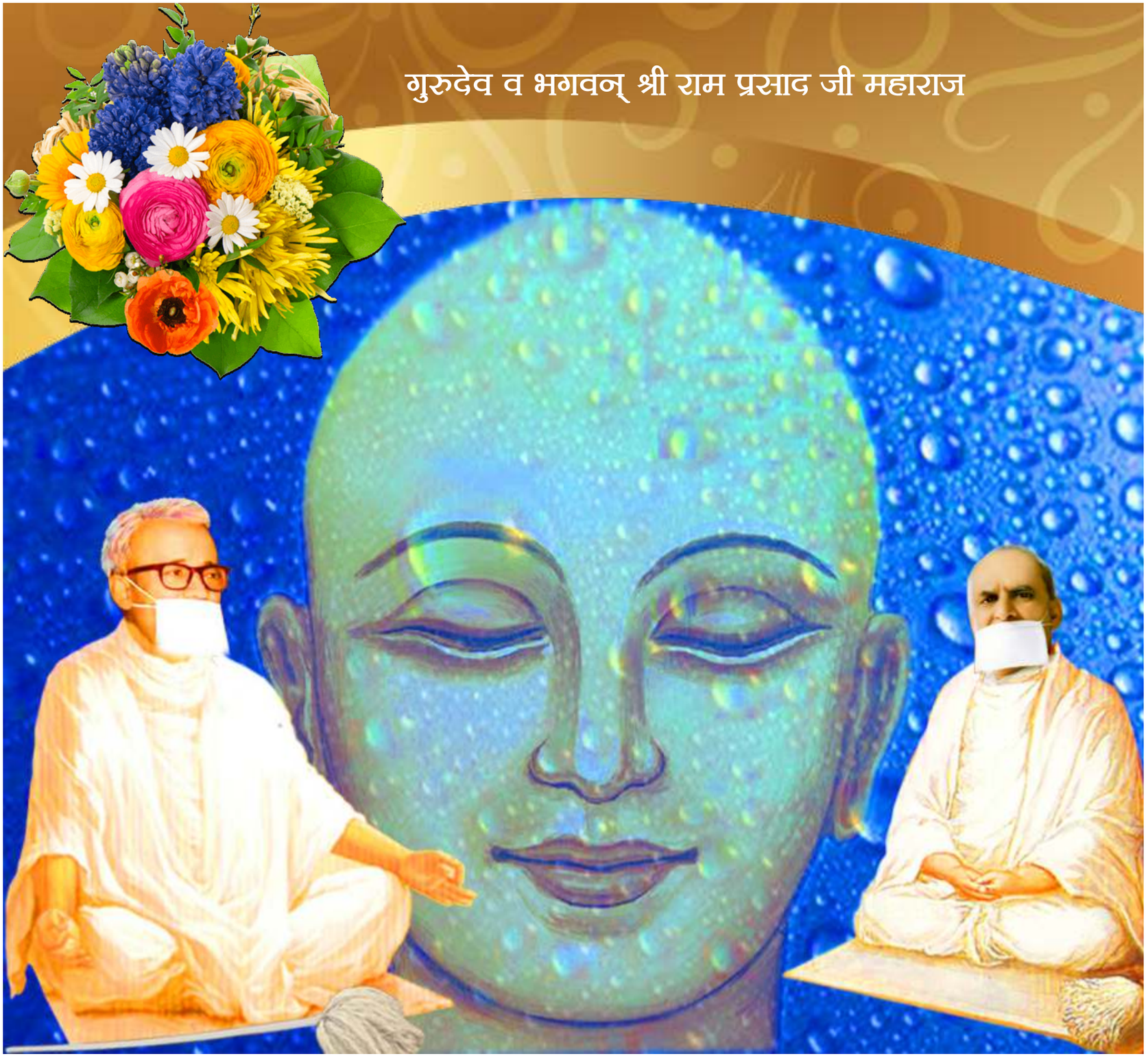
गुरुदेव व भगवन् श्री राम प्रसाद जी महाराज

# 12 | चतुर्थ गुरुभ्राता और गुरुदेव

**( भगवान् श्री रामप्रसाद जी महाराज )**

**गुरुभ्रताओं** की श्रृंखला में चतुर्थ महत्त्वपूर्ण स्थान था। पूज्य गुरुदेव के हृदय के सन्निकट रहने वाले प्रिय गुरुभाई भगवन् श्री रामप्रसाद जी महाराज। भले ही पूज्य गुरुदेव से बाह्य दृष्टि से भिन्न-भिन्न दृष्टिगोचर होते थे। परन्तु वास्तव में इन दोनों में अभिन्न साम्यभाव था। एकरूपता थी। गुरु, गौत्र, वर्ण, स्वभाव, परम्परा, लक्ष्य व विचरण क्षेत्र की दृष्टि से दोनों में कोई भेद नहीं था। दोनों में परस्पर अभिन्न संबंध था।

प्रकृति ने दोनों आत्माओं को चाहे पृथक कुलों में उत्पन्न किया हो। परन्तु गुरु मदन की छत्रछाया में इन दोनों आत्माओं का अभिन्न संबंध बन गया था। गुरु भाईयों में सगे भाईयों से भी अधिक स्नेह था। एक भाई का कथन दूसरे भाई के लिए सम्मान का विषय था। दूसरे भाई की भावना पहले भाई के लिए आदर्श थी। एक भाई के विकास को देखकर दूसरे भाई का हृदय उल्लास से भर जाता था। दूसरा भाई जब जीवन में ऊचाईयों का स्पर्श करता तो पहले भाई के हृदय से अनुमोदना के स्वर झंकृत होने लगते। दोनों भाईयों में एक-दूसरे को सम्मान देने की प्रतिस्पर्धा थी। स्वार्थ का लेश-मात्र भी भाव नहीं था। एक भाई शासन सेवा हेतु शिष्यों को तैयार करता तो दूसरा उस शिष्य के जीवन को संवारने का दायित्व संभालता था। दूसरे भाई को यदि सेवा की आवश्यकता होती तो प्रथम भ्राता अपने शिष्यों को उपहार स्वरूप भेंट कर देता था।



सन् 1943 में वाचस्पति गुरुदेव ने श्री प्रकाशचंद जी व श्री रामप्रसाद जी दोनों बालकों की शिक्षा, सारणा, वारणा, धारणा और शारीरिक व मानसिक विकास व समाधि का संपूर्ण उत्तरदायित्व गुरुदेव को सौंपा। दोनों बालकों ने भी गुरुदेव का गुरु तुल्य सम्मान किया। तीनों गुरु भाईयों में आत्मीयता इतनी गहरी व सत्यता पर आधारित थी कि उसमें कृत्रिमता का अंशमात्र भी नहीं था। गुरुदेव ने बंधुद्वय की प्रखर प्रतिभा का आंकलन कर अपनी समग्र शक्ति से दोनों बालकों का जीवन निर्माण किया। संस्कृत व्याकरण की टिप्पणियां लिखित रूप से इतने सहज व सरल भाव से समझाई कि अग्रिम शिक्षण के लिए बालको की नींव सुदृढ़ बन सके। दोनों बालक गुरुदेव के स्नेह से किस तरह अभिभूत थे। इस बात का परिणाम उनके द्वारा लिखित एक प्राचीन पत्र से प्राप्त होता है। अप्रैल 1966 में गुरुदेव को लिखे गए दीक्षा संदेश के पत्र को पढ़ने का सौभाग्य मुझे भी प्राप्त हुआ। जिसके भाव कुछ इस प्रकार थे। *'मैं अपने महान प्रभावक श्री सुदर्शन लाल जी महाराज के संबंध में क्या वर्णन करूं? उनका मुझ पर अनन्त उपकार है। जब मैं गुरु चरणों में दीक्षार्थ उपस्थित हुआ। तब आपने जितना परिश्रम मेरे विकास के लिए किया। संभवतः कोई गुरु अपने शिष्यों पर भी इतना परिश्रम नहीं करता। मानो गुरुदेव जैसे एक शिल्पकार हो और आप उस मूर्ति में ज्ञान, ध्यान, संवेग-निर्वेद, विनय एवं सहिष्णुता की प्राण प्रतिष्ठता करने वाले भगवान। आज आप स्वयं एक महान शिल्पकार है। अपने दायित्वों को मुझसे कहीं अधिक समझने और निभाने वाले हैं।'*

सन् 1953 में गुरुदेव ज्वर से पीड़ित हुए तो नारनौल की त्रिवेणी ने उस अवसर पर गुरुदेव की सेवा की दृष्टि से दिल्ली चाँदनी चौंक में

चातुर्मास किया। उस चातुर्मास में भगवन् जी ने श्री भगवती सूत्र पर आगमिक प्रवचन किए। गुरुदेव ने इस चातुर्मास में प्रवचन इत्यादि से विश्राम किया। गुरुदेव के लिए यह चातुर्मास समाधिपूर्ण रहा।

10 मई 1959 में जब जग्गुमल जी महाराज का देवलोकगमन हुआ। तब वाचस्पति गुरुदेव की भावनाओं को व्यक्त करता हुआ भगवन् श्री रामप्रसाद जी महाराज द्वारा लिखित यह पत्र अवश्य पठनीय है।

*श्रद्धेय श्री सुदर्शनलाल जी महाराज सविनय चरण वंदन!*

*आपका समाचार प्राप्त हुआ। बाबा जी महाराज के बिछोह से उत्पन्न नैसर्गिक वेदना जब मैं आपके पत्र के माध्यम से पढ़ रहा था तो मेरा मन रूआंसा हो गया। आत्मीय संबंधों की स्थिति चिर-चिरंतन छाया अक्समात् विलीन हो गई। यह सर्वानुभूत सत्य है कि इस छाया में रहकर आप भी विशाल छाया बन गए हैं। जिसकी शरण में कुछ और अंकुर भी विकास की आशा लिए पल्लवित हो रहे हैं। यह उससे अधिक और प्रबल लक्ष्य है। वियोग मूलक पूर्व सत्य को ये उत्तर सत्य अपने में समेट कर समुद्र बनाएगा। क्यों न हम ऐसी सकारात्मक आशा करें? आप जैसे समर्थ पुरुषों की सहिष्णुता तथा कर्मण्यता मेरे जैसे लघुतरों के लिए सनातन आदर्श रही है।*

आप इन श्रद्धा-स्निग्ध पंक्तियों को पढ़कर अनुमान लगा सकते हैं। एक गुरुभ्राता अपने दूसरे गुरु-भ्राता का हृदय की किन गहराईयों से सम्मान करता था। दूसरा भाई भी अपने गुरुभाईयों पर स्नेह का कृपा वर्षण करता था।

संघशास्ता के पद पर आसीन होने के उपरांत भी गुरुदेव की विनम्रता में कोई अभाव नहीं हुआ। जैसे फल लगने पर वृक्ष झुक जाते हैं उसी प्रकार अधिकार मिलने पर गुरुदेव सद्गुणों के भार से और विनम्र होते गए। भगवन् श्री रामप्रसाद जी महाराज ने गुरुदेव पर काव्यात्मक रचना बनाते हुए एक मनोरम भजन लिखा।

**सुदर्शन मुनि प्यारे, हमारे मन में,**
**समाए ज्यों पपीहा, मगन घन में।।**

जब 1967 में श्री विजय मुनि जी महाराज की दीक्षा के अवसर पर प्रसिद्ध गायक रमेश जैन ने यह भजन जनसभा में गाया तो श्रद्धालु दीवाने होकर झूमने लगे। उस समय यह भजन अत्याधिक प्रचलित भी हुआ। भगवन् श्री रामप्रसाद जी महाराज ने ऐसी लेखनी कभी किसी अन्य जीवित महापुरुष के जीवन पर नहीं चलाई। यहाँ तक कि अपने गुरुदेव पूज्य वाचस्पति जी महाराज पर भी भजन नहीं बनाया। परन्तु उनका गुरुदेव के प्रति विशेष आकर्षण था। वे गुरुदेव के विषय में बोलने, श्रवण करने व लिखने में अपूर्व आनंद का अनुभव करते थे।

सन् 1969 के अलवर चातुर्मास के उपरांत गोहाना में संत सम्मेलन का आयोजन था। मुनियों के मधुर मिलन से वहाँ मनोरम छटा व्याप्त थी। उस समय भी भगवान् श्री ने गुरुदेव के स्वागतार्थ एक गीतिका की रचना की।

**'सुदर्शन मुनि जी श्री संघ के शृंगार हैं।**
**शीर्ष मणि हैं और हृदयों के हार हैं।।'**

इस पंक्ति से आप अनुमान लगाए कि भगवन् श्री रामप्रसाद जी महाराज के हृदय में गुरुदेव का क्या स्थान था?

सन् 1970 में सफीदों में गुरुदेव ने पूज्यपाद भगवन् श्री रामप्रसाद जी महाराज के प्रवचनों की प्रशंसा करते हुए कहा-रामप्रसाद! तुम्हारे प्रवचनों में वृत्तियों को अंतर्मुखी बनाने की अद्भुत कला है। जब कभी स्मरण शक्ति का प्रसंग चलता तो दोनों महापुरुषों में एक-दूसरे को श्रेय देने की होड़ लग जाती।

सन् 1963 में वाचस्पति गुरुदेव के देहावसान के उपरांत भगवन् श्री ने वाचस्पति गुरुदेव की समस्त सामग्री, प्रवचनों के पन्ने, हस्त लिखित प्रतियां, कागज इत्यादि सब गुरुदेव को समर्पित कर दिया।

सन् 1987 के पश्चात् मुकेश मुनि जी महाराज की दीक्षा के प्रसंग पर मुनि संघ एकत्रित हुआ। उस अवसर पर भगवन् श्री ने अपनी श्रद्धा-आस्था गुरुदेव श्री के प्रति समर्पित करते हुए फरमाया था। 'आज तक हम पूज्य तपस्वी जी महाराज की आज्ञानुसार विचरण करते थे। आज से हमारा विचरण श्री सुदर्शन लाल जी महाराज की आज्ञानुसार चलेगा। पूज्य तपस्वी जी महाराज की क्रिया व कथन कैसा था? इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण हमारे लिए यह है कि श्री सुदर्शन लाल जी महाराज क्या कहते हैं? अपने ज्येष्ठ गुरुभ्राता के प्रति भगवन् श्री में अद्भुत समर्पण था।

अमृतसर में तीनों गुरुभाईयों का संयुक्त चातुर्मास हुआ। जब गुरुदेव सभा में श्री 'रायपसेणियं सूत्र' के आधार पर कथा-वाचन करते तो भगवन् श्री रामप्रसाद जी महाराज उसे कलम बद्ध करते थे।

1997 में जींद क्षेत्र में गुरुभाईयों का मिलन हुआ। संयोगवश परिस्थितियों के कारण परस्पर आज्ञा संबंध भंग हो गया परन्तु दोनों महापुरुषों का हृदय अभिन्न रहा। यही कारण था कि गुरुदेव जीवन के अंतिम क्षणों तक भगवन् श्री रामप्रसाद जी महाराज का स्मरण करते रहे।

अत: गुरुदेव के दिव्यलोक गमन के पश्चात प्रथम सांत्वना पत्र भगवन् श्री की ओर से लिखवाया गया। जिसमें उन्होंने हृदय को द्रवित कर देने वाली मार्मिक श्रद्धांजलि अर्पित की। उन्होंने लिखा-'आज हमारा छत्र भंग हो गया। सिंहासन उजड़ गया। मयाराम जी महाराज व गुरुदेवश्री मदनलाल जी महाराज के रिक्त स्थान की पूर्ति करने वाला अंतिम स्तंभ भी टूट गया। आज सचमुच मुझे अनाथता का अनुभव हो रहा है। परन्तु मैं अभागा अश्रुपात के अतिरिक्त कुछ भी करने में समर्थ नहीं हूँ।'

27 अप्रैल 1999 के दिन टोहाना में आयोजित प्रथम सार्वजनिक सभा में फरमाया था-'मेरा जीवन तो उनके संस्मरणों से सुसज्जित है। उनके संस्मरण व स्मृतियों का खजाना जितना मेरे अंत:करण में सुसज्जित है। अन्य किसी के पास नहीं होगा। मैं दीक्षा से पूर्व उनके संपर्क में आया था। मात्र उनके सान्निध्य में बैठने से ही संयम के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होने लगती है। वे मेरे सखा, साथी, भ्राता व गुरुतुल्य थे। हमारा परस्पर जितना प्रगाढ़ संबंध था शायद किसी अन्य संत का नहीं रहा होगा। महाभारत में जैसे कर्ण व कवच का संबंध था। ठीक वैसा ही हमारा सरोकार था।'

भगवन्श्री ने गुरुदेव को सदैव गुरुतुल्य सम्मान दिया। लक्ष्मण के देहावसान पर राम जैसे भाव-विह्वल होकर रोए थे। वही अवस्था गुरुदेव के पंचत्व विलीन के समाचार को सुनकर भगवन्श्री की हो गयी थी।

गुरुदेव भी सदैव अपने गुरुभ्राताओं के लिए एक विशेषण का उपयोग करते। 'जीवन साथी।' भला अपने किसी प्रिय के लिए इससे सम्मानजनक विशेषण नहीं हो सकता।

**ऐसे महान् गुरुदेव को बारंबार वंदन!**

# गुरुदेव और परम्परा

पूज्य श्री रामबख्श जी महाराज

तपस्वी रत्न श्री नीलोपथ जी महाराज

पूज्य आचार्य अमर सिंह जी महाराज

पूज्य श्री हरनाम दास जी महाराज

संघशास्ता गुरुदेव श्री सुदर्शन लाल जी महाराज

पूज्य वाचस्पति श्री मदन लाल जी महाराज

पूज्य श्री मया राम जी महाराज

पूज्य श्री नाथुलाल जी महाराज

पूज्य श्री छोटे लाल जी महाराज

# 13 | गुरु परम्परा और गुरुदेव

**जब** कोई साधक अपने आध्यात्मिक विकास के लिए किसी परम्परा का चयन करता है तो उस परम्परा को गुरु परम्परा कहा जाता है। संयम के पथ पर गुरु ही वह आलंबन होते हैं जो शिष्य को संसार सागर से तिरने की विधि का शिक्षण देते हैं। महान गुरु परम्परा का इतिहास साधक के संयम को सुदृढ़ बनाने में सहायक सिद्ध होता है।

पूज्य गुरुदेव की गुरु परम्परा का भव्य इतिहास दुर्लभ संत-रत्नों की सुदीर्घ शृंखला से सुसज्जित था। जब हम गुरुदेव की गुरु परम्परा के महान संतों की जीवन झांकी का अन्तस् की गहराई से अवलोकन करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे संपूर्ण विश्व की विरल विभूतियाँ हीरे-पन्नों की भांति एक घट में आकर समाहित हो गई हो।



जिस प्रकार तारामंडलों में चन्द्रमा और ग्रह-नक्षत्रों में सूर्य का विशिष्ट स्थान है। उसी प्रकार साधना के क्षितिज पर पूज्य आचार्य श्री अमरसिंह जी महाराज का नाम देदीप्यमान है। उनके सुशिष्य बने पूज्य श्री रामबख्श जी महाराज वे अपने युग के आगम-ज्ञाता महान् पंडित-प्रवर थे। उनके पंडित्य के तेज के समक्ष विरोधी थर-थर कांपते थे। श्री रामबख्श जी के शिष्य बने पूज्य तपस्वी रत्न श्री नीलोपथ जी महाराज। जिन्होंने तप पूर्वक संयम का पालन कर अपनी गुरु परम्परा के नाम को दिग् दिगन्त तक चमकाया। पूज्य नीलोपथ जी महाराज के शिष्य बने पूज्य श्री हरनामदास जी महाराज। इनकी महानता गुरु-परम्परा में इसलिए भी उल्लेखनीय है क्योंकि इन्होंने पूज्य मयाराम जी जैसा अवतारी महापुरुष जैन समाज को प्रदान किया। पूज्य श्री मयाराम जी महाराज ने अपने गच्छ को एक नया स्वरूप प्रदान किया। उस युग में उन्होंने अपनी गुरु-परम्परा को चरम शिखर तक पहुँचाया। उसके पश्चात् पूज्य श्री छोटेलाल जी महाराज अपनी गुरु परम्परा की तेजस्विता को क्षीण नहीं होने दिया। पूज्य गुरुदेव का नाम भले ही छोटेलाल था परन्तु उनके संयम की ऊंचाई के समक्ष समेरू पर्वत भी बोना था। पूज्य जी मयाराम जी महाराज के पश्चात् लोग पूज्य श्री छोटेलाल जी महाराज में उनकी छवि निहारते थे। पूज्य श्री मयाराम जी महाराज ने जो संयम व संगठन का बिगुल बजाया था। उसकी दिव्य ध्वनि को पूज्य छोटेलाल जी महाराज ने मंद नहीं होने दिया।

पूज्य श्री नाथुलाल जी महाराज ने संयम की उस मशाल के प्रकाश में अपने संघ को निरन्तर आगे बढ़ाया। उन्होंने संयम की सुदृढ़ प्राचीर पर कभी शिथिलता की दरारें उभरने नहीं दी। पूज्य श्री नाथुलाल जी महाराज के जीवन के ऐसे अनेकों उदाहरण है जब उन्होंने संयम की सुरक्षा के लिए श्री मदनमुनि जी महाराज सरीखा योग्य शिष्य प्राप्त हुआ। पूज्य वाचस्पति गुरुदेव तो संयम के प्रबल समर्थक थे। संयम की दृढ़ता के लिए उन्होंने पद, प्रतिष्ठा की भी आकांक्षा नहीं की। परन्तु उनका एक स्वप्न अधूरा ही रहा। वाचस्पति गुरुदेव चाहते थे कि संघ व समाज में संगठन बना रहे। परन्तु इसके लिए संयम के मूल्यों के साथ खिलवाड़ न हो। गुरु मदन ने अपने जीवन काल में गुरु-परम्परा की मर्यादाओं का कभी उल्लंघन नहीं किया। गुरु-परम्परा की सुरक्षा के लिए उन्होंने समाज के अनेक विरोध झेले। कटुता का विषपान भी कर गए। परन्तु संयम के पथ पर अड़िग बने रहे। गुरु मदन अपनी परम्परा के रक्षार्थ गरल पीने वाले शिवशंकर थे।

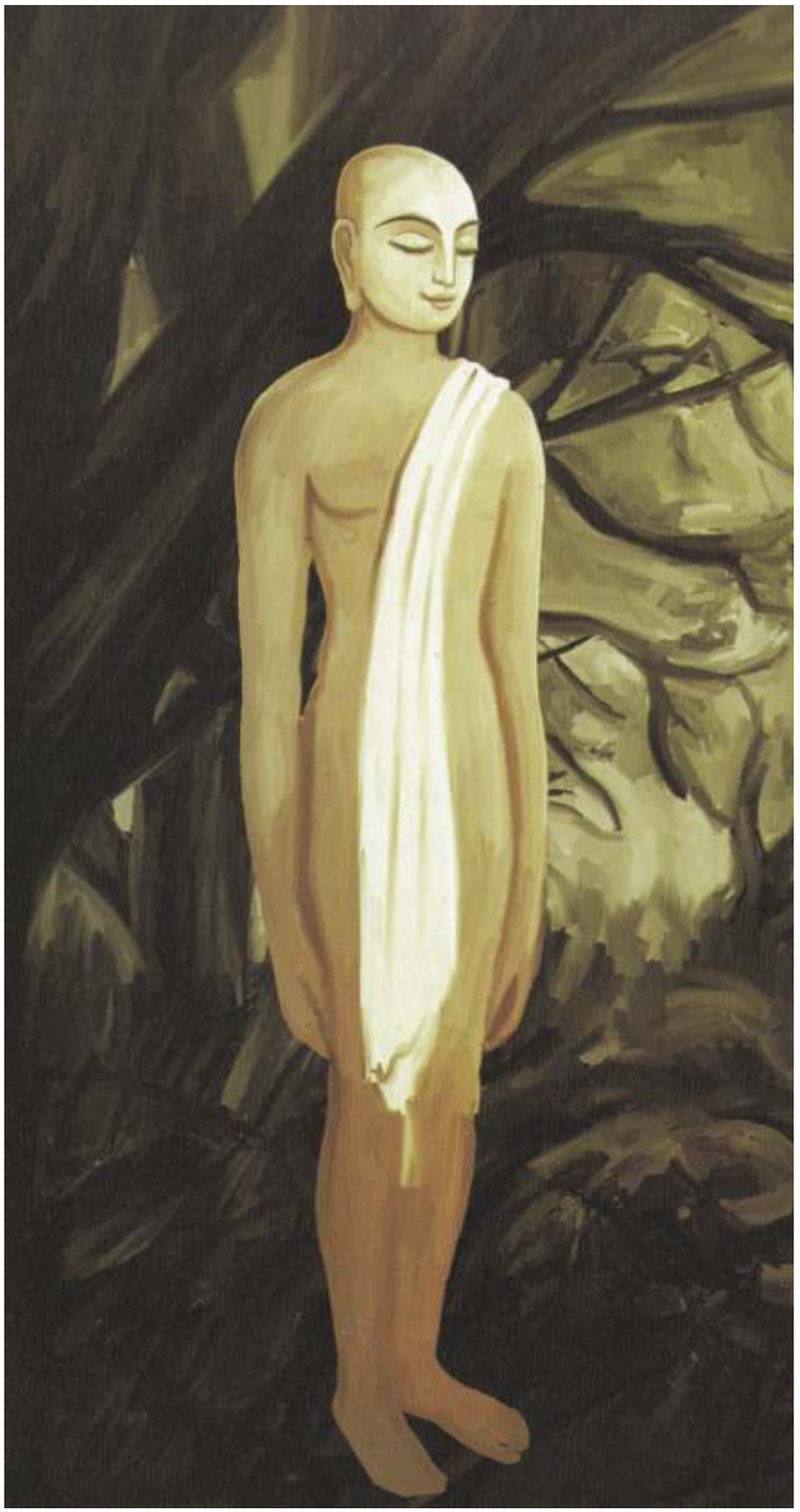

उन्होंने वर्षों से प्रवाहित गुरु-परंपरा की निर्मल धारा को कभी मलिन नहीं होने दिया। उस उज्ज्वल छवि को कभी भी धूमिल नहीं किया। गुरुदेव श्री सुदर्शनलाल जी महाराज अपनी गुरु-परम्परा के प्रति पूर्णत: समर्पित थे। गुरुदेव ऐसे महापुरुष थे जिनमें संपूर्ण गुरु-परम्परा की महानता का प्रतिबिम्ब छलकता था।

गुरुदेव में पूज्य मयाराम जी महाराज का संयम, पूज्य श्री छोटेलाल जी महाराज का अनुशासन, पूज्य श्री नाथुलाल जी महाराज की करूणा, पूज्य गुरुदेव श्री मदनलाल जी महाराज की स्पष्टवादिता थी। ये समस्त सद्गुण उनके व्यक्तित्व में झलकते थे। गुरुदेव की भव्य आकृति के दर्शन कर ऐसा प्रतीत होता था कि हमारी संपूर्ण परम्परा हमारे समक्ष समग्र रूप में उपस्थित है।

गुरुदेव ने अपनी गुरु-परम्परा का नाम चहुँ दिशाओं में रोशन किया। कभी किसी श्रावक के मुख से भी यह शब्द सुनने को नहीं मिले कि गुरु सुदर्शन ने अपनी गुरु-परम्परा के गौरव को क्षीण किया है। गुरुदेव की छत्र-छाया में गुरु-परम्परा की ख्याति दिन-प्रतिदिन वर्द्धमान होती रही।



**ऐसे दिव्य महापुरुष का बारम्बार अभिनंदन!**

तीर्थंकर पद श्रेष्ठ है
यह अनंत गुणों का स्थान है
जो साधक इनके गुणों का प्रतिबिंब अपने
हृदय में उतार सके, वह पदस्थ ध्यान
की धारा है

गुरुदेव और पूज्य योगीराज रामजी लाल जी म.

# 14 | पूज्य योगीराज रामजी लाल जी म. और गुरुदेव

**गुरुदेवश्री** को समन्वय, सम्मान व स्नेह के संस्कार गुरु परंपरा से ही प्राप्त हुए थे। गुरुभ्राताओं के प्रति उत्तरदायित्व व आत्मीयता का भाव कितना गहरा होना चाहिए इस बात की शिक्षा उन्हें वाचस्पति गुरुदेव के जीवन में प्राप्त हुई थी। पूज्य गुरुदेव श्री मदनलाल जी महाराज व योगीराज पूज्य गुरुदेव श्री रामजीलाल जी महाराज का परस्पर इष्ट संबंध था। दोनों महापुरुषों के स्वभाव, संस्कार व शारीरिक संपदा में अपूर्व समानता थी। ऐसा कह दें तो कोई अतिशोक्ति नहीं होगी कि वे दो जिस्म और एक जान थे। आजीवन एक ही संघ परंपरा में रहकर संयमी जीवन का निर्वाह किया। जीवन काल में दोनों महापुरुषों के मध्य कभी कोई मतभेद नहीं उभरा। सदैव एक-दूसरे की भावना व विचारों का सम्मान करते थे।

पूज्य गुरुदेव के जीवन पर भी पूज्य योगीराज जी महाराज की असीम कृपा थी। गुरुदेव को बाल्यकाल से ही इन महापुरुषों का सान्निध्य प्राप्त हुआ था। गुरुदेव बचपन में रोहतक स्थानक में जाकर पूज्यश्री रामजीलाल जी महाराज से भजन इत्यादि का श्रवण करते थे। घंटों उनके चरणों में बैठकर सामायिक संवर इत्यादि का अनुष्ठान करते। स्वयं गुरुदेव भी पूज्यश्री के अलौकिक संयमी जीवन से अत्यंत प्रभावित थे।

पूज्यश्री गुरुदेव के दीक्षा समारोह में भी विराजित थे। गुरुदेव श्री के जीवन का प्रथम चातुर्मास सन् 1942 में संढौरा गांव में वाचस्पति गुरुदेव एवं पूज्य योगीराज श्री रामजीलाल जी महाराज की निश्राय में हुआ। इसी चातुर्मास में गुरुदेव दोनों गुरुभ्राताओं की भक्तिपूर्वक सेवा कर स्वयं को कृतार्थ कर रहे थे। उसी चातुर्मास में गुरुदेव जब अस्वस्थ हुए तो उस समय पूज्य योगीराज जी महाराज ने उनकी सार-संभाल एक पुत्रवत् की तथा स्नेह दिया।

सन् 1958 में दिल्ली में तीन दीक्षाओं का कार्यक्रम आयोजित था। उस अवसर पर पूज्यश्री योगीराज जी महाराज अमीनगर सराय से दिल्ली पधारे। वाचस्पति गुरुदेव एवं पूज्यश्री का मिलन एक दीर्घ अर्से के पश्चात् हो रहा था। दोनों महापुरुष एक-दूसरे के दर्शन कर भावुक हुए। गुरु भाईयों के इस मनोहारी दृश्य को देखकर श्रद्धालु गण भी भाव-विभोर हुए। इससे पूर्व 1952 में पूज्य वाचस्पति गुरुदेव एवं योगीराज श्री रामजीलाल जी महाराज का चातुर्मास दिल्ली चाँदनी चौंक में हुआ। तब प्रवचन का पूर्णदायित्व योगीराज जी महाराज ने संभाला। गुरुदेव ने श्रद्धा व भक्ति भाव से पूज्यश्री को अपने हृदय का देवता स्वीकार किया था। आजीवन गुरुतुल्य ही उनका सम्मान किया। पूज्य वाचस्पति गुरुदेव पूज्यश्री के अभिन्न सहयोगी तो थे ही साथ-ही-साथ गुरुदेव ने भी पूज्यश्री का अनुचर की भाँति अनुसरण किया। उनकी प्रत्येक आज्ञा को प्राथमिकता दी। यहाँ तक कि पूज्यश्री की उपस्थिति में जब उन्हें संघशास्ता बनाने का उपक्रम चल रहा था। गुरुदेव ने संघशास्ता की पदवी को भी पूज्यश्री योगीराज रामजीलाल जी महाराज के चरणों में समर्पित कर दिया था।

सन् 1964 में जब गुरुदेव ने दिल्ली की ओर प्रस्थान करने से पूर्व रोहतक में योगीराज श्री रामजीलाल जी महाराज के मंगलमय दर्शन किए। पूज्यश्री श्रावक फूलचंद नवलजी के निवास स्थान पर विराजमान थे। विहार करते समय पूज्यश्री योगीराजजी महाराज गुरुदेव को स्वयं दिल्ली द्वार तक छोड़ने आए। अपने पूज्य महापुरुषों से मांगलिक पाठ श्रवण कर एवं उनकी कृपा का वरदहस्त प्राप्त कर गुरुदेव ने दिल्ली की ओर विहार किया।

1967 में जब गुरुदेव को भठिंडा चातुर्मास में यह समाचार प्राप्त हुआ कि करुणामूर्ति पूज्य श्री योगीराज रामजीलाल जी महाराज का देवलोकगमन हो गया तो गुरुदेव शोकाकुल हो गए। जैसे उनके बचपन को संस्कारों से सींचने वाला अंतिम महापुरुष संसार को विदा कह गया हो। जैसे किसी महावृक्ष की छाया सिर से हट गई हो। गुरुदेव शून्यता में डूब गए।

पूज्यश्री के विषय में अक्सर गुरुदेव फरमाते है कि योगीराज जी महाराज के उनके जीवन पर बहुत उपकार थे। गुरुदेव का यह महान गुण था कि वे अपने उपकारी के प्रति रोम-रोम से कृतज्ञता से भर जाते थे।

**ऐसे महान उपकारी गुरुदेव को शतशः प्रणाम!**

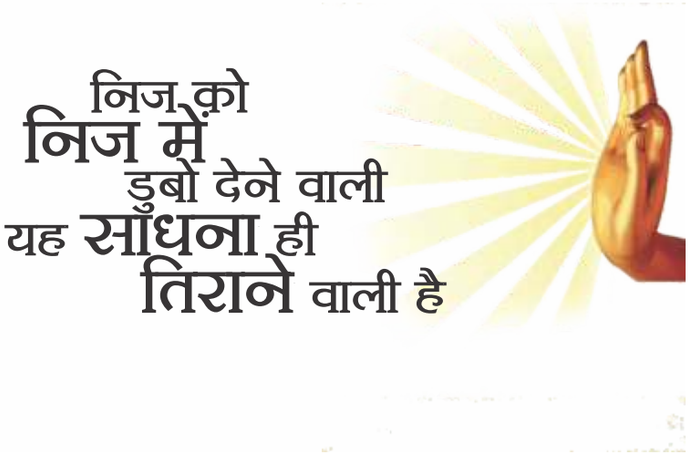

गुरुदेव और पूज्य भंड़ारी बलवंत राय जी महाराज

# 15 | पूज्य भंड़ारी बलवंत राय जी महाराज और गुरुदेव

**गुरुदेव** ने अपने हृदय में अनेक महापुरुषों को श्रद्धा भाव से विराजित किया। बड़ों की सेवा करना तो जैसे उनके स्वभाव में था। वयोवृद्ध संतों की शृंखला में एक नाम उनके हृदय के सन्निकट था और वे थे पूज्य बाबा भंडारी श्री बलवंतराय जी महाराज। जो कि पूज्य गणावच्छेदक श्री छोटेलाल जी महाराज के शिष्यरत्न थे। गुरुदेव एवं भंडारी जी महाराज का संबंध घनिष्ठ था। जैसे दोनों में पूर्व भवों का प्रेम हो। पूज्य भंडारी जी महाराज एकमात्र ऐसे संत थे जिन्होंने आजीवन संघ के वरिष्ठ व कनिष्ठ प्रत्येक संत की पूर्णत: मनोयोग पूर्वक सेवा सुश्रूषा कर इतिहास में एक मिसाल स्थापित की। पूज्य भंडारी जी महाराज ने रूग्णावस्था में गुरुदेव की भी सेवा कर एक आर्दश प्रस्तुत किया। प्रत्युत गुरुदेव ने भी पूज्य भंडारी जी महाराज के जीवन के संध्याकाल में उनकी बहुत सेवा की।



सन् 1951 में पूज्य बाबा भंडारी श्री बलवंतराय जी महाराज अपने गुरुदेव श्री मदनलाल जी महाराज को छोड़कर पूज्य गुरुदेव की सेवा में अमृतसर से दिल्ली पहुंचे थे। वर्ष के अंत में गुरुदेव को अपैण्डिक्स का दर्द उठा। शल्य-चिकित्सा के अतिरिक्त कोई अन्य उपचार नहीं था। किसी समर्थ सेवानिष्ठ मुनिराज को सेवा हेतु भेजने का प्रश्न आया। पूज्य वाचस्पति गुरुदेव ने भी भंडारी जी महाराज को इस कार्य हेतु नियुक्त किया। यद्यपि किसी ने यह कल्पना भी नहीं की थी कि वाचस्पति गुरुदेव पूज्य भंडारी जी महाराज को पृथक रहने की आज्ञा दे सकते हैं। क्योंकि वाचस्पति गुरुदेव का समस्त सेवाकार्य भार श्री भंडारी जी महाराज संभालते थे। पूज्य भंडारी जी महाराज को पूर्णत: योग्य समझ कर उन्हें गुरुदेव की सेवा हेतु प्रेषित किया।

गुरु आज्ञा शिरोधार्य कर पूज्य भंडारी जी महाराज दिल्ली पधारे। लगभग तीन वर्ष तक छत्र की भाँति गुरुदेव को संभाला। एक रुग्ण को जिस प्रकार की सेवा की आवश्यकता होती है उसे पूर्ण मनोयोग से निभाया। पूज्य महाराज में सेवा की अदम्य उमंग थी। पूज्य भंडारी जी महाराज उस युग के सर्वोत्तम सेवाभावी मुनिराज थे। निरंतर तीन वर्ष पर्यन्त श्री भंडारी जी महाराज पूज्य गुरुदेव पर अपनी सुखद कृपा बरसाते रहे। अपने लघुतम शिष्य की उन्होंने इस प्रकार शिष्टता से सेवा की जैसी एक शिष्य भी अपने गुरु की न कर सकें। 1963 में पूज्य वाचस्पति गुरुदेव के स्वर्गवास के उपरांत गुरुदेव का भाव बना कि संघ के समस्त संतों का सामूहिक चातुर्मास जालंधर में हो। परन्तु भंडारी जी महाराज का मन अमृतसर चातुर्मास का था। तब गुरुदेव ने पूज्य भंडारी जी महाराज की भावना को सम्मान दिया।

सन् 1984 में गुरुदेव का चातुर्मास सोनीपत व पूज्य विनय मुनि महाराज का चातुर्मास मतलोडा मंडी निश्चित हो चुका था । गुरुदेव रोहतक से विहार कर गोहाना होते हुए बुटाणा पधार गए थे। इसी बीच पूज्य भंडारी जी महाराज अस्वस्थ हो गए। अपनी बीमारी के कारण उनका हृदय भर आया। मन में भाव आया इस मौके कि गुरु सुदर्शन मेरे पास हो। उस मौके चरणस्थ पूज्य गुरुदेव राम प्रसाद जी महाराज ने पूज्य भंडारी जी महाराज से पूछा, क्या चाहते हैं ? पूज्य भंडारी जी महाराज बोले कि मुनि सुदर्शन जी महाराज को बुलवा दो। संतो ने ईशारा भी

किया कि गुरुदेव अभी तो रोहतक से गए है परन्तु पूज्य भंडारी जी महाराज की भावना को देखते हुए गुरुदेव को पत्र लिखा गया। गुरुदेव तुरन्त रोहतक पधारे। गुरुदेव के मन में यद्यपि सभी स्थविर संतों के प्रति सम्मान का भाव था परन्तु पूज्य भंडारी जी महाराज के प्रति उनके मन में अगाथ आस्था थी।

एक दिन पूज्य भंडारी जी महाराज ने फरमाया 'श्री विनय मुनि को मेरी सेवा में रख दें। मैं इनकी सेवा से प्रसन्न हूं।' गुरुदेव ने बिना किसी तर्क वितर्क के 'तहत्त' कहते हुए उनकी आज्ञा पर समर्पण के पुष्प अर्पित किए। चातुर्मास की घोषणा में परिवर्तन भी किया पर किसी श्रद्धेय पुरुष की भावना के विपरीत उत्तर देना उन्होंने कभी नहीं सीखा।

सन् 1985 में स्वयं पूज्य भंडारी जी महाराज की सेवा में रोहतक चातुर्मास किया। रोहतक चातुर्मास में् गुरुदेव ने नियम बना लिया कि प्रतिक्रमण के पश्चात् श्री भंडारी जी महाराज की वैयावृत्य मैं स्वयं करूँगा।

सन् 1987 में एक बार 29 संत पूज्य भंडारी जी महाराज की सेवा में एकत्रित थे। उस समय पक्खी के दिन कई मुनियों का एकाशन व्रत था। मैं गोचरी लेकर आया। गुरुदेव ने नित्य की भाँति आहार का वितरण किया। संयोगवश गुरुदेव ने भंडारी जी महाराज को रोटी तो परोस दी पर शाक देना भूल गए। सरलात्मा भंडारी जी महाराज बिना सब्जी के रोटी खा गए। जब गुरुदेव को ध्यान आया कि पूज्य भंडारी जी महाराज को सब्जी नहीं दी तो उन्होंने अपनी इस भूल के लिए क्षमायाचना माँगते हुए उन्हें शाक दिया। पूज्य भंडारी जी महाराज ने बिना किसी शिकायत के शाक भी ग्रहण कर लिया। यह त्याग व समभाव का अद्‌भुत दृश्य मैंने अपनी आँखों से देखा तो विचार आया ऐसे महापुरुषों के दर्शन कर मेरे नेत्र धन्य हो गए।

सन् 1987 में गुरुदेव ने पूज्य विनयचन्द्र जी महाराज के साथ मुझे भी भंडारी जी महाराज की सेवा में चातुर्मास करने की आज्ञा प्रदान की। यद्यपि पूज्य महाराज चातुर्मास से पूर्व ही संसार को अलविदा कह गए। पूज्य भंडारी जी महाराज की अंतिम भावना थी कि मेरे जीवन के अंतिम क्षणों में गुरुदेव ही मेरे समीप हो। पूज्यश्री भंडारी जी महाराज के जीवन की आखिरी बेला में गुरुदेव ने ही उन्हें संथारे का प्रत्याख्यान करवाया। 27 अप्रैल 1987 में वे हमें देह रूप से छोड़कर अलविदा कह गए। जब उनके पार्थिव शरीर को नीचे हॉल में लेकर जा रहे थे। उस समय गुरुदेव का मुखमंडल मायूस था। कितने दिनों तक उनके अतीत की बाते हमें सुनाते रहे। उस समय सब संतों के नेत्र भी नम थे।

**वयोवृद्ध की सेवा में समर्पित धन्य है ऐसे पावन गुरुदेव को!**

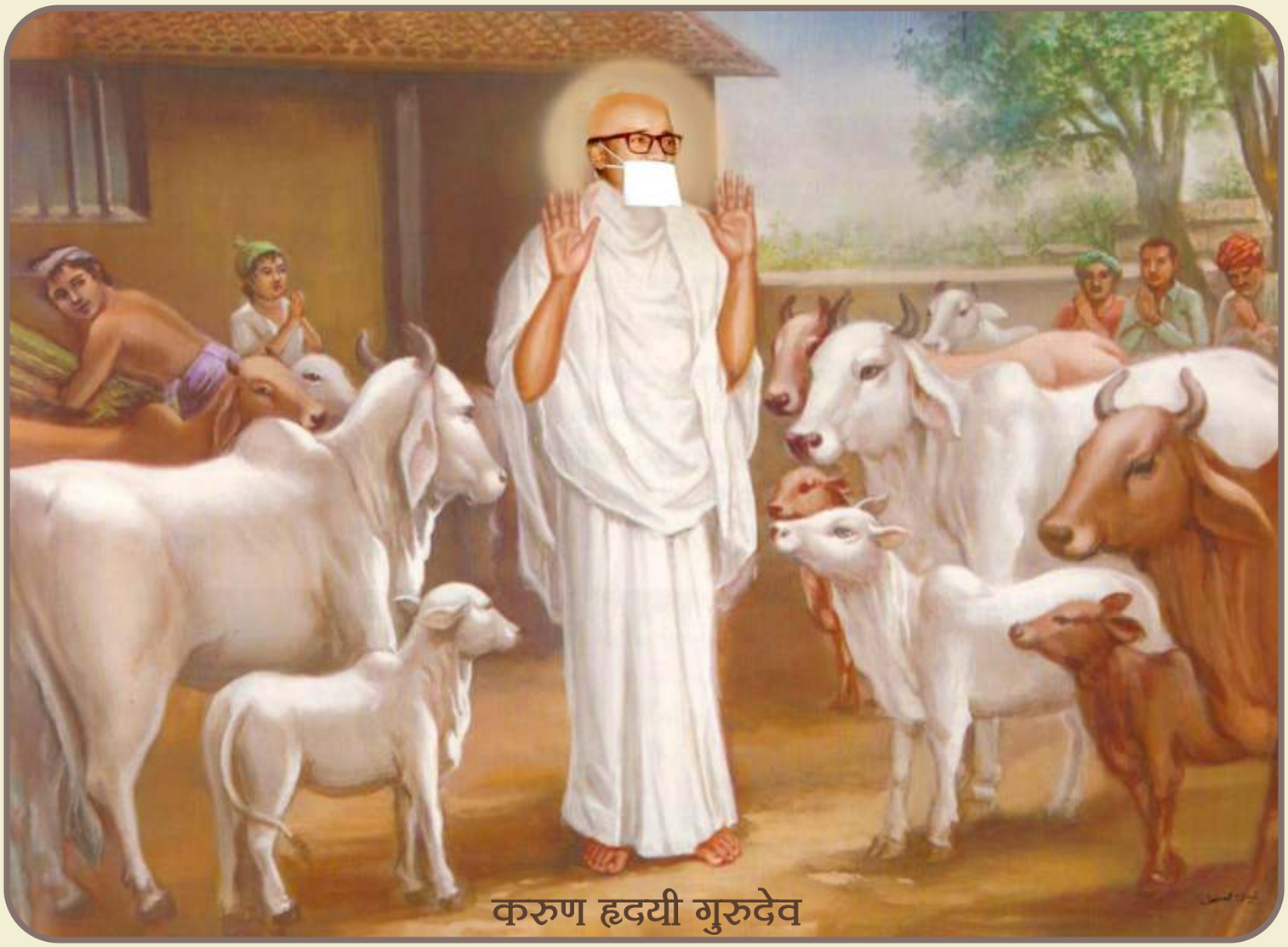

करुण हृदयी गुरुदेव

# 16 करुणा और गुरुदेव

**पर** पीड़ा को देखकर उसकी सहायता करने की तीव्र भावना का नाम करुणा है। करुणा अंतस् अनुभूति से स्नेह-पूर्वक किया गया उपकार है। स्वार्थ से ऊपर उठकर परमार्थ की ओर बढ़ने का नाम है करुणा। करुणा साधना की आधारशिला है। करुणाशील व्यक्ति ही धर्म के सच्चे स्वरूप को समझ सकता है। इसलिए भगवान महावीर को करुणावतार कहा जाता है। करुणा ही धर्म की प्रथम व अंतिम सीढ़ी है।

गुरुदेव जन्म से ही करुणा के अक्षय स्रोत थे। उनके हृदय से करुणा का निर्झर प्रवाहित होता था। बाल्यावस्था से ही किसी परिचित या अपरिचित को कष्ट में देख लेते तो गुरुदेव का हृदय करुणा से द्रवित हो जाता। उन्हें दूसरे का दुख भी स्वीकीय ही अनुभव होता है। वह उसके दुख दूर करने के लिए तत्क्षण तैयार हो जाते। यह महत्त्व नहीं रखता कि आप कितने सामर्थ्यशाली है। महत्त्व इस बात का है कि आप करुणा की भावना से कितने ओत-प्रोत है तथा करुणा की भावना ही आपको सामर्थ्यवान बनाने के लिए पर्याप्त है।

बाल्यकाल से ही गुरुदेव अक्सर गऊशाला में जाते थे। एक बार उन्होंने वहाँ एक तड़पती हुई गाय को देखा। गाय की पीड़ा देखकर उनका हृदय द्रवित हो गया। गुरुदेव को उस समय जो पॉकेट मनी मिलती थी। उसे खर्च कर उन्होंने गाय का उपचार करवाया। गाय का कष्ट दूर कर उन्हें अपार प्रसन्नता हुई।

संयोगवश मात्र चार वर्ष की अल्पायु में ही गुरुदेव की माता का देहावसान हो गया था। परन्तु प्रकृति का चमत्कार देखिए अल्पायु में ही प्रकृति ने गुरुदेव के हृदय को मातृत्व की करुणा से ओत-प्रोत कर दिया।

अक्सर देखने में आता है कि पुरुष की प्रकृति स्त्री की अपेक्षा किंचित कठोर होती है। परन्तु गुरुदेव की प्रकृति स्त्री से भी अधिक मृदुल थी। वे किसी भी पीड़ित के दुख तकलीफ को देखकर करुणार्द्र हो जाते थे। उनकी यही भावना थी कि मैं किसी प्रकार अपनी मर्यादा में रहकर दूसरों का कष्ट दूर कर दूँ। वे जन-जन के मसीहा थे। तभी प्रतिक्रमण के पंचपदी के अंतिम सवैय्य से गुरु का गुणगान करते हुए कहा गया है कि **गुरु, मित्र, गुरु मात, गुरु सखा, गुरु तात!** अर्थात् गुरु ही मित्र है और माँ भी गुरु ही होते हैं।



दीक्षा के उपरांत मेरा प्रथम चातुर्मास बरनाला शहर में गुरु चरणों में हुआ। चातुर्मास में मैं ज्वर से पीड़ित हो गया। बुखार के कारण शरीर में साता नहीं थी। कई दिनों तक रात्रि में निद्रा नहीं आई। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि गुरुदेव रात्रि भर जागकर माता की भाँति मेरा सिर सहलाते रहे। ज्वर के कारण मैं अवश्य ही बेसुध हो गया था। परन्तु गुरुदेव की कृपा दृष्टि से मुझे शारीरिक साता एवं मानसिक शांति की अनुभूति हुई।

इस युग में ऐसे दयालु, कृपालु व करुणाशील गुरु का प्राप्त होना दुर्लभ है। न जाने पूर्व भव का मेरा ऐसा कौन-सा पुण्य था जो मुझे ऐसे पावन गुरुदेव की चरण-शरण प्राप्त हुई। गुरुदेव प्रारंभ से ही ग्लान सेवा को महत्त्व देते रहे हैं। परिस्थिति के अनुसार स्वयं को ढालना एवं

स्नेहपूर्वक दूसरे का दुख दूर कर देना यह गुरुदेव के जीवन की महान कला थी।

गुरुदेव के जीवन से संबंधित ऐसे सैंकड़ों दृष्टांत है जो गुरुदेव के करुणाशील व्यक्तित्व की गाथाओं का यशोगान करते हैं।

सन् 1999 में गुरुदेव शालीमार बाग में विराजमान थे। अपने मुनि के कंधे पर हाथ रखकर पार्क में से गुजर रहे थे। तभी उन्होंने मार्ग में एक तड़पती हुई गाय को देखा। गाय का कष्ट देखकर वे द्रवित हो गए। उनके मन में भाव उठा कि मेरी तो साधु मर्यादा है। अत: मैं गाय की सेवा नहीं कर सकता। तभी उन्होंने साथ चल रहे श्रावक को इशारा किया। उस भाई ने गुरुदेव का निर्देश समझकर गाय का उपचार करवाया और गाय कुछ ही दिनों में स्वस्थ हो गई।

यह गुरुदेव की विशेषता थी कि दूसरों को पीड़ा से मुक्त करके ही प्रसन्न होते थे। उन्होंने कभी स्वयं की ज्यादा चिंता नहीं की। या यूँ कह दें कि दुख उन्हें परेशान करता ही नहीं था। 24 अप्रैल 1999 को मृत्यु से एक दिन पूर्व की बात है। गुरुदेव की शारीरिक स्थिति स्थिर नहीं थी। गर्मी एवं स्थान की अनुकूलता न होने से घबराहट का वातावरण था। फिर भी गुरुदेव अपने विषय में चिंतित नहीं थे। उन्होंने संतों से पूछा– क्या आपने कांधला में *अरुण मुनि* की होम्योपैथी की दवा भेज दी। आप गुरुदेव की करुणा को देखो! उनके शरीर में वेदना थी। वातावरण भी प्रतिकूल था। परन्तु गुरुदेव स्वयं की नहीं अपितु दूर बैठे अपने शिष्यों के स्वास्थ्य के बारे में सोच रहे थे।

गुरुदेव का व्यक्तित्व महान था। शब्दों की एक सीमा है परन्तु गुरदेव की करुणा असीम थी। उन्हें पुस्तक में लिखना कठिन ही नहीं असंभव है।

**ऐसे करुणावतार गुरुदेव को शत्-शत् प्रणाम।**



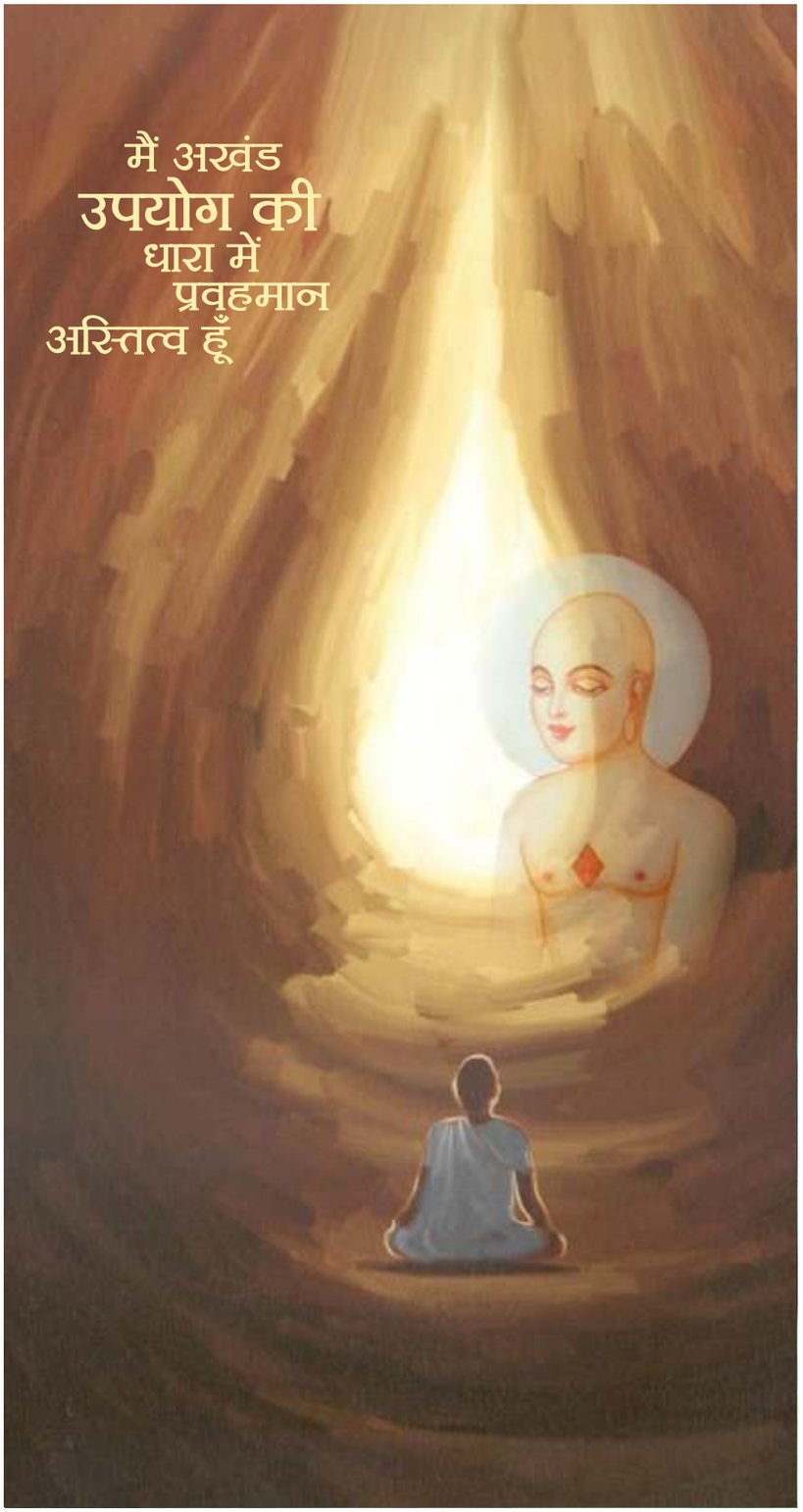

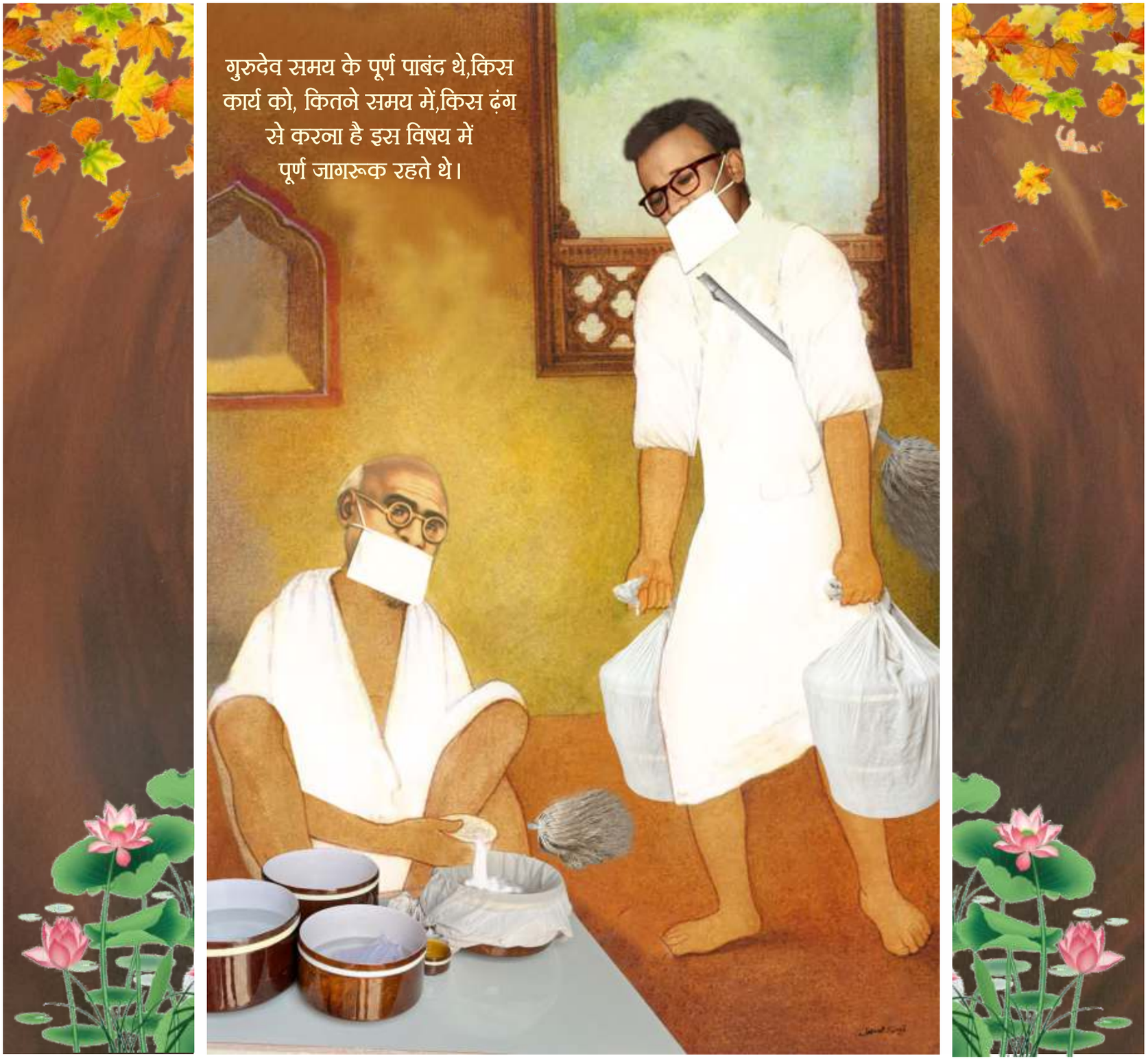
गुरुदेव समय के पूर्ण पाबंद थे,किस
कार्य को, कितने समय में,किस ढ़ंग
से करना है इस विषय में
पूर्ण जागरूक रहते थे।

# 17 | समय प्रबंधन और गुरुदेव

**समय** का हमारे जीवन में अति महत्त्वपूर्ण स्थान है। समय धन से भी अधिक मूल्यवान है। क्योंकि धन प्रक्रिया करने पर पुन: वापिस आ सकता है परन्तु बीता हुआ समय कभी पुन: लौटकर नही आता। अत: समय अमूल्य है। प्रकृति उसी का सम्मान करती है जो व्यक्ति समय का सम्मान करता है। अत: जीवन की सफलता के लिए समय का प्रबंधन अति आवश्यक है। समय प्रबंधन का अर्थ विभिन्न गतिविधियों पर खर्च किए जाने वाले समय की मात्रा का निर्णय व उसे नियंत्रित करने की कला में हैं।



गुरुदेव के जीवन में समय प्रबंधन का अद्‌भुत कौशल था जिन आत्माओं को गुरुदेव के साक्षात् दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्होंने इस युग के भगवान के दर्शन कर लिए। उनके नेत्र पवित्र हो गए। हमारा सौभाग्य है कि हमारा जन्म गुरु सुदर्शन युग में हुआ। हमने गुरु चरणों की शरण प्राप्त की है। उन के प्रति अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया।

मैंने दीर्घकाल तक गुरुदेव के चरणों में रहकर उनकी जीवन शैली को निहारा है। मैं एक बात पूर्ण विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि गुरुदेव समय के पूर्ण पाबंद थे वे किस कार्य को, कितने समय में, किस ढंग से संपन्न करना है इस विषय में पूर्ण जागरूक रहते थे।

गुरुदेव के जीवन की एक समय सारणी थी। किस-किस समय ध्यान, स्वाध्याय, लेखन, आत्मचिंतन व श्रावकों से वार्तालाप करना। दिनचर्या को विभिन्न विभागों में विभक्त किया हुआ था। उस समय उसी कार्य को महत्त्व देते थे।

गुरुदेव ने जीवन के प्रारम्भ से ही टाईम मैनजमैट को पहचाना । आप देखिए जब उन्होंने संयम पथ पर कदम बढ़ाने का दृढ़ निश्चय किया। उस समय उनके परिवार का बहुत दबाव था कि यह बालक अभी दीक्षा न ले। परन्तु गुरुदेव को ज्ञात था कि जीवन निर्माण का उचित समय यही है। उन्हें विचलित करने के बहुत प्रयत्न किए गए। वे अपने निर्णय पर अडिग रहे।

दीक्षा के उपरांत उन्होंने श्रावक परिचय तथा वार्तालाप में समय व्यर्थ नहीं गंवाया। चार वर्ष तक दत्तचित होकर अध्ययन करते रहे। संस्कृत, प्राकृत, थोकड़े व आगमों का गहन अध्ययन किया। कुछ साधक संयमकाल के प्रारम्भिक समय को हंसी मजाक या वार्तालाप में व्यर्थ गंवा देते हैं। परन्तु गुरुदेव ने अपने संयमी जीवन के एक-एक क्षण को सार्थक किया। गुरुदेव ने अपनी संयम यात्रा में अध्ययन स्वाध्याय व सेवा साधना को महत्त्व दिया।

जैसे-जैसे दीक्षा पर्याय बढ़ने लगी। शिष्य परम्परा का विकास होने लगा। श्रावक वर्ग भी विशाल हो गया। परन्तु फिर भी गुरुदेव मौन रहकर अध्ययन व स्वाध्याय के लिए समय निकाल लेते थे। व्यस्तता में भी उनका समय प्रबंधन गजब का था।

मैंने देखा कि गुरुदेव प्रवचन के समय के पाबंद थे। समय पर प्रवचन समाप्त करना। मौन व प्रतिक्रमण का समय फिक्स था। गुरुदेव को प्रात: जागरण के लिए अलार्म की आवश्यकता नहीं थी। समय पर

शयन व प्रात: उठने का समय निश्चित था। किसी कार्य में विलंब करना या आलस्य सेवन करना यह शब्द तो उनकी डिक्शनरी में ही नहीं थे।

किसी श्रावक या संत को समय दे दिया तो उस समय की मर्यादा का कभी उल्लंघन नहीं किया और न ही किसी संत को मर्यादा का उल्लंघन करने देते थे। यदि किसी ने समय रहते कार्य पूर्ण नहीं किया तो उसे समय के प्रबंधन की नसीहत देते थे।

प्रवचन सभा में अक्सर गुरुदेव एक बात फरमाते थे कि श्री गणेश बनो अर्थात् प्रवचन के प्रारंभ में ही उपस्थित रहो। अध्यापक के आने से पूर्व आने वाले विद्यार्थी ही कुछ सीख सकता है और जीवन में विकास कर सकता है। यदि आप भी अपनी आध्यात्मिक उन्नति चाहते हो तो समय पर उपस्थित हो जाओ।

अगर कई बार श्रावक भी यह निवेदन कर देते कि गुरुदेव कुछ समय ओर जिन वाणी का लाभ दे दो तो गुरुदेव फरमाते समय की सीमा का पालन करना ही प्रभु का प्रथम उपदेश है।

सन् 1983 में मेरी व श्री अचल मुनि जी की दीक्षा का समय निश्चित हुआ था। विहार लंबा था। घुटनों की तकलीफ भी बढ़ रही थी। परन्तु गुरुदेव की संकल्प शक्ति देखें। निर्धारित समय पर बठिंडा में पर्दापण किया।

ऐसे महान् गुरुदेव की जन्म शताब्दी महोत्सव पर हम भी यह संकल्प लें कि अपने जीवन का प्रत्येक कार्य समय पर पूर्ण करेंगें। जीवन में आलस्य का सेवन नहीं करेंगे। यही हमारी गुरुदेव के चरणों में सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

**ऐसे महान साधक को कोटिश: प्रणाम!**

जब **सद्गुरु** करेमि भंते
का सूत्र प्रदान करते हैं
तब **साधक**
समभाव की दुनिया में
प्रवेश करता है

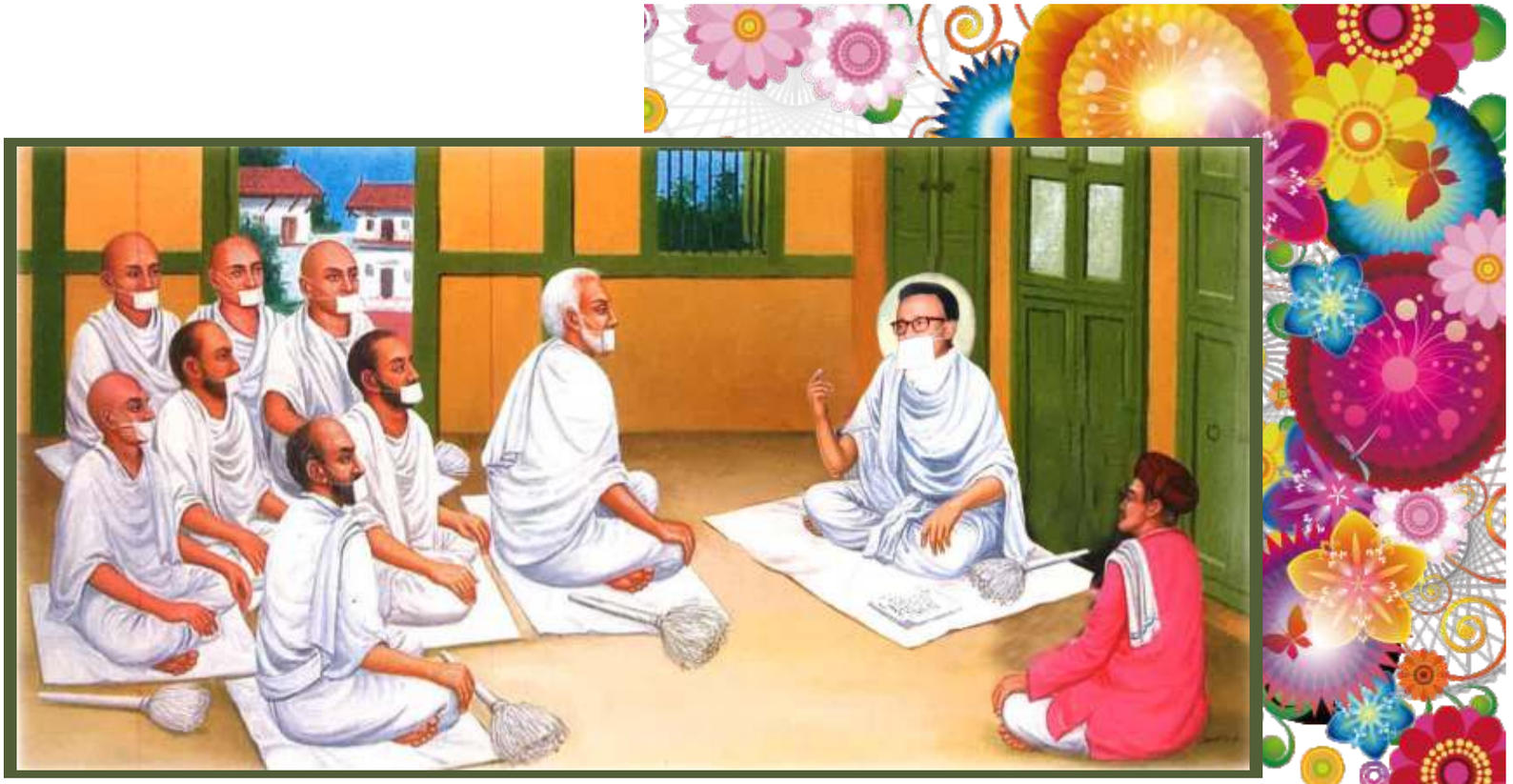



# 18 सामायिक और गुरुदेव

**जैन** दर्शन में सामायिक को विशेष महत्त्व दिया गया है। सामायिक के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए आचार्य फरमाते हैं–

**दिवसे-दिवसे लक्खं, देई सुवण्णस्स खंडियं एगो।**
**एगो पुण समाइयं, करइ न पदुप्पए तस्स।।**

एक आत्मा प्रतिदिन लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान करता है। दूसरा मात्र दो घड़ी की शुद्ध सामायिक करता है, तब भी स्वर्ण मुद्राओं का दान करने वाला आत्मा, सामायिक करने वाले आत्मा की समानता नहीं कर सकता।

आर्त और रौद्र ध्यान का त्याग कर संपूर्ण सावद्य क्रियाओं से निवृत होना और दो मुहूर्त्त पर्यन्त मनोवृत्ति को समभाव में रखने का नाम 'सामायिक व्रत' है। सामायिक मन को स्थिर करने की अपूर्व क्रिया है। मोक्षमार्ग की साधना के लिए आधार-शिला है। स्वयं भगवान महावीर ने सामायिक की महिमा का गुणगान किया है। सामायिक जैन-धर्म का भाव सौन्दर्य है। जिनदेव की सच्ची उपासना है। सामायिक से ही साधना का प्रारंभ होता है और सामायिक साधना की पूर्णाहूति है। सामायिक साधन भी है और साध्य भी। गुरुदेव ने सामायिक को जीवन का अभिन्न

अंग बनाया।

वैसे तो सामायिक स्थानकवासी परंपरा का आधार है। गुरुदेव ने सामायिक साधना के लिए श्रावक वर्ग को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया। गुरुदेव को गृहस्थ अवस्था से ही सामायिक के संस्कार संप्राप्त थे। यद्यपि गुरुदेव का संसारी परिवार सनातन धर्म का अनुयायी था। परन्तु संतों की कृपा से उनके परिवार में छः पीढ़ियों से सामायिक के संस्कार थे। गुरुदेव स्वयं भी घर पर कई सामायिक कर लेते थे।

रोहतक में पूज्य श्री कान्हीराम जी महाराज एवं पूज्य वाचस्पति गुरुदेव के गुरुभाई श्री रामनाथ जी महाराज का दीर्घकाल तक प्रवास रहा। उस समय मध्याह्न में प्रवचन का प्रचलन था। प्रवचन के समय बाबा श्री जग्गुमल जी के साथ गुरुदेव भी सामायिक करते थे। गुरुदेव बच्चों के साथ कई-कई सामायिक एक साथ कर लेते थे। बाल स्वभाव के कारण कई बार गुरुदेव ऊब जाते तो घड़ी के कांटों को आगे सरकाकर सामायिक पूर्ण कर लेते थे। उन्हीं दिनों गुरुदेव ने सामायिक सूत्र कंठस्थ कर पारितोषिक भी प्राप्त किया था। तभी से गुरुदेव को एक साथ सामायिक का अभ्यास हो गया।

उस समय बाल विवाह का प्रचलन था। गुरुदेव को विवाह के लिए कई प्रस्ताव आने लगे। परन्तु गुरुदेव स्पष्ट अस्वीकार कर देते। एक दिन कोई सज्जन अपनी पुत्री का संबंध लेकर गुरुदेव के घर आया। संयोगवश उस दिन घर में बाबु जी नहीं थे। उस सज्जन का साक्षात्कार सीधे गुरुदेव से हो गया। इस बात से अनजान सज्जन ने पूछा-वकील साहब का पुत्र कैसा है? गुरुदेव उस व्यक्ति के आशय को समझ गए। बोले-वह तो पागल है, दिन भर मुख-वस्त्रिका बांधकर स्थानक में बैठा रहता है। यह सुनकर आंगतुक उलटे पैर लौट गया।

जब गुरुदेव का मन वैराग्य के प्रगाढ़ रंग से रंजित हुआ तो 1940 में गुरुदेव घर पर बिना कुछ बताएं फिरोजपुर में विराजित पूज्य नाथुलाल जी महाराज, एवं वाचस्पति गुरुदेव के चरणों में आ गए। परिजन बलपूर्वक उन्हे वापिस रोहतक ले गए। रोहतक आते ही गुरुदेव ने एक साथ 17 सामायिकों का प्रत्याख्यान ग्रहण कर लिया। लगभग 14 घंटे एक आसन में बैठकर सामायिक की साधना करते रहे। उनका दृढ़ विश्वास था कि सामायिक की साधना द्वारा ही उनकी अंतराय टूटेगी। उस समय गुरुदेव ने सामायिक करते समय अद्‌भुत दृश्य देखा। जैसे उनकी स्वर्गवासी माता उन्हें वहां से उठाकर दिव्यलोक ले गई हो। स्वर्णिम शिला पर बिठाकर मां ने स्नेह उंडेलते हुए कहा-अब तू अपने अभिलषित स्थान पर चले जाना। अब तुम्हारा कार्य सुगमता पूर्वक हो जाएगा। गुरुदेव इसे सामायिक का ही चमत्कार बताते थे।

गुरुदेव ने संयम ग्रहण कर सामायिक को विशेष रूप से महत्त्व दिया। सन् 1988 में कुछ श्रावक अहमदनगर में विराजित आचार्य श्री आनंदऋषि जी महाराज के दर्शन के लिए गए। सभी श्रावक सामायिक कर प्रवचन की अग्रिम पंक्ति में बैठे हुए थे। आचार्यश्री ने प्रवचन में कहा कि ये श्रावक उत्तर भारत में श्री सुदर्शन लाल जी महाराज द्वारा तराशे हुए हीरे प्रतीत होते हैं। यह सुनकर आगंतुक श्रावकों को बहुत आश्चर्य हुआ। क्योंकि उन्होंने अपनी गुरु परंपरा का कोई परिचय नहीं दिया था। प्रवचनोपरांत जब श्रावकों ने आचार्य श्री से पूछा तो आचार्य जी बोले-संपूर्ण उत्तर भारत में श्री सुदर्शन लाल जी महाराज सामायिक के प्रबल प्रेरक हैं। अतः मैंने अनुमान लगाया था। क्या मेरा अनुमान सत्य था या मिथ्या? सभी श्रावकों का सिर श्रद्धा से विनत था। और गुरुदेव के प्रति बहुमान का भाव था कि सुदूर प्रांत में भी गुरुदेव की उज्जवल छवि विख्यात है।

आज उत्तर भारत में जो सामायिक की लगन है। वह सब

अधिकतर गुरुदेव की कृपा का प्रसाद है। गुरुदेव का सदा यही कथन था। मेरे पास सामायिक के अतिरिक्त अन्य कुछ भी देने योग्य नहीं है। 15 दिसंबर 1963 को देवकी देवी हॉल में 1300 सामायिक का भव्य कार्यक्रम आयोजित किया गया। उस अवसर पर लुधियाना में एक-एक बालक, युवा, युवती सामायिक के रंग रंगे हुए थे। अविश्वसनीय प्रतीत होने वाला अपूर्व ठाठ उपस्थित था। जैसे शुक्ललेश्यी देव स्वर्ग से आरोहण कर हॉल में सुशोभित हो रहे हों। यह कार्यक्रम लुधियाना के इतिहास की अमर गाथा थी। हजारों श्वेत वस्त्रधारी श्रावक पंक्तिबद्ध होकर बैठे थे।

गुरुदेव ने प्रारंभ से ही सामायिक के लिए एक श्वेत ड्रेस कोड़ निर्धारित किया था। राजस्थान के कई श्रावक पेंट के ऊपर श्वेत चादर लेकर सामायिक करते थे। गुरुदेव ने कहा-पैंट में आप संवर कर सकते हैं। परन्तु सामायिक हेतु बिना सिलाई के श्वेत वस्त्रों का ही विधान है। घड़ी व मोबाईल का दोष भी नहीं होना चाहिए।

भगवान महावीर निर्माण महोत्सव पर गुरुदेव ने पुन: लुधियाना में 2500 सामायिक करने का आह्वान किया। गुरुदेव ने 2500वें निर्वाण पर शनिवार व रविवार दो दिनो में 2500 सामायिक का लक्ष्य रखा। गुरुदेव की प्रेरणा से जैसे लुधियाना में धर्मक्राँति घटित हो गई हो। उस अवसर पर दो दिनों में 4000 सामायिकों का भव्य दृश्य देखने को मिला। धोती, दुपट्टे व मुख वस्त्रिका से सुसज्जित हाल युगों-युगों के लिए स्मरणीय बन गया। वह दृश्य 'न भूतो न भविष्यति' का उदाहरण सिद्ध हुआ। गुरुदेव ने सामायिक साधना के द्वारा जिनशासन की महान् प्रभावना की।

गुरुदेव के एक दृढ़धर्मी श्रावक ने एक साथ 121 सामायिक का कीर्तिमान भी स्थापित किया। गुरुदेव कई बार 21 रंगी, 11 रंगी व पंचरंगी भी करवाते थे। पर्यूषण पर्व के अष्ट दिवसीय कार्यक्रम में जब गजसुकमाल मुनि की समता का दिव्य प्रसंग उपस्थित होता तो गुरुदेव उस दिन सामायिक का विशेष रूप से चढ़ावा मांगते थे। आज भी कुछ श्रावक विराजमान है। जिन्होंने गुरुदेव से सामायिक के नियम लिए हुए हैं। संवत्सरी प्रतिक्रमण पर गुरुदेव वर्ष भर में 125 सामायिक का प्राश्चित देते थे।

गुरुदेव के समीप कोई भी व्यक्ति दर्शन करने आता तो गुरुदेव सर्वप्रथम यही प्रश्न पूछते क्या सामायिक करते हो? यदि आगंतुक सामायिक नहीं करता होता तो उसे सामायिक करने की प्रेरणा देते। यदि प्रवचन में कोई भाई बोलने के लिए खड़ा होता तो उसे यतनापूर्वक मुखवस्त्रिका पहनकर बोलने का निर्देश देते थे। दिल्ली त्रिनगर चातुर्मास में भी गुरुदेव की प्रेरणा से 1008 सामायिकों का भव्य आयोजन हुआ।

गुरुदेव की यही शिक्षा थी कि आप जहां पर भी संत दर्शनों के लिए जाएँ तो सामायिक का आसन साथ लेकर जाएँ। समाज का खाना खाते हैं, तो सामायिक भी अवश्य करें। यदि सामायिक नहीं करते तो आपकी यात्रा मात्र आस्रव का कारण है। इस प्रकार गुरुदेव सामायिक के प्रबल पक्षधर थे।

**ऐसे समभाव के धारक गुरुदेव को वंदन!**

# 19 | दिनचर्या और गुरुदेव

**अनुशासित** दिनचर्या व्यस्थित एवं संयमित रूप से कार्य करने की एक अनुपम विधि है। यदि हम नियमित रूप से अनुशासित दिनचर्या का पालन करते हैं तो हम अपने जीवन स्तर को उत्तम बना सकते हैं। यह हमें अपने कार्यों को सुचारू ढंग से संपन्न करने में सहायक सिद्ध होती है। अनुसंधान से यह ज्ञात होता है कि जो लोग अनुशासित ढंग से जीवन जीते हैं। वे व्यस्त समय का पालन करने वालों की तुलना में अपने समय व ऊर्जा का उचित उपयोग करने में सक्षम हो जाते हैं।

गुरुदेव समय के अनुशासन में प्रतिबद्ध थे। वे समय का सम्मान करना जानते थे। अत: अपने जीवन में एक व्यस्थित व अनुशासित दिनचर्या का पालन करते थे। जिस समय जिस कार्य को महत्त्व देना चाहिए। उसी समय वह कार्य पूर्ण भावपूर्वक संपन्न करते थे। यहाँ हम

गुरुदेव की दिनचर्या व नियमावली को जानने का प्रयास करेंगे।

गुरुदेव प्रतिदिन प्रात: काल लगभग तीन बजे जागृत हो जाते थे। उन्हें जागृत होने के लिए किसी अलार्म की आवश्यकता नहीं थी। सर्वप्रथम बैठते ही वंदन नमस्कार कर स्वाध्याय में तल्लीन हो जाते थे। तत्पश्चात माला जाप भी करते थे। बिना किसी शोर के अपनी आवश्यक क्रियाओं को पूर्ण कर लेते व सूर्योदय से लगभग सवा घंटा पूर्व प्रतिक्रमण प्रारंभ कर लेते।

सूर्योदय के पूर्व ही आवश्यक क्रियाओं से निवृत्त होकर स्तोत्रादि का पाठ करते थे। प्रकाश होने पर ओघे व वस्त्रों की प्रतिलेखना करते थे। प्रार्थना के पश्चात् श्रावकों का प्रात: वंदन स्वीकार करने के साथ-साथ अगर अवसर होता तो घरों में दर्शन देने भी पधारते थे। अन्यथा उस समय प्रवचन सामग्री का परायण कर समय का सदुपयोग करते थे। कभी-कभी गुरुदेव का मन होता तो स्थानक भवन में टहल लेते तथा शारीरिक स्वास्थ्य के लिए योगाभ्यास भी करते थे।



नवकारसी के पश्चात आहार आने पर संतों में वितरण करके फिर स्वयं आहार ग्रहण करते थे। कभी-कभी पात्रों को साफ करने का आग्रह करने लगते। पाँच-दस मिनट में प्रवचन का मैटर व्यवस्थित कर पट्टी में रख लेते थे। आवश्यक औषधी का सेवनकर, चादर बांधकर, खंड़िया उठाकर मुनियों के संग प्रवचन सभा में पधारते थे। जैसे तारों के मध्य चन्द्रमा शोभित होता है उसी प्रकार गुरुदेव मुनियों के मध्य शोभायमान होते थे। 35 मिनट तक अपना संबोधन देते। संघ के महामंत्री जी आवश्यक सूचना देते व आए हुए भक्तगणों के संबंध में भी फरमाते थे। प्रत्याख्यान, जयगान व मंगलपाठ के पश्चात श्रोताओं की वंदना स्वीकार करते।

सहवर्ती मुनि के कंधे का सहारा लेकर प्रवचन के पश्चात् कक्ष में पधारते। गीष्म ऋतु में पसीने से आर्द्र वस्त्रों को परिवर्तित कर लेते। तत्पश्चात् दर्शनार्थियों के साथ धर्मचर्चा करते। किसी-किसी श्रद्धालु को आनुपूर्वी पढ़ने की प्रेरणा देकर आनुपूर्वी भी वितरित करते थे।

मध्याह्न में मौन धारण करते व मुनियों से आगमों की स्वाध्याय श्रवण करते थे। मुनियों को भी क्रमपूर्वक अध्ययन करवाते। प्यास लगने पर जल सेवन करते। दोपहर में आहार ग्रहण कर आधा घंटा विश्राम करते थे। दिन के समय गुरुदेव की निद्रा नाममात्र थी।

संध्याकाल में श्रावकों से वार्तालाप के पश्चात् प्रतिलेखना का क्रम प्रारंभ हो जाता था। गुरुदेव की स्वाध्याय में गहन रुचि थी। प्रवचन इत्यादि की पुस्तकें पढ़ते रहते थे। उनमें से प्रेरणात्मक कहानियों का संग्रह भी करते थे। फिर प्रवचन के विषयों पर चिंतन मनन करते थे। आप देखिए, गुरुदेव प्रवचन सभा में समाज के समक्ष कुछ परोसने से पूर्व तत्त्वों का कितना गहन मंथन करते थे। समाज को नई दिशा प्रदान करना उनकी दिनचर्या का ही नहीं अपितु जीवनचर्या का विशेष अंग था।

संध्याकालीन आहार करने के पश्चात् गुरुदेव कुछ समय के लिए मंद गति से भ्रमण करते। चौविहार के पश्चात् अपने मुनियों की कुशल क्षेम पूछते। किसी विषय पर उनसे विचार विमर्श भी करते थे। उनकी दिनचर्या संबंधित प्रश्न पूछते थे। तत्पश्चात् भावपूर्वक प्रतिक्रमण कर स्वाध्याय में लीन हो जाते। अपनी आवश्यक धार्मिक क्रियाएं पूर्ण कर श्रावकों से रात्रि में धर्मचर्चा भी करते थे। रात्रि शयन के लिए उनका समय निर्धारित था। संसार भर के दु:खों को हरने वाले गुरुदेव के मुख पर मैंने कभी चिंता की रेखाएं नहीं देखी। संयमित एवं प्रत्येक परिस्थिति में प्रसन्न रहने वाला था। गुरुदेव का व्यक्तित्व।

**ऐसे साधनाशील महापुरुष को शतशत नमन!**

गुरुदेव के पावन संदेश जन-जन को तारने वाले हैं

# 20 | दिव्य संदेश और गुरुदेव

**महापुरुषों** के संदेश दैवी गुणों से युक्त होते हैं। वे संदेश संसार में सत्य का प्रचार व मानव में संस्कारों का सृजन करते हैं। किसी भी संघ, समाज व देश की ऐतिहासिक समृद्धि महापुरुषों द्वारा दिए गए संदेश, उपदेश व संस्कारों पर निर्भर करती है। आज समृद्ध साहित्य तथा महापुरुषों के संदेशों के कारण ही भारत को विश्वगुरु होने का गौरव प्राप्त है। आध्यात्मिक बल व सात्त्विक बौद्धिक क्षमता के धनी महापुरुषों के संदेश समाज व राष्ट्र के लिए अनुकरणीय बनते हैं।

गुरुदेव प्रारंभ से ही प्रखर बौद्धिक पराक्रम के धनी थे। मात्र तीन वर्ष की अल्प दीक्षा पर्याय में ही उन्होंने प्रवचनों के माध्यम से संघ व समाज के उत्थान के लिए अपने संदेशों को प्रसारित करना प्रारंभ कर दिया था। गुरुदेव के मंगलमय संदेश प्रत्येक व्यक्ति व वर्ग के लिए उपयोगी है। अगर कोई व्यक्ति निष्ठापूर्वक गुरुदेव के दिव्य संदेशों को आत्मसात् कर ले तो सफलता उसकी अर्धांगणी बन सकती है। गुरुदेव के अनेकानेक संदेशों में से कुछ अंश मैं आपके समक्ष प्रस्तुत करना चाहूँगा।



**1. समाज के नाम संदेश :** गुरुदेव का स्पष्ट मंतव्य था कि संगठित समाज ही देश व धर्म के उत्थान में सहायक बन सकता है। संगठन वह महाशक्ति है जिसके समक्ष समस्त विसंगतियां व समाज विरोधी ताकतें निस्तेज हो जाती हैं। संप्रदायवाद संकीर्ण विचार धारा व कुण्ठित बुद्धि का प्रतीक है। अत: गुरुदेव साधु समाज को भी सदैव यही संदेश देते कि वे कभी ऐसे शब्दों का उपयोग न करें जिससे समाज खंड-खंड हो जाए। क्योंकि साधु समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं और संगठन में मतभेद उत्पन्न करना एक सामाजिक अपराध है। हिंसा है। गुरुदेव की चतुर्विध संघ को एक ही शिक्षा थी कि उत्तर भारत का एक उदार हृदय प्रवृत्ति के संस्कारों में पोषण हुआ है। किसी भी क्षेत्र में संप्रदायवाद का विष घोलकर इसे विभाजित करने का प्रयास न करें। सभी परंपराओं के संत यहाँ विचरण करें सभी का सम्मान व सत्कार हो। परन्तु किसी संगठन में कोई आंच न आए।

**2. विवाह से संबंधित संदेश :** वैवाहिक कार्यक्रमों में बढ़ रही व्यसनों की कुरीतियों पर भी गुरुदेव ने कुठाराघात किया। गुरुदेव का स्पष्ट आदेश था कि विवाह में मदिरापान (शराब) का निषेध हो प्रीवैडिग व अमर्यादित धन खर्च करने पर पाबंधी लगे। क्योंकि मध्यवर्गी लोगों के लिए यह आयोजन आत्मघाती सिद्ध हो रहे हैं। खान-पान की आईटमें मर्यादित होती जा रही थी। मांसाहारी होटलों में समाज के विवाह वर्जित हों। सभी रात्रि विवाह न करने का संकल्प ले। सचित्त फूलों की सजावट का बहिष्कार करें।

**3. युवाओं के नाम संदेश :** विवाह के नाम पर जबरन लेन-देन का प्रचलन समाज को घुन की भाँति खोखला कर रहा है। गुरुदेव ने युवाओं को आह्वान किया कि समाज को दहेज की कुप्रथा से मुक्त करें। व्यसन मुक्त जीवन जीएं। माता-पिता के चरण स्पर्श करें। सामाजिक

कार्यों में सहयोग करें। अपने से बड़ों का सम्मान करें। प्रतिस्पर्धा की भावना से उन्हें हीन सिद्ध करने का प्रयास न करें।

**4. नारियों के नाम संदेश :** नारी समाज में सम्मान का प्रतीक है। मायके व ससुराल पक्ष के गौरव को समुन्नत बनाएं रखना नारी का उत्तरदायित्व है। स्वतंत्रता नारी का भूषण है परन्तु स्वच्छंदता नारित्व का दूषण है। स्त्रियां पारदर्शी वस्त्रों को धारण न करें। शील की सुरक्षा व परिवार में संस्कारों का पोषण करना ही सुनारी की पहचान है।

**5. बच्चों के नाम संदेश :** बाल्यकाल सुसंस्कार संवर्धन की सर्वोत्तम अवस्था है। अत: प्रारंभ से ही जीवन को सुव्यवस्ति बनाने की कला में निष्णात बनें। खेलने व पढ़ने का समय निर्धारित करें। महावीर पाठशाला में जाकर सामायिक सूत्रों का स्मरण करें। अकारण क्रोध से ग्रसित न हो। सहनशील बनकर बड़ों की आज्ञा का सम्मान करें।

**6. मुनियों के नाम संदेश :** गुरुदेव मुनियों को सदैव निर्मल संयम पालने की प्रेरणा देते थे। जिन भावों से संयम पथ अंगीकार किया है उन्हीं दृढ़ भावों से अंतिम श्वास तक पालन करें। किसी कार्य में गुरु की अवज्ञा न करें। गुरु से छल करना, स्वयं अपनी आत्मा का विनाश करने के समान पीड़ादायक है। कृपाकर ऐसे किसी भी कृत्य का सेवन न करें जिससे संघ की समाचारी का उल्लंघन हो। विनय गुण को जीवन की आधारशिला बनाएं। मौन, ध्यान व स्वाध्याय के द्वारा आत्मगुणों को विकसित करें।

**7. साध्वी वर्ग को संदेश :** साध्वी वर्ग श्री चतुर्विध संघ का मुख्य आधार स्तंभ है। वे सदैव अपनी गुरुणी की आज्ञा में रहकर विचरण करें। व्यवहारिक शिक्षण से स्वयं को दूर रखें। यदि शब्द ज्ञान के लिए संस्कृत, प्राकृत या इंग्लिश का अध्ययन करना पड़े तो कोई आपत्ति नहीं हैं। आगम ज्ञान को प्राथमिकता दें। व्यवहारिक पठन-पाठन एवं उपाधियों की दौड़ में संयम की मर्यादा का उल्लंघन होता है।

**8. जनसामान्य के लिए संदेश :** गुरुदेव सामायिक साधना के लिए जन-जन को प्रेरित करते थे। समभाव से ही तुम्हारे पारिवारिक व व्यवहारिक जीवन में मिठास उत्पन्न होगी। कर्म करते हुए यदि समता की साधना करोंगे तो जीवन कभी निराशा जनक नहीं बनेगा।

**9. व्यापारियों को संदेश :** धर्मस्थल यदि आपकी धर्मभूमि है तो व्यापार आपके धर्म की कसौटी है। व्यापार में भाषा व माप तोल का विवेक रखें। नैतिक व प्रमाणिकता आपके जीवन का अभिन्न अंग बन जाए। पैसों के साथ-साथ पुण्य का अर्जन करें। लोभ में फंसकर पापमल से आत्मा को मलिन करना दुर्गति का कारण है।



**10. संस्थाओं के नाम संदेश :** संस्था समाज एकता एवं संघ सेवा की भावना से ओतप्रोत हो। संस्था में सभी सदस्यों का एक समान सत्कार करें। संस्था व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं को पूर्ण करने का साधन नहीं अपितु समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य को निभाने का सुअवसर है।

इस प्रकार गुरुदेव अपने मंगलमयी संदेशों के माध्यम से समाज को कल्याण की प्रेरणा देते रहते थे। गुरुदेव के संदेश आज भी अपटुडेट है और समाज का पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं।

**महावीर के ऐसे सच्चे संदेश वाहक को हृदय से वंदन**

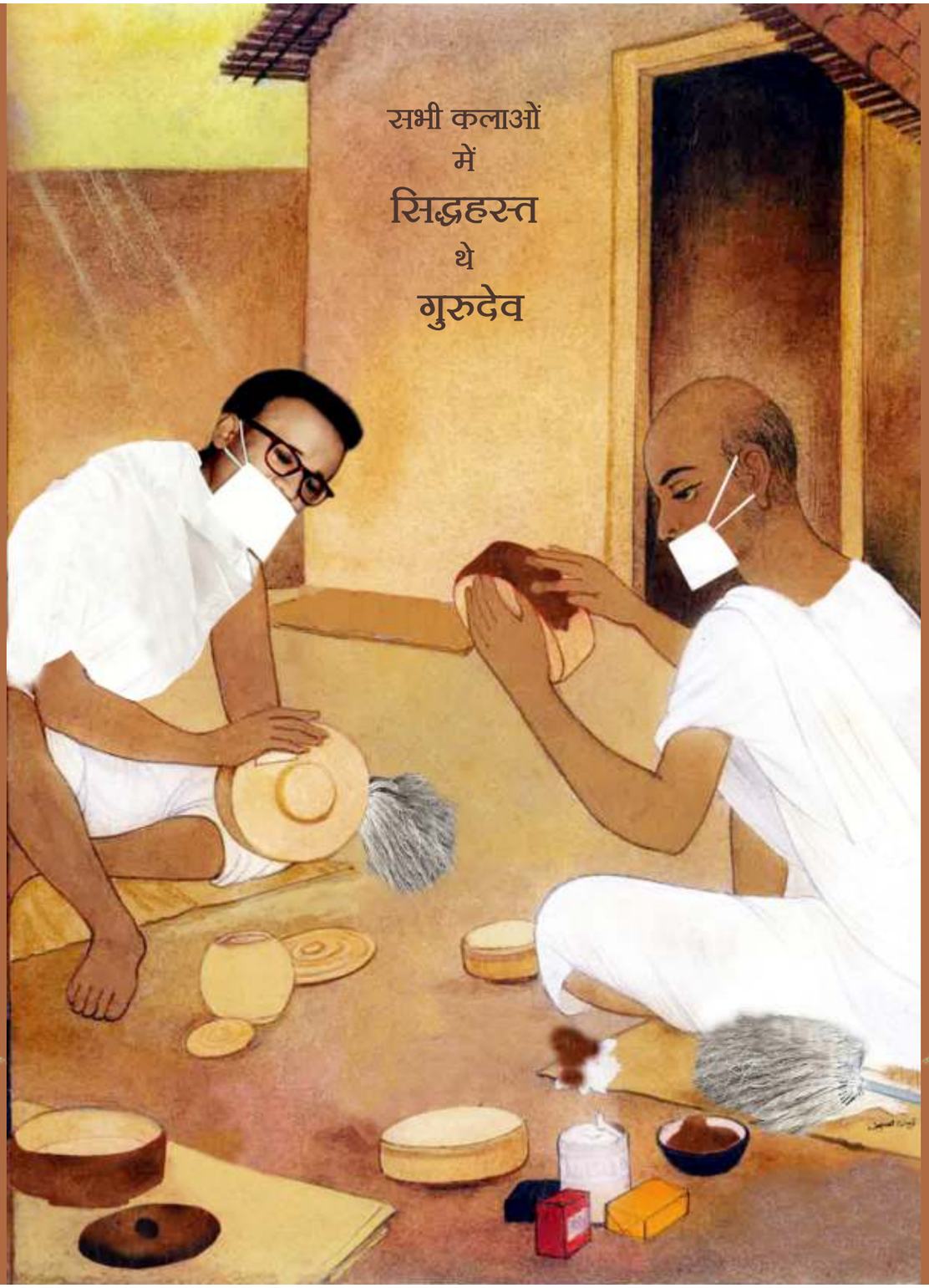
सभी कलाओं
में
सिद्धहस्त
थे
गुरुदेव

# 21 | कलाएं और गुरुदेव

**भारतीय** परम्परा के अनुसार कला उन क्रियाओं को कहते हैं जिनमें कौशल अपेक्षित हो। कला मनुष्य में निहित एक नैसर्गिक कौशल है जो मनुष्य की शारीरिक एवं मानसिक योग्यता का प्रर्दशन करती है। कला वह होती है जो जन-जन को आत्म विभोर कर दे। लोग उस व्यक्तित्व के दर्शन करना अपना सौभाग्य मानने लगे। वास्तव में वही कला उपादेय है जिसमें '**सर्वजन सुखाय, सर्व-जन हिताय**' की भावना समाहित हो। ऐसा कलाविद् मनुष्य ही त्रिलोक पूज्य बनता है।

पूज्य गुरुदेव जन्म से ही कलावतार थे। जब हम गुरुदेव के जीवन का आद्योपान्त अवलोकन करते हैं तो उनमें अनगिनत कलाओं का दिग्दर्शन होता है। जैसे भक्तगण द्वारकाधीश श्री कृष्ण को सोलह कलावतार मानते हैं उसी प्रकार रोहतक के बाबरा मोहल्ले में जन्मे यह कृष्ण भी अनेक कलाओं से संयुक्त थे।

जब गुरुदेव के जीवन चारित्र को कर्ण रंध्रों से हम श्रवण करते हैं तो मन आह्लाद व आश्चर्य से भर जाता है। पूर्व भव में आत्मा को किसी महान पुण्य का स्वर्णिम-स्पर्श मिला, तब कहीं जाकर यह जीवन इतनी कलाओं का संगम होता है। गुरुदेव का जीवन कलाओं का संगम स्थल था। कुछ कलाएं गुरुदेव को जन्म से ही प्राप्त थीं। कुछ अभ्यास के द्वारा तो कुछ गुरु कृपा के द्वारा हस्तगत हुईं।

विस्तारभय के कारण उनकी कलाओं के संक्षिप्त परिचय का दिग्दर्शन करवाने का प्रयास करूँगा।

**(1) दूसरों के हृदय में स्थान बनाने की कला :** गुरुदेव श्री का सौम्य-स्वभाव और मुख आकृति इतनी नयनाभिराम थी कि श्रद्धालु प्रथम दृष्टि में ही अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देता था। यही कारण था कि गुरुदेव घर पर भी सबके प्राण-वल्लभ थे, मोहल्ले के परम सुहृत एवं गुरु-चरणों में आकर भी सर्वप्रिय बने रहे। उत्तर भारत के समस्त भक्तों के हृदय पर उनका एकछत्र साम्राज्य रहा यह गुरुदेव में स्वभाविक कला थी। गुरुदेव के जीवन में अंशमात्र भी कृत्रिमता का स्थान नहीं था। उस भव्य आत्मा के जब मैंने प्रथम दर्शन किए तो अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। आज तक वह मूरत मेरे हृदय मंदिर में विराजमान है।

**(2) सेवा की कला :** *'सेवा-धर्म परम गहनो योगिनामप्यगम्य:।'* सेवा धर्म परम दुर्लभ है। जो योगियों के लिए भी अगम्य है। परन्तु गुरुदेव सेवा की साक्षात प्रतिमूर्ति थे। उन्होंने जीवन में जिस किसी महापुरुष की सेवा का उत्तरदायित्व संभाला उसे तन-मन-कर्मणा पूर्ण निष्ठा के साथ निभाया। उन्होंने सेवा में कभी स्वार्थ या प्रदर्शन का अभिनय नहीं किया। गुरुदेव के जीवन का लक्ष्य था कि महापुरुषों की समाधि खंडित न हो। अत: वे ईशारे से, प्रज्ञा व हार्दिक भावनाओं को समझकर भावपूर्ण सेवा करते। शास्त्रों में ऐसे शिष्य के लिए भगवान ने शब्द दिया है '**इंगियागार सम्पन्ने।**' इसी कारण गुरुदेव की सेवा से प्रसन्न होकर पूज्यश्री बनवारीलाल जी महाराज ने गद्गद् होकर आशीर्वाद दिया था कि मुनि सुदर्शन मेरी सेवा तुम्हारा सौभाग्य बनेगी।

महापुरुषों की सेवा के साथ-साथ गुरुदेव ने जिनशासन की प्रभावना कर समाज की महान सेवा की। पंच परमेष्ठि के इस महान सेवा यज्ञ में गुरुदेव ने अपना सर्वस्व होम कर दिया। यही कारण है कि आज वे जन-जन के सर्वेसर्वा बने हुए हैं। आंखों से ओझल हैं परन्तु जीवन में आज भी अपटुडेट बने हुए हैं। सेवा मनुष्य के यश रूपी शरीर को अजर अमर बना देती है।

**( 3 ) संगठन कला :** गुरुदेव संगठन के महान समर्थक थे। संघ या समाज से वैर-विरोध का उनके जीवन में दूर-दूर तक कोई नाता नहीं था। यदि किसी संघ में मनमुटाव होता भी तो गुरुदेव सार्वजनिक प्रवचनों के माध्यम से ऐसा शास्त्रीय समाधान प्रस्तुत करते कि लोगों के मन का कालुष्य स्वत: समाप्त हो जाता। उन्होंने जीवन में जोड़ने का कार्य किया। गुरुदेव के जीवन के ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिसमें गुरुदेव ने टूटे हुए संघ या हृदयों को एक सूत्र में पिरोकर पुन: सौहार्द के वातावरण को निर्मित किया। कई परिवारों व संघों पर गुरुदेव का महान उपकार रहा।

**( 4 ) मनोगत भावों को जानने की कला :** गुरु वही होता है जो भक्त के हृदय की पुकार को सुनाने से पूर्व ही सुन लेता है। गुरुदेव के जीवन की ऐसी कई आश्चर्यजनक घटनाएं हैं कि श्रावक गुरुदेव से अपनी समस्या का समाधान प्राप्त करने के लिए आते परन्तु कइयों को गुरुदेव के दर्शन मात्र से तो कई लोगों को प्रवचनों के माध्यम से अपनी समस्या का समाधान मिल जाता था। लोग आश्चर्यान्वित हो जाते कि गुरुदेव को हमारे मन के भावों का ज्ञान कैसे हुआ? मैं दूसरों की क्या बात करूँ मेरे जीवन में भी अनेक ऐसे प्रसंग आए जब गुरुदेव ने वार्तालाप के माध्यम से मुझे संतुष्ट कर दिया। उनकी इस अद्‌भुत कला का मैं स्वयं मुरीद हूँ।

**( 5 ) शिष्य बनाने की कला :** यह सत्य है कि गुरु शिष्य के जीवन का निर्माता होता है। परन्तु सभी गुरु इस कला के मर्मज्ञ नहीं होते। गुरुदेव की दृष्टि जौहरी की भाँति पारखी थी। वह विरक्तात्मा को देखते ही पहचान लेते कि यह जीव संयम रत्न धारण करने योग्य है या नहीं? वे योग्य आत्मा को ही संकेत देते थे कि तुम संयम के मार्ग को अंगीकार करो। वे निर्देश देने के साथ-साथ उसे संयम में स्थिर भी करते थे। पंजाब परम्परा में सर्वाधिक शिष्य बनाने की उपलब्धि गुरुदेव के नाम है। शिष्य बनाना एक कला है परन्तु योग्य शिष्य बनाना एक महाकला है।

**( 6 ) क्षेत्र-निर्माण की कला :** भगवान ने संघ को साधु के माता-पिता का गौरव दिया है क्योंकि संघ साधु के संयम पालन में सहायक होता है। अत: गुरुदेव संघ को सुदृढ़ एवं विशाल बनाने के पक्षधर थे। गुरुदेव का मंतव्य था कि जैन धर्म जन धर्म बने। सम्प्रदाय की चारदीवारी तक ही सीमित न रहे। इसी उद्देश्य को लेकर गुरुदेव ने समाज में एकता पर बल दिया और कई नवीन क्षेत्रों का निर्माण भी किया। हरियाणा में एक गाँव है बरेटा। इस क्षेत्र में गुरुदेव ने जैन धर्म की अनूठी प्रभावना की। जिनशासन के महात्म्य के विषय में समझाया। उसी के परिणाम स्वरूप वहाँ भव्य जैन स्थानक का निर्माण हुआ। आहार व विहार सुविधा के कारण वहाँ संतों का आवागमन भी बढ़ गया। इसके अतिरिक्त गुरुदेव ने शामली, मुज़फ्फर नगर इत्यादि क्षेत्रों में स्थानकों का जीर्णोद्धार करवाने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

**( 7 ) प्रशिक्षण की कला :** गुरुदेव समाज को धर्म के प्रति प्रबुद्ध बनाने के पक्षधर थे। अत: उन्होंने ज्ञान के क्षेत्रे में भी प्रचुर प्रयास किए। इससे पूर्व उनके दादा गुरु पूज्यश्री बनवारीलाल जी महाराज भी श्रावकों को पच्चीस बोल का थोकड़ा, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि कंठस्थ

करने की प्रेरणा देते थे। श्रुति से ज्ञात होता है कि उन्होंने बिनौली गांव में इक्कीस भाइयों को प्रतिक्रमण कंठस्थ करवाया। पूज्य गुरुदेव ने भी अपने पूर्वजों का अनुकरण करते हुए शिक्षण के क्षेत्र में नवीन क्राँति की। धर्म ज्ञान के क्षेत्र में कार्य को आगे बढ़ाने के लिए वाचस्पति गुरुदेव ने भी गुरुदेव को अपना वरद्हस्त प्रदान किया। गुरुदेव श्री के जीवन का एक ही लक्ष्य था कि जिनशासन जयवंत बने। इसी भावना के अंतर्गत गुरुदेव ने धार्मिक-शिक्षण का एक संग्रह बनाया। उस युग में ज्ञान-प्रभावना का अपने आप में प्रथम प्रयास था। गुरुदेव द्वारा संग्रहित प्रारूप को भविष्य में आदरणीय मास्टर श्यामलाल जी ने धर्मबोध, सरल बोध व अल्पबोध के नाम से प्रकाशित किया। गुरुदेव ने इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों को चांदनी चौक, बड़ौत, रोहतक, फरीदकोट, होशियारपुर आदि चातुर्मासों में अनूठे ढंग से प्रसारित किया। धन्य है गुरुदेव की अद्भुत कला-विज्ञान को। गुरुदेव के आशीर्वाद से मैंने भी धर्म-बोध की परीक्षा दिल्ली त्रिनगर चातुर्मास में दो बार आयोजित की और चातुर्मास के अंत तक जिसमें पाँच सौ से अधिक परीक्षार्थी जैन स्थानक के हाल में पंक्तिबद्ध होकर बैठे। गुरुदेव भी स्नेहमयी दृष्टि से इस कार्यक्रम को निहार रहे थे। परीक्षा पूर्ण होने के पश्चात गुरुदेव ने मुझे व आदीश मुनि को विशेष प्रोत्साहन दिया। उत्तर भारत में परीक्षा के माध्यम से ज्ञान के प्रचार-प्रसार का कार्यक्रम गुरुदेव की ही देन है।

**( 8 ) प्रवचन कला :** धर्म की प्रभावना के अनेक मार्ग हैं जप,तप, लेखन व शिक्षण। ये कार्य जिनशासन की प्रभावना के लिए उपयोगी है। परन्तु प्रवचन भी प्रभावना का एक सशक्त माध्यम है। आगमों में भी भगवन् ने प्रवचन को प्रभावना का मुख्य अंग फरमाया है। पंजाब परम्परा में समय-समय पर अनेकानेक प्रवचन प्रभावक संत हुए हैं। उसी शृंखला में गुरुदेव का विशिष्ट स्थान है। गुरुदेव अद्वितीय प्रवचनकार थे। जब वह सभा में सिंह की भाँति गर्जना करते थे तो मानो समय भी विराम लेकर सुनने लग जाता था। उनकी वाणी में ऐसा सम्मोहन था कि श्रोताओं का हृदय बरबस उनकी ओर आकर्षित हो जाता था। उनकी वाणी में गिरतों को उठाने की, रोते हुए को हंसाने की एवं हतोत्साहि में उत्साह भरने की अद्भुत कला थी। प्रवचन शैली इतनी विचित्र थी कि जैसे लोगों की भावनाओं को पढ़कर ही बोल रहे हों। अक्सर श्रद्धालु यह कहते हुए नज़र आते थे कि गुरुदेव ने तो हमारी समस्या का ही समाधान कर दिया। उनका प्रवचन जैन एवं जैनेतर दोनों वर्गों के लिए उपयोगी एवं मार्गदर्शक बनकर सिद्ध होता था। आज भी उनकी वाणी का स्मरण हृदय को भावुक बना देता है। मैं स्वयं को भाग्यशाली समझता हूँ कि मुझे भी गुरुदेव की अलौकिक वाणी सुनने का अपूर्व अवसर प्राप्त हुआ। आज सैंकड़ों अरुण मुनि मिलकर भी उनकी ओजस्वी वाणी का गुणगान नहीं कर सकते। जन मेदनी उनकी वाणी श्रवण करने के लिए सदा ही लालायित रहती थी। उनकी जिह्वा पर सरस्वती का वास था। गुरुदेव एक सफलतम प्रवचनकार थे।



**( 9 ) भजन कला :** गुरुदेव एक कवि एवं कुशल संगीतकार थे। उनका कंठ इतना सुरीला था कि वाद्य यंत्र भी उनके गायन के समक्ष फीके प्रतीत होते थे। हमारे सम्प्रदाय में सर्वप्रथम वाचस्पति गुरुदेव ने भजन लिखे। तत्पश्चात गुरुदेव ने उसी परम्परा को आगे बढ़ाया। गुरुदेव के भजन हृदयस्पर्शी होते थे। वा. गुरुदेव की भजनावली का संग्रह पटियाला से प्रकाशित हुआ। उस युग में नए भजनों को बनाने वाले संत दुर्लभ थे। गुरुदेव की बुद्धि इतनी तीव्र थी कि उन्होंने प्रत्येक क्षेत्र में अपना परचम लहराया। जब मैंने सर्वप्रथम गोहाना के दीक्षा महोत्सव पर उनका सुमधुर भजन सुना तो मेरा हृदय गद्गद् हो गया। गुरुदेव जब गायन प्रारंभ करते तो श्रोता झूमने लगते थे। गुरुदेव में त्वरित रचना का अद्भुत गुण था। जब 24 अप्रैल 1983 को भटिंडा में मेरी व अचल मुनि जी की दीक्षा हुई तो उस समय गुरुदेव ने जो भजन बोला

वह आज भी मुझे आनंद विभोर कर देता है। भजन की लाइनें कुछ इस प्रकार थीं, **'शाबाश ओए तूने अरुण कुमार वे, शाबाश ओए तूने अचल कुमार वे, जैन दीक्षा दी सुन लो महिमा अपार वे।'** गुरुदेव तुकबंदी बनाने में सिद्धहस्त थे। कुछ ही क्षणों में वे सरल व सरस तुकबंदी बना कर श्रोताओं को सम्मोहित कर देते थे।

**( 10 ) लोच की कला :** लोच करवाना यदि एक तप है तो लोच करना भी उससे कमतर तपस्या नहीं है। एक आसन पर बैठकर स्थिरभाव से लोच करना भी एक कला है। विरले साधक ही इस कला के विशेषज्ञ होते हैं। मेरा सौभाग्य है कि मैंने गुरुदेव के कर कमलों से लुंचन करवाया। वह समय मेरे जीवन का अविस्मरणीय क्षण था जब गुरुदेव ने लोच के लिए मेरे मस्तक का स्पर्श किया। उनका स्पर्श पाकर मेरा मुनि जीवन धन्य हो गया। लोच कब प्रारंभ हुआ और कब समाप्त हुआ इस बात का मुझे भान भी नहीं हुआ। उस युग में गुरुदेव से लोच करवाने के लिए सभी शिष्य लालायित रहते थे। संघेतर संत परम्परा में भी गुरुदेव ने कई संतों का लोच किया।

**( 11 ) पात्र रंगने की कला :** श्रमणचर्या के मुख्य उपकरण पात्रों को रंगने का कार्य प्रारंभ किया तो मुझे भी इस विषय से संबंधित कई ऐसे टिप्स गुरुदेव ने दिए ,उस समय मुझे ज्ञात हुआ कि गुरुदेव तो ऑलराऊंडर हैं। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि मैंने पात्र रंगने की कला गुरुदेव से सीखी। गुरुदेव बताते थे कि मैंने सर्वप्रथम रोहतक में पात्रों को रंग किया था।

गुरुदेव पात्रों के साथ-साथ वस्त्र सिलने में भी सिद्धहस्त थे। बरनाला चातुर्मास में गुरुदेव सुई-धागा लेकर स्वयं वस्त्र सिलते थे। यह गुरुदेव की ही महानता थी कि आजीवन उन्होंने किसी कार्य को छोटा नहीं समझा।

**( 12 ) लेखन कला :** गुरुदेव की लेखनी सरस, सुबोध व प्रभावशाली थी। आगमों पर सरल व जनोपयोगी व्याख्याएं लिखकर उन्होंने श्रुत सेवा में अहम् योगदान दिया। जब किसी संत को प्रवचन सामग्री या भाषण की आवश्यकता होती तो समाधान गुरुदेव के चरणों में ही प्राप्त होता था। गुरुदेव ने कई दीक्षाओं पर वैरागियों के भाषण भी लिखे। गुरुदेव ने एक बार मुझे भी सिरसा में भगवान महावीर जयंती के अवसर पर भाषण लिखकर दिया और भाषण कला से संबंधित कई प्रभावक टिप्स भी सिखाए।

**( 13 ) अभिनय कला :** एक कुशल प्रवक्ता बनने के लिए मात्र लेखन या भाषण ही पर्याप्त नहीं है बल्कि हाव-भाव का सामंजस्य भी अपेक्षित है। किसी कथानक या दृष्टांत को सुनाते समय गुरुदेव इतने भावुक हो जाते थे कि श्रोता प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते थे । त्रिनगर चातुर्मास में गुरुदेव ने स्वयं इस रहस्य को उद्घाटित करते हुए बताया कि मैंने स्कूल के समय नाटक व सामाजिक कार्यक्रमों में भी पार्टिसिपेट किया है। उसी चातुर्मास में गुरुदेव ने मुझे बच्चों को संस्कारित करने के लिए दो नाटकों का मंचन करने के लिए आज्ञा दी। नाटक को स्वाभाविक व समाजोपयोगी बनाने के लिए कुछ संशोधनात्मक टिप्स भी दिए। जब प्रवचन के समय नाटकों का प्रर्दशन किया गया तो गुरुदेव ने मुझे विशेष स्नेह भी दिया। गुरुदेव का दृष्टिकोण बहुआयामी था। उनका मंतव्य था कि मात्र जड़ क्रियाओं द्वारा जैन धर्म को जनप्रिय नहीं बनाया जा सकता।

**( 14 ) अध्यापन कला :** गुरुदेव की अध्ययन कला में कुशाग्र बुद्धि थी तो अध्यापन में भी उनका कोई सानी नहीं था। सन् 1943 का चातुर्मास पूज्य वाचस्पति गुरुदेव के नेश्राय में था। इस अवसर पर पूज्य तपस्वी जी महाराज, पूज्य सेठ जी महाराज एवं पूज्य राम प्रसाद जी

महाराज सांसारिक अवस्था में दर्शनार्थ आते थे। मन वैराग्य से तरंगित था। पूज्य गुरुदेव मदनलाल जी महाराज ने सर्वथा योग्य समझकर एक वर्ष की दीक्षा पर्याय में ही दो लघु वय बालकों के संस्कार व शिक्षा का उत्तरदायित्व गुरुदेव को सौंपा। गुरुदेव ने दोनों वैरागियों को पच्चीस बोल, प्रतिक्रमण एवं संस्कृत की प्रारंभिक शिक्षा का अध्ययन भी करवाया। गुरुदेव की अध्यापन कला भी अनूठी थी। गुरुदेव इस प्रकार अध्ययन करवाते कि सामने वाला सरलता पूर्वक इसे ग्रहण कर लेता। अपने गुरु भाइयों के जीवन निर्माण में भी गुरुदेव का अहम् योगदान रहा। दीक्षा के पश्चात सन् 1945 में गुरुदेव ने पूज्य सेठ जी महाराज एवं पूज्य रामप्रसाद जी महाराज को संस्कृत का गहन अध्ययन भी करवाया। मुझे भी पूज्य गुरुदेव के चरणों में बैठकर श्री दशवैकालिक सूत्र के स्वाध्याय का सुअवसर प्राप्त हुआ। यह मेरा परम सौभाग्य है कि मैं ऐसे भगवद् स्वरूप गुरुदेव के चरणों में रहकर शिक्षित हुआ। उन्हीं की कृपा से आज मैं संयम के मार्ग पर शांत भाव से अग्रसर हूँ। उन्हीं की शिक्षाओं को अंगीकार करना ही मेरे जीवन का मुख्य लक्ष्य रहा है।

**( 15 ) गोचरी की कला :** आहार चर्या संयम जीवन का मुख्य अंग है। एक सच्चे श्रमण के लिए आहार उदरपूर्ति का ही नहीं अपितु कर्म-निर्जरा का साधन होता है। विवेकपूर्वक आहार की गवेषणा कर रहा साधक धर्म की भी प्रभावना करता है। पूज्य गुरुदेव गोचरी की कला में भी निपुण थे। गोचरी दस घरों में भी हो सकती है परन्तु गुरुदेव स्वल्प मात्रा में आहार ग्रहण कर अधिक से अधिक घरों को प्रतिलाभित करने की भावना रखते थे। गुरुदेव को यह भी ध्यान होता था कि किस क्षेत्र के श्रावक कितने विवेकशील हैं। कब और किस समय निर्दोष आहार मिल सकता है। आहार के साथ-साथ भाव और भाषा का विवेक भी आवश्यक है। आगम का नियम है कि आहार न मिलने पर साधु क्षुब्ध न हो और मन:इच्छित वस्तु मिलने पर प्रसन्न न हो व न ही गृहस्थ को कर्कश भाषा बोले और न ही गृहस्थ के यहाँ अधिक चर्चा करे। गुरुदेव इन नियमों से भलीभाँति परिचित थे। उनमें गोचरी की कला भी अद्‌भुत थी। वे प्रत्येक मुनि की रुचि के अनुसार आहार की गवेषणा कर गोचरी लेकर आते परन्तु गुरुदेव ने कभी साधु मर्यादा पर दोष नहीं लगने दिया और भाषा विवेक का ध्यान रखते हुए, न ही किसी गृहस्थी का दिल दुखाया है। यह गुरुदेव की अनूठी कला थी।

**( 16 ) स्मरण शक्ति की कला :** पूज्य गुरुदेव का वर्चस्व इतना प्रभावशाली था कि श्रद्धा की डोर से बंधे हुए सैंकड़ों, हजारों भक्त प्रतिदिन गुरुदेव के दर्शनों के लिए आते। गुरुदेव के दर्शनों के पुण्य प्रभाव से ही लाखों भक्तों के कष्ट दूर हो जाते थे। गुरुदेव भक्तों के लिए एक मसीहा थे। आश्चर्य तो इस बात का है कि गुरुदेव को एक-एक भक्त का नाम स्मरण रहता था। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति का नाम ध्यान में रखना हिमगिरी की चढ़ाई से कम कठिन कार्य नहीं था परन्तु गुरुदेव में यह सहज कला थी। जब गुरुदेव एक बार किसी का नाम सुन लेते तो वह उनके स्मृति-पट पर अंकित हो जाता। हमने देखा कि गुरुदेव के पुराने परिचित भक्त यदि पचास वर्ष पश्चात भी दर्शनों के लिए आए तो गुरुदेव ने उन्हें नाम सहित संबोधित किया। गुरुदेव की इस कला को देखकर अक्सर मैं भी आश्चर्य से भर जाता था। इस प्रकार हमारे आराध्य गुरुदेव षोडश कलावतार थे। उनमें यह समस्त कलाएं स्वाभाविक थीं।

**ऐसे कलावतार गुरुदेव को शत्-शत् नमन।**

# समकालीन आचार्य और गुरुदेव

आचार्य सम्राट पूज्य श्री सोहन लाल जी महाराज

आचार्य सम्राट पूज्य श्री कांशी राम जी महाराज

आचार्य सम्राट पूज्य डा. शिवमुनि जी महाराज

संघ शास्ता परम पूज्य गुरुदेव श्री सुदर्शन लाल जी महाराज

आचार्य सम्राट पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज

आचार्य सम्राट पूज्य श्री देवेन्द्र मुनि जी महाराज

आचार्य सम्राट पूज्य श्री आनंद ऋषि जी महाराज

# 22 समकालीन आचार्य और गुरुदेव

**अचिनोति च शास्त्राणि, आचारे स्थापयत्यपि।**
**स्वयं आचारते यस्मात्, तस्मात् आचार्य उच्यते।।**

अर्थात् जिसे शास्त्रों का भली-भाँति ज्ञान हो और तदनुसार आचारण करता हो। उसे आचार्य कहते हैं।

संघ के उत्तरदायित्व को अपने कंधों पर वहन करने वाले आचार्य के दर्शन करना सौभाग्य का विषय होता है। गुरुदेव स्वयं आचार्य की समस्त योग्यताओं से संपन्न थे। उन्होंने अपने जीवनकाल में अनेक महान आचार्यों के दर्शन भी किए। उस समय भारतवर्ष में विचरण कर रही श्रमण परंपरा के कई महान आचार्यों से गुरुदेव का साक्षात्कार हुआ।

पूज्य आचार्य श्री सोहनलाल जी महाराज के गुरुदेव ने साक्षात दर्शन तो नहीं किए परन्तु उनके अनुवर्ती साधु-साध्वियों के दर्शन अवश्य किए थे।

पंजाब केसरी पूज्य आचार्य श्री काशीराम जी महाराज का जब महाराष्ट्र की यात्रा पर जाते समय रोहतक में पर्दापण हुआ। तब पूरे नगर में उत्सव का वातावरण था। एक दिन आचार्य प्रवर स्वयं नगर के घरों में दर्शन देने पधारे। उस समय बालक ईश्वर (गुरुदेव) ने आचार्य श्री को घर पधारने की प्रार्थना की। सहवर्ती संतों ने समय अभाव के कारण इंकार भी किया। परन्तु जब आचार्यश्री को ज्ञात हुआ कि यह बालक जग्गुमल का पौत्र है। आचार्यश्री गुरुदेव के घर पधारे और उनके हाथ से आहार भी ग्रहण किया। आचार्यश्री के स्नेह व आत्मीय व्यवहार के कारण गुरुदेव का मन उनके प्रति भक्ति भाव से भर गया।

सन् 1944 में जब आचार्य श्री का पुन: दिल्ली पर्दापण हुआ। उस अवसर पर गुरुदेव संयम अंगीकार कर एक योग्य मुनि बन चुके थे। आचार्यश्री गुरुदेव को मुनि भेष में देखकर अत्याधिक प्रसन्न हुए। आचार्यश्री के सम्मान में पूरा उत्तर भारत उमड़ रहा था। वृद्धावस्था के कारण आचार्यश्री विहार करने में अशक्त थे। अत: बिरला मंदिर से सदर बाजार डोली से पधारे। उनकी डोली उठाने का सौभाग्य पूज्य गुरुदेव को भी प्राप्त हुआ।

वाचस्पति गुरुदेव एवं आचार्यश्री के मध्य गहन वार्तालाप हुआ। आचार्यश्री की इच्छा थी कि मेरे उपरांत पंजाब परंपरा का उत्तरदायित्व वाचस्पति गुरुदेव संभाले अथवा उनके सुयोग्य शिष्य सुदर्शन मुनि इस कार्यभार को संभाल ले। परन्तु वाचस्पति गुरुदेव ने वर्तमान स्थिति को देखते हुए स्वयं को एवं अपने शिष्य को सामाजिक प्रपंचों से बचाकर रखना ही उचित समझा। कालांतर में जब आचार्यश्री जी का अंबाला में देवलोकगमन हुआ तो इस बात का गुरुदेव को बहुत आघात लगा। गुरुदेव ने आजीवन पूज्य आचार्यश्री काशीराम जी महाराज द्वारा निर्धारित समाचारी का पालन किया।

दिल्ली में गुरुदेव एवं पूज्य आचार्यश्री गणेशीलाल जी महाराज का 1950 में संयुक्त चातुर्मास हुआ। आचार्य श्री गणेशीलाल जी महाराज भी गुरुदेव की अद्‌भुत क्षमता एवं नेतृत्व कला के गुण से प्रभावित थे। दिल्ली प्रवास में ही राजस्थान के महान आचार्यश्री हस्तीमल जी

महाराज का भी गुरुदेव से मधुर मिलन हुआ था।

इधर पंजाब परंपरा में पूज्य आचार्यश्री आत्माराम जी महाराज ने आचार्य श्री काशीराम जी महाराज के उत्तरदायित्व को सर्वसम्मति से ग्रहण किया। गुरुदेवश्री के सांसारिक परिजन भी लुधियाना में विराजित पूज्य आचार्यश्री आत्माराम जी महाराज के दर्शन हेतु आते थे। बाबा श्री जग्गुमल जी महाराज ने दीक्षा ग्रहण करने से पूर्व उस समय पूज्य उपाध्याय श्री आत्माराम जी महाराज के चरणों में रहकर प्रतिक्रमण कंठस्थ किया था।

सन् 1941 में जब गुरुदेव वैराग्यावस्था में थे। उस समय पूज्य आचार्यश्री आत्माराम जी महाराज एवं वाचस्पति गुरुदेव का गुज्जरबाल से लेकर रायकोट तक संयुक्त विहार भी हुआ। उपाध्याय आत्माराम जी महाराज विहार करते हुए मार्ग में किसी सघन वृक्ष के नीचे बैठकर ध्यानस्थ हो जाते हैं। गुरुदेव भी इस अद्‌भुत दृश्य के साक्षी बने थे।



18 जनवरी 1942 को जब संगरूर शहर में गुरुदेव सहित तीन दीक्षाओं का आयोजन हुआ तो उस अवसर पर वहाँ पूज्य आचार्यश्री आत्माराम जी महाराज सहित 33 महापुरुषों का भव्य समागम हुआ। दीक्षा ग्रहण करते ही प्रथम रात्रि में गुरुदेव पूज्य आचार्यश्री की वैयावृत्य हेतु पधारे। मुनि सुदर्शन की विनय एवं प्रशस्त भावना देखकर आचार्यश्री ने गुरुदेव को संयमोपयोगी कुछ हितशिक्षाएं भी दी। उन्होंने फरमाया-मुनि सुदर्शन! तुम्हारी दीक्षा से पूर्व हम 33 संत थे, अब ये संख्या 36 हो गई है। परन्तु तुम अपने जीवन में 33 की तरह ही रहना। अर्थात् जैसे 33 अंक में दोनों अंकों का रूख एक दिशा में होता है। उसी प्रकार तुम्हारा झुकाव सदैव अपने गुरु की ओर होना चाहिए। जबकि 36 के अंक में दोनों अंकों का रूख एक-दूसरे के विपरीत होता है। सांसारिक प्रलोभनों के प्रति तुम्हारी दिशा विपरीत होनी चाहिए। अगर बाह्य आकर्षणों के प्रति आप पीठ मोड़कर रखेंगे तभी दीक्षा के वास्तविक स्वरूप को समझ सकते हैं।

15 जनवरी 1962 में वाचस्पति गुरुदेव ने तथा गुरुदेव ने लुधियाना में आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज के अंतिम दर्शन किए। गुरुदेव ने उनसे सांवत्सरिक क्षमायाचना भी की।

तत्पश्चात् श्रमण संघ के द्वितीय पट्टधर आचार्यश्री आनंदऋषि जी ने इस पद का उत्तरदायित्व संभाला। सन् 1970 में बड़ौत मंडी के श्रीसंघ ने गुरुदेव को चातुर्मास हेतु प्रार्थना की। गुरुदेव ने भी प्रबल भावना देखते हुए मंडीश्री संघ को आश्वासन प्रदान किया। इधर आचार्यश्री आनंदऋषि जी महाराज के उत्तर भारत में पर्दापण के अवसर पर बड़ौत शहर के कुछ श्रावकों ने आचार्यश्री को चातुर्मास की भावपूर्ण विनती की। पूज्यश्री ने इस अवसर पर बड़ौत शहर के समाज को आश्वासन भी दिया था। जब गुरुदेव को यह बात ज्ञात हुई तो उन्होंने बड़ौत मंडी संघ को स्पष्ट कर दिया था कि आचार्यश्री का उत्तरभारत में यह प्रथम विचरण है। वे हमारे पूजनीय भी है। हम कभी समकक्ष चातुर्मास नहीं करेंगे। अत: इस वर्ष आप उनका उत्साहपूर्वक चातुर्मास करवाए। हमारा विचरण क्षेत्र तो उत्तर भारत ही है। हम फिर किसी अवसर पर आपको लाभ देगें।

सन् 1970 में गुरुदेव ने दिल्ली चाँदनी चौक चातुर्मास किया। तत्पश्चात् यू.पी. की ओर प्रस्थान कर आचार्यश्री आनंदऋषि जी महाराज के दर्शन किए। आचार्यश्री एवं गुरुदेव का मधुर मिलन स्वयं में एक इतिहास बन गया। दोनों महापुरुषों का हृदय गद्‌गद् था। आचार्यश्री ने गुरुदेव की प्रशंसा करते हुए कहा-'**सुष्ठु दर्शनं यस्य सः सुदर्शनः।**' दोनों महापुरुषों का दो दिन संयुक्त प्रवचन भी हुआ। लोगों का उत्साह भी दर्शनीय था। उस अवसर पर आचार्यश्री ने गुरुदेव को कहा-आप भी संघ एकता के लिए प्रयास करें। गुरुदेव ने कहा-मैं तो सदैव संगठन का

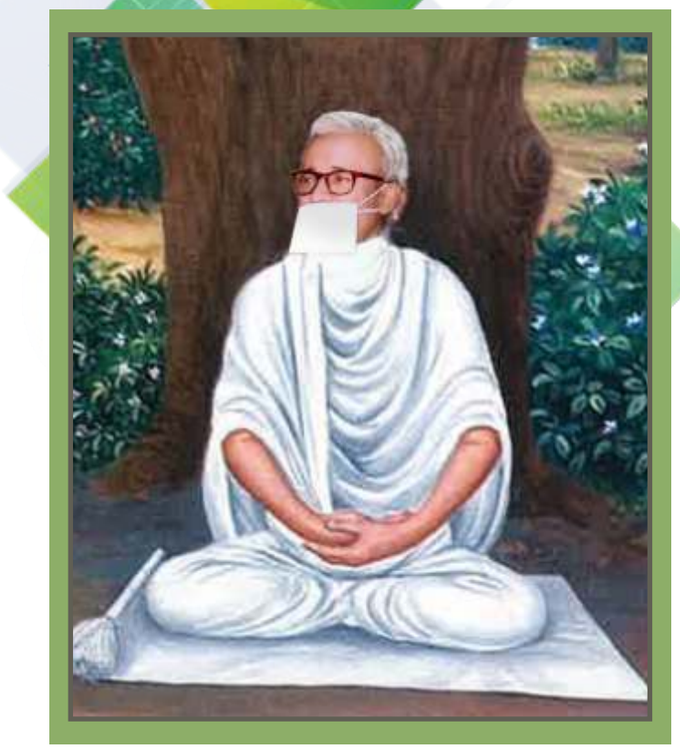

समर्थक हूँ। आप दो कदम आगे बढ़ाएं हम आठ कदम चलकर आपका स्वागत करेंगे। गुरुदेव के इस सकारात्मक उत्तर को सुनकर आचार्यश्री बहुत प्रसन्न हुए। अंततः उन्होंने इतने विशाल संघ की आंतरिक विवशता प्रकट भी की। आचार्यश्री ने गुरुदेव की उदार भावना की भूरि-भूरि प्रशंसा भी की। गुरुदेव ने अगले दिन आचार्यश्री को दो कि.मी. का विहार करवाया तथा उनके श्री मुख से मंगल-पाठ श्रवण किया। आचार्यश्री ने गुरुदेव को मंगलपाठ सुनाने का निवेदन किया। परन्तु विनयशील गुरुदेव ने कहा-मैं अपने पूज्यों के समक्ष मंगलपाठ कैसे सुना सकता हूँ?

जब हम तीनों मुनि राजस्थान की ओर प्रस्थान कर रहे थे तो गुरुदेव ने विशेष रूप से निर्देश दिया। अहमदनगर में विराजित आचार्य आनंदऋषि जी महाराज के दर्शन अवश्य करें।

आचार्य आनंदऋषि के देहावसान के पश्चात् श्रमण संघ का आचार्यपद पूज्य श्री देवेन्द्र मुनि जी ने संभाला। गुरुदेव का आचार्यश्री देवेन्द्र मुनि जी से कभी प्रत्यक्ष समागम तो नहीं हुआ। परन्तु समय-समय पर गुरुदेव के संघस्थ मुनि आचार्यश्री से भेंट करते रहे। गुरुदेव ने भी देवेन्द्र मुनि जी के आचार्य बनने से पूर्व दर्शन किए थे।



आचार्य देवेन्द्र मुनि जी के पश्चात् श्रमण संघ के चतुर्थ पट्टधर के रूप में आचार्य शिवमुनि जी आसीन हुए। आचार्य शिवमुनि जी ने आचार्य बनने से पूर्व मुनि रूप में गुरुदेव के कई बार दर्शन किए। बरनाला में गुरुदेव के सान्निध्य में एक शिष्य की भाँति रहे। गुरुदेव श्री शिव मुनि जी के सरल स्वभाव से प्रभावित थे। गुरुदेव के प्रति उन्होंने शिष्यवत् व्यवहार किया। उन्होंने कहा कि अगर मेरे परिजनों की सहमति होती तो मैं आपके चरणों में ही दीक्षा लेने का इच्छुक था। गुरुदेव ने शिवमुनि जी को कई उपयोगी शिक्षाएं प्रदान की। अपने मुनियों से अध्ययन भी करवाया। गुरुदेव की यह हार्दिक इच्छा थी कि यह मुनिराज संघ के आधार बनें। इस प्रकार गुरुदेव ने अपने जीवनकाल में कई आचार्यों के साथ समागम किया।

**ऐसे एतिहासिक महापुरुष को शतशः नमन!**

गुरुदेव सदा चुनौतियों में मार्ग प्रशस्त करते थे

# 23 | चुनौतियां और गुरुदेव

**Life is Challenge meet it.**

**जीवन** कभी भी सरल सपाट नहीं होता। जीवन में उतार-चढ़ाव रूपी गिरी कंदराओं का सामना करना पड़ता है। जीवन है तो संघर्ष व चुनौतियों का सामना करना ही पड़ेगा। जो इन चुनौतियों को सहन किए बिना हिम्मत हार जाते हैं सफलता उनसे दूर भाग जाती है। जब समय विपरीत होता है तो दृढ़ निश्चयीजन द्विगुणित साहस से कदम आगे बढ़ाते हैं। मुश्किलें ही एक दिन समाप्त हो जाती हैं साहसी मनुष्य का साहस नहीं।

गुरुदेव ने अल्पवय से ही चुनौतियों का सामना किया। परन्तु कभी अपने साहस, दृढ़निश्चय व संकल्प-शक्ति को क्षीण नहीं होने दिया। बाल्यकाल में ही माता का बिछौह, परममित्र की अकस्मात् मृत्यु, संयमपथ पर अवरोध। ऐसे अनेकों मार्गों पर गुरुदेव ने कभी धैर्य का दामन नहीं त्यागा।

अनेक व्यवधानों को पारकर गुरुदेव दीक्षा अंगीकार कर पूज्य मदन गुरु की छत्र-छाया में अपने आध्यात्मिक जीवन का विकास करने लगे। परन्तु जीवन में एक कठिन दौर फिर प्रारंभ हुआ जब वाचस्पति गुरुदेव संसार को अलविदा कह गए। अब तक तो गुरुदेव बड़ों के आश्रय में थे, गुरुदेव निश्चिंत थे। परन्तु वाचस्पति गुरुदेव के पश्चात् संघ की बागडोर गुरुदेव को संभाली गई। यह एक शाश्वत सत्य है कि ताज अपने साथ कांटे लेकर आता है। अगर आप किसी क्षेत्र में सफलता का स्पर्श कर रहे हैं तो बाहर चुनौतियां भी मुंह उठाकर खड़ी हो जाती है।

पूज्य वाचस्पति गुरुदेव का रूआब व तेजस्विता इतनी प्रबल थी कि समस्त विरोधी गुरुदेव के समक्ष निस्तेज हो जाते थे। वाचस्पति गुरुदेव अपने अंतिम समय से श्रमण संघ से अपने 15 शिष्यों सहित पृथक हो गए थे। बहुत विषम स्थिति थी। एक तरफ भारतवर्ष में हजारों साधु-साध्वियों का समूह था दूसरी ओर पन्द्रह संतों की लघु इकाई। एक वृहत् परंपरा से पृथक होकर समाज में अपनी नई पहचान स्थापित करना भी एक महान चुनौती होती है। संघ से पृथक होते ही विरोध के स्वर और तीक्ष्ण हो गए। साथ-ही-साथ सहयोगी भी द्विगुणित अपेक्षा से गुरुदेव के मुख की ओर निहार रहे थे। ऐसी परिस्थिति में वाचस्पति गुरुदेव का देवलोकगमन होते ही व्यवस्था का सारा उत्तरदायित्व गुरुदेव के कंधों पर आ गया। ऐसे सांप्रदायिक प्रतिकूल वातावरण में गुरुदेव ने अपने सौम्य व विनम्र स्वभाव से, हृदय की विवेकशक्ति से, बाह्य एवं भीतरी चुनौतियां का सामना साहस व समझपूर्वक किया। गुरु मदन द्वारा प्रदत्त संयम को सुदृढ़ बनाए रखा एवं श्रावक वर्ग को भी जागृत किया।

21वीं शताब्दी सन्निकट आते-आते श्रमणाचार एवं विचार में शिथिलता का प्रभाव बढ़ने लगा। युग का प्रभाव समझकर जनमानस भी शिथिलता को स्वीकार करने लगा। इस चुनौती का भी गुरुदेव ने अपने सहयोगी संतों एवं श्रावकों के सहयोग से समाधान कर दिया। पूज्य आचार्यश्री काशीराम जी महाराज की संयम प्रणाली का यथावत् निर्वाह किया।

युग की परिवर्तनशीलता निरंतर अपना प्रभाव दिखा रही थी। समाज में यदि व्यवहारिक शिक्षा का रूझान बढ़ा तो साधुवर्ग भी इस

आंधी से अछूता न रहा। गुरुदेवश्री संघ में भी कुछ लोग व्यवहारिक शिक्षा का मंद स्वर में समर्थन करने लगे। परन्तु गुरुदेव ने अपने आध्यात्मिक बल एवं वैराग्यपूर्ण तपस्तेज से मंदस्वरों को कभी मुखरित नहीं होने दिया। संयमी एवं अध्यात्म प्रदान जीवन शैली को पोषित किया।

शिष्य बनाना सरल है परन्तु उन शिष्यों को संस्कारों का पोषण देकर समाज के लिए एक छायादार वृक्ष के रूप में स्थापित करना दुरुह कार्य है। इतिहास साक्षी है कि कुछ संतों के शिष्यमोह व लोभ के कारण समाज व संघ को अव्यवस्था व अपमान के कितने झंझावात झेलने पड़े। गुरुदेव के संघ में 29 संतों की समृद्ध शिष्य परंपरा थी। शिष्यवर्ग में भी स्वभाव, रूचि व अपेक्षाएं भिन्न-भिन्न होती है। उन्हें एक सूत्र में ग्रंथित करना माऊंट एवरेस्ट पर चढ़ाई के समान दुर्गम कार्य है। आज एक गुरु के लिए दो शिष्यों को संभालना भी कठिन कार्य है। परन्तु गुरुदेव ने 29 शिष्यों को एक संयम व एक समाचारी में बांधकर व्यवस्थित रखा। यह भी अपने आप में एक महान चुनौती थी।

समय-समय पर शारीरिक रोग भी गुरुदेव के समक्ष चुनौतियां उत्पन्न करने लगे। परन्तु गुरुदेव कभी भी घबराएं नहीं। मर्यादा में रहकर गुरुदेव ने प्रत्येक व्याधि को समभावपूर्वक सहन किया। उस युग में बढ़ रही जनसंख्या व बिल्डिंगों के निर्माण के कारण बहिर्भूमि जाना भी एक समस्या बन गया था। परन्तु गुरुदेव ने इस समिति से संबंधित असंयमित विकल्प का चयन नहीं किया।

उस युग में माईक का स्थानकों में प्रयोग भी एक चुनौती के रूप में उभरने लगा। समस्या यह भी थी कि कुछ श्रावक वर्ग भी माईक का समर्थन करने लगा। परन्तु गुरुदेव ने कभी भी भावों में बहकर इस सिस्टम का समर्थन नहीं किया। गुरुदेव की एक विशेषता थी कि वे जीवन में न कभी किसी से भयभीत हुए व न ही किसी को भयभीत किया। जो भी चुनौतियां जीवन में उपस्थित हुई। उन्हें साहस व समझपूर्वक सुलझाया।

**ऐसे साहसी व्यक्तित्व के धनी गुरुदेव को चरण वंदन!**

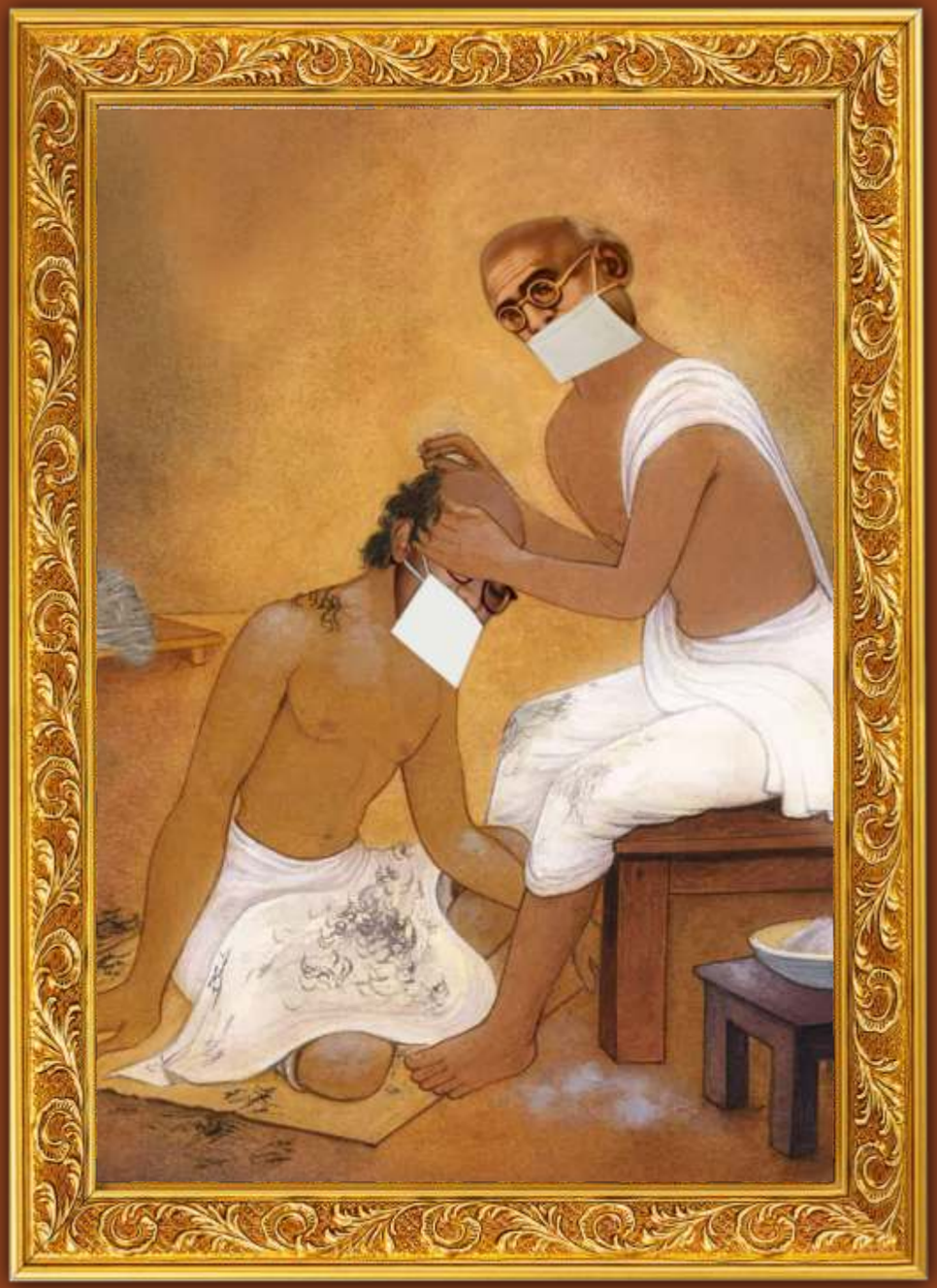

गुरुदेव लोच
करवाते हुए

गुरुदेव स्वयं
भी लोच करने में
निष्णात
व सिद्धहस्त थे

# 24 | लोच और गुरुदेव

**समतापूर्वक** अनासक्त भावसे सिर एवं मुख के केशों को स्वयं से विलग करने की प्रक्रिया को लुंचन कहा जाता है। केश देह शृंगार का साधन है। एवं शरीर आसक्ति को सघन बनाते हैं। अत: देह के ममत्त्व का परित्याग करने के लिए भगवान ने केश लुंचन का विधान बनाया। जो जैन-श्रमण की विशिष्ट पहचान है। भगवान महावीर निर्वाण के 2500 वर्ष उपरांत भी जैन साधकों ने इस प्रक्रिया को जीवंत रखा है। जैन-दर्शन की यह मान्यता है कि जो साधक देहासक्ति का त्याग करने के लिए समझबूझ, साहस व समतापूर्वक केश-लुंचन करवाते हैं। उनके जीवन में आत्मशुद्धि का मार्ग-प्रशस्त होता है। जैन धर्म की चारों परम्पराओं में आज भी केश-लुंचन का अनिवार्य विधान है।



लोच करवाना यदि एक साहसिक कार्य है, तो लोच करना भी एक अद्‌भुत कला है। गुरुदेव लोच करने में निष्णात एवं सिद्धहस्त थे। एवं लोच करवाने में सदैव सिंह की भांति निडर रहे।

शास्त्रों में वर्णन आता है कि संयम का पालन तलवार की तेजधारपर नग्न पैरों के चलने के समान दुरूह है। श्रमण जीवन में परीक्षा व परीषहों का गहन संबंध है। स्वर्ण अग्नि में तपकर कुंदन बनता है। उसी प्रकार जन्मों से एकत्रित कर्ममल को भस्म करने के लिए परिषहों की भट्‌ठी में तपना अत्यावश्यक है। तभी आत्मा में कंचन की भांति चमक उत्पन्न होती है। प्रारंभिक वय से ही गुरुदेव के मन में अनूठा उत्साह था। गुरुदेव का सढौरा में प्रथम चातुर्मास एक इतिहास बन गया। संवत्सरी के निकट गुरुदेव ज्वर से पीड़ित हो गए। अभी लुंचन क्रिया शेष थी। आगमिक मर्यादा के अनुसार संवत्सरी से पूर्व लोच आवश्यक था। स्थविर संतों ने विचार किया कि बालक को तीव्र ज्वर है। अभी प्रथम लुंचन है। अत: क्षुरमुंडन द्वारा औपचारिकता पूर्ण कर ली जाए। तत्पश्चात प्रायश्चित देकर शुद्धि करवा देंगे। जब गुरुदेव को यह ज्ञात हुआ तो उन्होंने वयोवृद्ध संतों से प्रार्थना की, कि मुझे क्षुरमुंडन नहीं करवाना, मैं लोच करवाने के लिए सहर्ष उपस्थित हूं। गुरुदेव के अदम्य साहस को देखकर सभी आश्चर्य चकित थे।

सन् 1953 में पूज्य तपस्वी जी महाराज, पूज्य सेठजी महाराज एवं भगवन् श्री रामप्रसाद जी महाराज का गुरुदेव के साथ संयुक्त चातुर्मास था। उस समय स्वयं गुरुदेव ने भगवन् श्री का लोच किया। गुरुदेव की सातापूर्वक लुंचन क्रिया से प्रभावित होकर भगवन् ने लिखा कि गुरुदेव लोच करने की अद्‌भुत कला के धनी थे। जिसके शीश को एक बार लुंचन के लिए गुरुदेव के हाथ का स्पर्श मिल गया। फिर उसे कोई अन्य हाथ साताकारी नहीं लगता। वह सदैव गुरु महाराज से ही लोच करवाना पसंद करता था। सदर बाजार स्थानक से पूज्य भागमल जी महाराज पूज्य श्री त्रिलोकचंद जी महाराज विशेष रूप से लोच करवाने गुरुदेव के पास आते थे। इसके अतिरिक्त कई मूर्ति पूजक संत भी गुरुदेव से लोच करवाने आते थे। अर्थात् जिस साधक ने भी गुरुदेव के लोच संबंधी कला कौशल को देखा वह गुरुदेव का मुरीद बन गया। गुरुदेव भी बिना किसी भेदभाव के सभी संतों की सेवा कर प्रसन्न होते थे।

उपाध्याय पूज्य श्री कस्तूरचंद जी के शिष्यश्री हुक्मचंद जी महाराज दोनों हाथों से लोच करने में सिद्धहस्त थे। गुरुदेव श्री भी इस कला के विशेषज्ञ थे। वे जब लोच प्रारंभ करते तो ज्ञात नहीं होता था कि

लोच कब प्रारंभ हुआ और कब समाप्त। गुरुदेव ने मूर्तिपूजक संघ के आचार्यश्री विजयेन्द्र विजय रत्न सूरि का लोच भी किया। गुरुदेव ने अपने साथी शिष्यों को लुंचन कला में निष्णात बनाया।

सन् 1993 में गुरुदेव ने कहा कि अरुण मुनि! मुझे तुमसे लोच करवाना है। गुरुदेव शांतभाव से मेरे समक्ष बैठ गए। मैंने वंदन कर लोच प्रारंभ किया। लगभग 30 मिनट का समय लगा। जब मैं लोच समाप्त कर वंदन किया तो गुरुदेव पूछने लगे। क्या लोच समाप्त भी हो गया। मैंने कहा–गुरुदेव आपकी कृपा है। गुरुदेव बोले–तुम्हारा हाथ तो बहुत हल्का है। ज्ञात भी नहीं हुआ कब लोच पूर्ण हो गया। अरुण मुनि! तुम लोच भी मेरी भांति करता है। प्रवचन भी मेरी भांति करते हो। तुम जीवन में बहुत विकास करोगे। गुरु कृपा से मैं भी दोनों हाथों से लोच कर लेता हूं।

मेरी दीक्षा के उपरांत जब मेरा प्रथम लोच करने के लिए गुरुदेव ने मेरे मस्तक का स्पर्श किया तो मेरा जीवन धन्य बन गया। वे पावन क्षण आज भी स्मृति रूप में सुरक्षित है। गुरुदेव का स्पर्श अलौकिक था और लोच करने का ढंग लोकोत्तर। इस प्रकार गुरुदेव ऐसी अनेक अलौकिक विधाओं के धनी थे।

**ऐसे दिव्य महापुरुष को बारंबार वंदन!**

परिषह सहनादिक परकारा,
ए सब है व्यवहारा,
निश्चय निजगुण छरण उदारा,
लहत उत्तम भवपारा

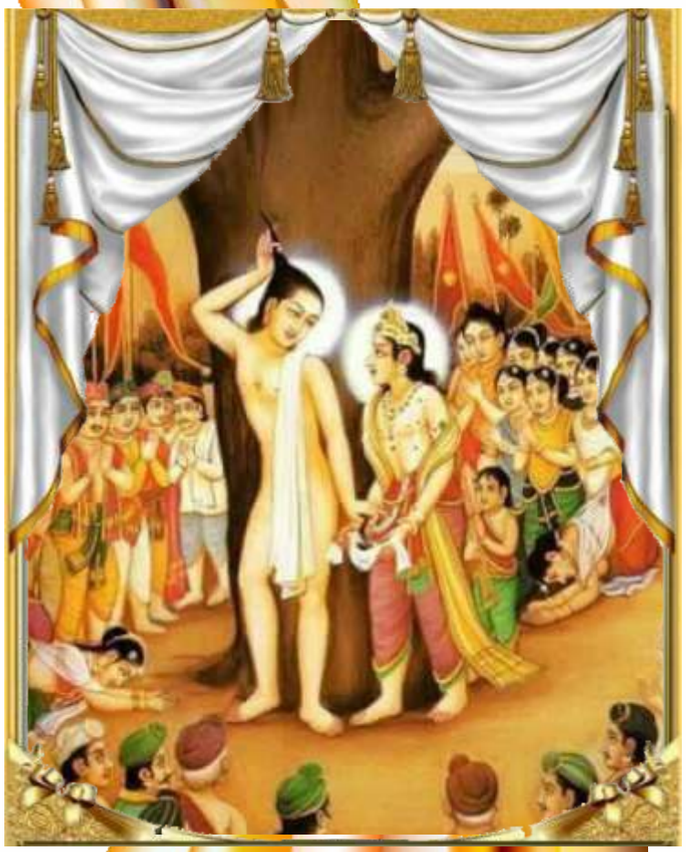

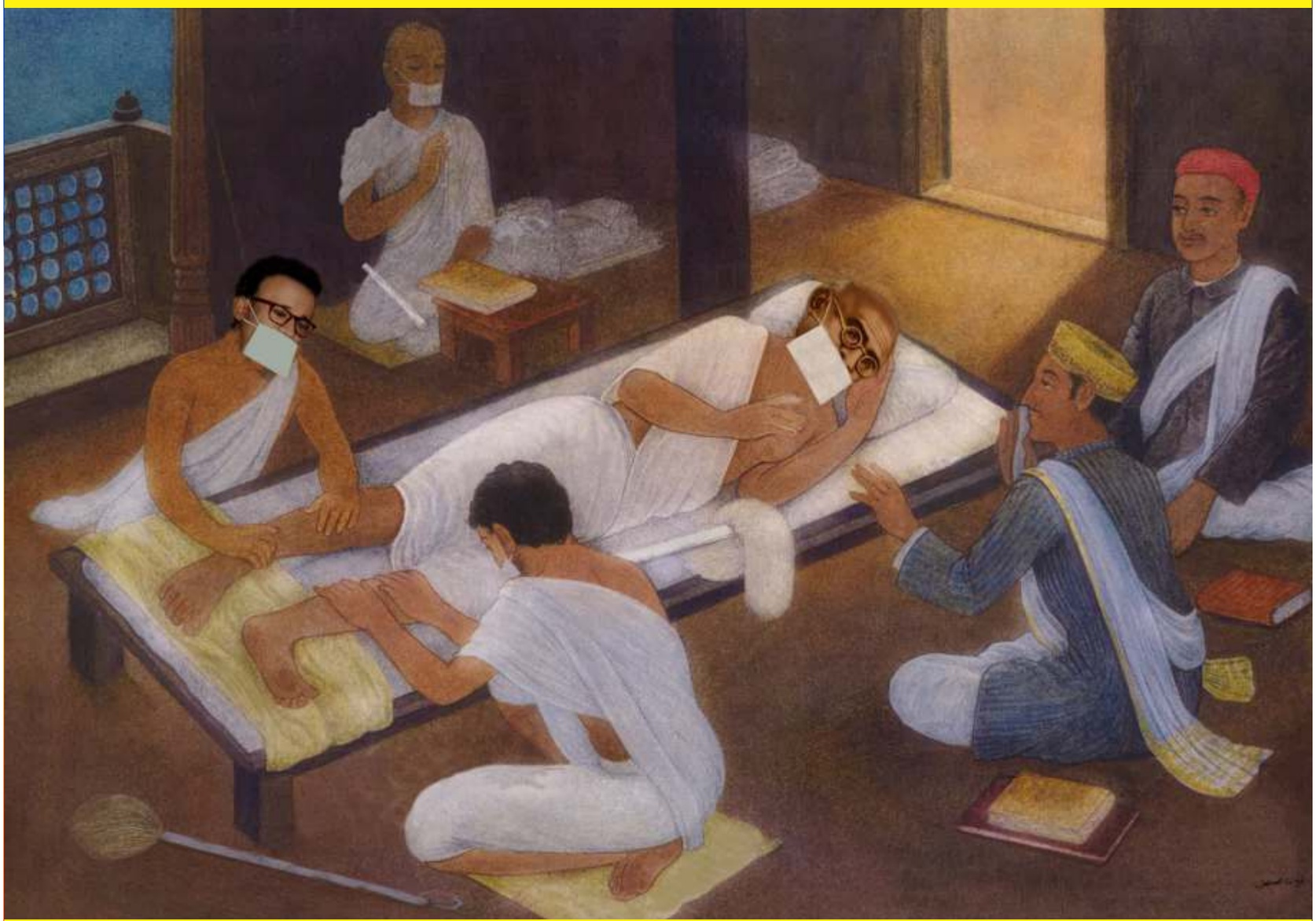

रात्रिकाल में वाचस्पति गुरुदेव की सेवा करते हुए गुरुदेवश्री

# 25 | सेवाभाव और गुरुदेव

**आगमों** में स्थान-स्थान पर सेवा की महिमा मंडित की गई है। सेवा करना अत्यंत दुष्कर कार्य है। सहनशील एवं प्रज्ञावान साधक ही सेवा की कसौटी पर खरा उतर सकता है। वृद्ध, रोगी व ग्लान की सेवा करना कोई सरल कार्य नहीं है। सेवा करने वाला साधक महान पुण्य का उपार्जन करता है। इसलिए भगवान ने फरमाया सेवा करने से तीर्थंकर नाम कर्म का बंध होता है। जो पुण्य की सर्वोत्कृष्ट स्थिति है। भर्तृहरि को भी कहना पड़ा।

**'सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगमः।'**

सेवा करना अत्यंत कठिन है। यह तो योगियों के लिए भी अगम्य (दुष्कर) है। परन्तु गुरुदेव का जीवन सेवा की एक जीवंत मिसाल रहा है।

यदि हम गुरुदेवश्री के जीवन चारित्र का आद्योपान्त अवलोकन करते हैं तो गुरुदेव का जीवन इन चार गुणों की परिक्रमा करता हुआ दृष्टिगोचर होता है। विनय, विवेक, वैराग्य और सेवा। गुरुदेव का जीवन सर्व गुण सम्पन्न था। विद्वता के साथ-साथ उनके जीवन में सेवा का भी मणिकांचन संयोग था। सेवा के लिए तो वे अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को तत्पर रहते थे।

दीक्षा ग्रहण करते ही उन्हें अपने बाबा श्री जग्गूमल जी महाराज की सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ। गुरुदेव ने सेवा के क्षेत्र में विविध आयाम स्थापित किए।

सन् 1947 में वाचस्पति गुरुदेव ने गुरु महाराज को फरमाया कि इस वर्ष मैं तुम्हारी लाटरी निकालने जा रहा हूँ। तुम्हें धर्म के कल्पवृक्ष की सेवा का अवसर मिल रहा है। गणावच्छेदक पूज्य श्री बनवारी लाल जी महाराज के चरणों में तुम्हें चातुर्मास करना है। यह सुनकर गुरुदेव का रोम-रोम पुलकित हो गया। पूज्य गुरुदेव श्री के जीवन काल में सन् 1947 का समय 'स्वर्णिम समय' के रूप में स्मरण किया जाता है। उस अवसर पर गुरुदेव तपस्वी श्री फकीरचंद जी महाराज एवं बाबा श्री जग्गूमल जी महाराज की सेवा का कार्य भी स्वयं वहन करते थे।

पूज्य बनवारी लाल जी महाराज की भी उन्होंने तन-मन से समर्पित होकर सेवा की। पूज्य महाराज ने गुरुदेव की सेवा से प्रसन्न होकर कहा था कि *'यह सेवा ही तुम्हारा सौभाग्य बनेगी।'*

सन् 1949 के चातुर्मास में अपने संघ के वयोवृद्ध संतरत्न श्री अमीलाल जी महाराज एवं तपस्वी श्री नेकचंद जी महाराज सरीखे महान संतों की सेवा का सुअवसर प्राप्त हुआ था। वास्तव में गुरुदेव का जीवन ही सेवा का पर्यायवाची था। वे कभी सेवा के अवसर को अपने हाथ से जाने नहीं देते थे।

सन् 1983 में मेरी दीक्षा के उपरांत गुरुदेव रामामंडी पधारे। वहाँ श्री सत्यप्रकाश जी महाराज को बुखार हो गया। अगले दिन विहार करना तय था। सभी संतों ने अपने उपकरण कंधों पर रख लिए परन्तु गुरुदेव ने कहा कि मुनि जी का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। अतः मेरा यहाँ

रुकना आवश्यक है। सभी संत भी अपना सामान पुन: खोल कर वहीं रुक गए। जब मुनि जी स्वस्थ हुए तभी गुरुदेव ने विहार किया। गुरुदेव में सेवा का अतुलनीय गुण था। वे अपने शिष्यों का पुत्र की भाँति ध्यान रखते थे।

सन् 1984 में गुरुदेव का रोहतक से गोहाना होते हुए बुटाणा में पदार्पण हुआ। उधर रोहतक से अचानक समाचार आया कि श्री भंडारी जी महाराज का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। उन्होंने गुरुदेव को याद किया है। समाचार प्राप्त होते ही गुरुदेव ने मुझे व पूज्य जय मुनि जी महाराज को मोरखी से वापस बुलवा लिया। गुरुदेव भी रोहतक से बहुत आगे निकल आए थे। घुटनों में पीड़ा भी थी। परन्तु सेवा का प्रसंग उपस्थित होने पर वे तुरंत रोहतक वापस लौट आए। पूज्य भंडारी जी महाराज की सेवा करना वे अपना कर्त्तव्य समझते थे। 1985 के रोहतक चातुर्मास में गुरुदेव ने यह नियम बनाया कि मैं प्रतिक्रमण के पश्चात् श्री भंडारी जी महाराज की वैयावृत्य करूँगा। इतने वरिष्ठ संत परन्तु गुरुदेव सेवा कार्य बालक की भाँति करते थे। पूज्य भंडारी जी महाराज एवं लघु संत गुरुदेव को रोकने का प्रयास करते परन्तु गुरुदेव स्वयं अस्वस्थ होते हुए भी सेवा कार्य में सदा अग्रणी रहते थे।



सन् 1994 में श्री वकील मुनि जी महाराज को हिसार में हार्ट अटैक आया। संयोगवश हिसार में गुरुदेव के संत भी विराजमान थे। समाचार मिलते ही गुरुदेव ने अपने संतों को उनकी सेवा में भेजा और यह निर्देश भी दिया यदि सेवा के लक्ष्य से आपको मास कल्प से अधिक स्थिरवास करना पड़े तो भी आप रुक सकते हैं। गुरुदेव की उदारता देखिए , वे राजस्थान से आए हुए संतों को भी यथासंभव सहायता देने के लिए तत्पर रहते थे। 1994 में जब पूज्य शांति चंद्र जी महाराज अस्वस्थ हुए तो गुरुदेव ने वहाँ भी संतों को सेवार्थ प्रेषित किया। गुरुदेव ने ग्लान सेवा को सदैव महत्त्व दिया।

सन् 1994 के जम्मू चातुर्मास के दौरान श्री सुंदर मुनि जी महाराज के हाथ में कुछ विशेष तकलीफ हुई तो डाक्टर ने आप्रेशन की बात कही। उस समय गुरुदेव ने सुनाम में विराजित अपने दो संतों को जम्मू भेजा जो 13 दिन में लगभग 413 किलोमीटर की दीर्घ यात्रा तय कर वहाँ पहुंचे। 1998 में पूज्य विनयचंद जी महाराज को मारणांतिक कष्ट उपस्थित हुआ। गुरुदेव ने उस समय भी उनके स्वास्थ्य की मंगल कामना करते हुए वहाँ मुनिराजों को सेवा के लिए भेजा।

सेवा करना तो गुरुदेव के जीवन का एक मिशन बन चुका था। जब 1973 में पूज्य जय मुनि जी महाराज का दीक्षा महोत्सव था, उस समय भी गुरुदेव 13 मुनिराजों की गोचरी अकेले ही लेकर आए। गुरुदेव ने सेवा कार्य में कभी चूक नहीं की। 1983 में बरनाला चातुर्मास में मैंने देखा, गुरुदेव आहार के पश्चात पात्रे पोंछने के लिए कपड़ा मांगने लगते। संत यदि पात्र साफ करने का कपड़ा नहीं देते या गुरुदेव से अनुरोध करते कि यह कार्य हम कर लेंगे तो गुरुदेव कहते फिर मेरा सायंकाल के आहार का त्याग। हमें विवश होकर उन्हें पात्र पोंछने का वस्त्र देना पड़ता।

पूज्य भगवान श्री राम प्रसाद जी महाराज ने एक स्थान पर लिखा कि मेरे गुरुभाई मेरे से भी कहीं अधिक भाग्यवान थे क्योंकि उन्हें पूज्य दादा गुरुदेव श्री नाथूलाल जी महाराज के दर्शनों एवं सेवा का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनके जीवन के अंतिम क्षणों में सेवा कर मेरे गुरुभाई ने अपने भंडार भर लिए।

**सेवा की साक्षात मूर्ति को शत्-शत् प्रणाम।**

गुरुदेव वैरागियों को
स्वाध्याय करने पर
जोर देते थे

# 26 | वैरागी और गुरुदेव

**वैराग्य** का शाब्दिक अर्थ है उन वस्तुओं व कर्मों से विरक्त होना जिनमें सांसारिक लोग अनुरक्त रहते हैं। अर्थात् स्वयं को राग से विलग कर लेना। जीवन में आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में निवास करने के लिए वैराग्य साधु के साथ-साथ गृहस्थ के लिए भी उपयोगी है। वास्तव में वैराग्य की प्रथम सीढ़ी का आरोहण साधक गृहस्थ जीवन में रहते हुए ही करता है। जिन साधकों में इसी भावना को दृढ़तम बनाकर संयम के प्रति अनुराग उत्पन्न होता है। उन्हें समाज में वैरागी कहा जाता है। वैराग्यकाल साधु बनने का पूर्वाभ्यास है। जैन परम्परा में किसी आत्मा को संयम के पथ पर आरूढ़ करने से पूर्व उसे संयम का पूर्ण ज्ञान करवाना वैराग्यकाल कहा जाता है।



पंजाब परम्परा में एक वैरागी का काल मान क्या है? उसके वस्त्र कैसे हों? उसके नियम, उपनियम क्या हों? इस विषय में कोई स्पष्ट निर्देश नहीं है। परन्तु गुरुदेव ने इस विषय पर भी गहन चिंतन किया क्योंकि जिस मार्ग पर अग्रसर होने के लिए कोई आत्मा माँ-बाप व गृहस्थ जीवन का त्याग करती है तो उसकी आध्यात्मिक उन्नति का उत्तरदायित्व गुरु का होता है। अत: गुरुदेव इस संबंध में भी सजग थे।

जब गुरुदेव के चरणों में दीक्षाओं का क्रम प्रारंभ हुआ तो गुरुदेव ने इस विषयक एक समाचारी निर्धारित की। जैसे वैरागी को साधु बनने से पूर्व योग्यतानुसार गुरु चरणों में रहना अनिवार्य है। श्वेत वस्त्रों के अंतर्गत चोलपट्टा ही धारण करेंगे। सादगीपूर्ण आहार-विहार होगा। व्यवहारिक (स्कूल) शिक्षा छोड़कर धर्म-शिक्षा में पारंगत बनेंगे। मुख वस्त्रिका अनिवार्य होगी। संपूर्ण दिवस तप-त्याग, ज्ञान-ध्यान व वैराग्य भाव में ही व्यतीत करेंगे। इस कसौटी पर खरा उतरने वाला साधक ही संयम के सिंहद्वार में प्रवेश कर सकता है। गुरुदेव की इस व्यवस्था के कारण ही संघ के सभी संत योग्य एवं जिनशासन की प्रभावना करने वाले बनें।

सन् 1940 में गुरुदेव जब स्वयं वैरागी बनकर गुरु चरणों में आए उस समय उनके वैराग्यमय जीवन व सादगी को देखकर सरलात्मा पूज्य श्री नाथूलाल जी महाराज बहुत प्रसन्न हुए। उनके विनय को देखकर गुरुदेव ने स्वयं उन्हें प्रशिक्षण देना प्रारंभ किया। वैरागी बनाना सरल है परन्तु उन्हें साधुत्व के ढांचे में ढालना एवं समाज व आत्मकल्याण के पथ पर अग्रसर करना कठिन कार्य है। गुरु बनना भी अत्यंत उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है।

गुरुदेव अपने शिष्यों की योग्यता को उभारने का पूर्ण ध्यान रखते थे। सन् 1979 में सोनीपत में दो नवदीक्षित मुनियों के आध्यात्मिक प्रशिक्षण हेतु शास्त्रों व आत्मानुभव से गुरुदेव ने 28 सुवाक्य लिखें। जो साधक को संयम व आत्म विकास की भावना से ओतप्रोत करने में सहायक है। उसके कुछ अंश मैं यहां प्रस्तुत करना चाहूँगा। (1) प्रात:काल उठते ही नवकार मंत्र स्मरण करना। (2) प्रतिक्रमण करते समय मौन रहना। (3) गुरु से कोई बात गुप्त नहीं रखनी। (4) वस्त्र के संग्रह की प्रवृत्ति नहीं रखनी। (5) किसी वस्तु को मेरी कहकर नहीं बुलाना, मात्र इतना ही कहना ये मेरी निश्राय में है। (6) कभी गृहस्थ को तू से संबोधित नहीं करना। गुरुदेव की ये शिक्षाएं साधक के आत्मोन्नमुखी चिंतन को नई दिशा देती थी।

सन् 1973 में गुरुदेव ने पूज्य जय मुनि जी महाराज की दीक्षा एवं शेष तीन वैरागियों के भाषण स्वयं तैयार किए। गुरुदेव का दीक्षा पर लेख लिखने का उद्देश्य साधक में वैराग्य का बीज वपन करना था।

मैंने वैराग्यकाल में एक चातुर्मास नरवाना में किया। उस समय गुरुदेव जींद में विराजमान थे। मैं अक्सर गुरु दर्शनों हेतु जींद से आता रहता था। एक दिन गुरुदेव ने मुझसे पूछा क्या आज ट्रेन में भीड़ अधिक थी? मैंने स्वीकृति में सिर हिलाया। गुरुदेव ने फिर पूछा–जिस सीट पर तुम बैठे थे वहाँ एक पचास वर्षीय बहन भी बैठी थी? मुझे सुनकर आश्चर्य हुआ। मैंने कहाँ, हाँ, गुरुदेव! बिल्कुल सत्य है। गुरुदेव ने मुझे नसीहत देते हुए कहा ट्रेन में भले कितनी ही भीड़ हो परन्तु कभी किसी बहन के बराबर वाली सीट पर नहीं बैठना। चाहे तुम्हें खड़े होकर सफर करना पड़े। गुरुदेव इस प्रकार शिष्यों को हित शिक्षा देते हुए सुसंस्कारों का बीज वपन करते रहते थे।

मैंने एक बार गुरुदेव से प्रश्न किया कि आप कौन–सी गाथाओं का स्वाध्याय करते हैं। गुरुदेव ने फरमाया–यह महत्त्वपूर्ण नहीं कि मैं क्या स्वाध्याय करता हूँ? अपितु विशेष यह है कि किस श्रद्धा व विश्वास के साथ स्वाध्याय करता हूँ। इस प्रकार गुरुदेव हमारे विवेक को जागृत करत थे।

बरनाला जैन स्थानक में चारदीवारी के कारण गर्मी व घबराहट का वातावरण था। तब किसी वैरागी ने कहा कि आज तो हवा बिल्कुल बंद है। गुरुदेव ने तुरंत संशोधन करते हुए कहा कि यह वाक्य ठीक नहीं है यदि हवा बंद हो तो हमारे जीवित रहने की संभावना ही नहीं है। हाँ, यह कह सकते हैं कि आज हवा कम है।

गुरुदेव वैरागी को संयम की कसौटी पर कसते, उसकी जांच–पड़ताल करते, अपने सान्निध्य में रखकर उसकी परीक्षा भी लेते थे। आगम ज्ञान एवं जैनत्व की साधना का बोध देकर दीक्षा के मार्ग पर प्रवृत्त करते थे।

सन् 1963 में पूज्य वाचस्पति गुरुदेव ने सुदर्शन मुनि को फरमाया कि हरियाणा की ओर मुख करना। वहाँ तुम्हारी शिष्य संपदा का खूब विकास होगा। और गुरुदेव को सर्वाधिक वैरागी हरियाणा में ही मिले। इसके पश्चात क्रमश: यू.पी., पंजाब व दिल्ली का नंबर आता है।

जब मैं वैराग्यकाल में गुरुदेव के चरणों में आया। तब मैं पंजाब का प्रथम वैरागी था। मुझे देखकर गुरुदेव परम प्रसन्न हुए। परिवार ने मुझे काफी समय तक आज्ञा नहीं दी। परन्तु गुरु कृपा से मुझे संयम रत्न प्राप्त हो ही गया।

गुरुदेव ने मुझे सामायिक, प्रतिक्रमण, पच्चीस बोल, दशवैकालिक सूत्र का अध्ययन करवाया। संस्कृत में मैंने शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की। गुरुदेव अपने शिष्यों को योग्य बनाने का भरसक प्रयास करते थे।

गुरुदेव ने पग–पग पर मेरा मार्गदर्शन किया। जीवन को संस्कारों से सजाया। अनगढ़ पत्थर को प्रतिमा का रूप दिया है। 1982 में सरदूलगढ़ में मुझ से कुछ त्रुटि हो गई थी। जिसके लिए गुरुदेव ने मुझे फटकार लगाई और फिर दुलार भी किया। गुरुदेव में ममता व अनुशासन का अद्भुत संगम था।

मुझे स्मरण है कि जब मैं वैराग्यावस्था में नरवाना आया तो गुरुदेव ने मुझे कई नियम दिए जैसे चौविहार, हरी सब्जी का त्याग, चप्पल व रंगदार वस्त्रों का त्याग इत्यादि पन्द्रह से बीस प्रत्याख्यान करवाए। यह गुरुदेव की ही महान अनुकम्पा थी कि मेरा जीवन त्याग व वैराग्य से सुसज्जित हुआ। उन्होंने ही मेरे जीवन को तराशा, तपाया, सजाया व मूर्ति का आकार दिया।

गुरुदेव वैरागी के जीवन का विकास करने के लिए कटिबद्ध रहते थे। वैरागी का सर्वतोन्नमुखी विकास करना ही गुरुदेव के जीवन का लक्ष्य था।

**नमन है ऐसे महान शिल्पकार को।**

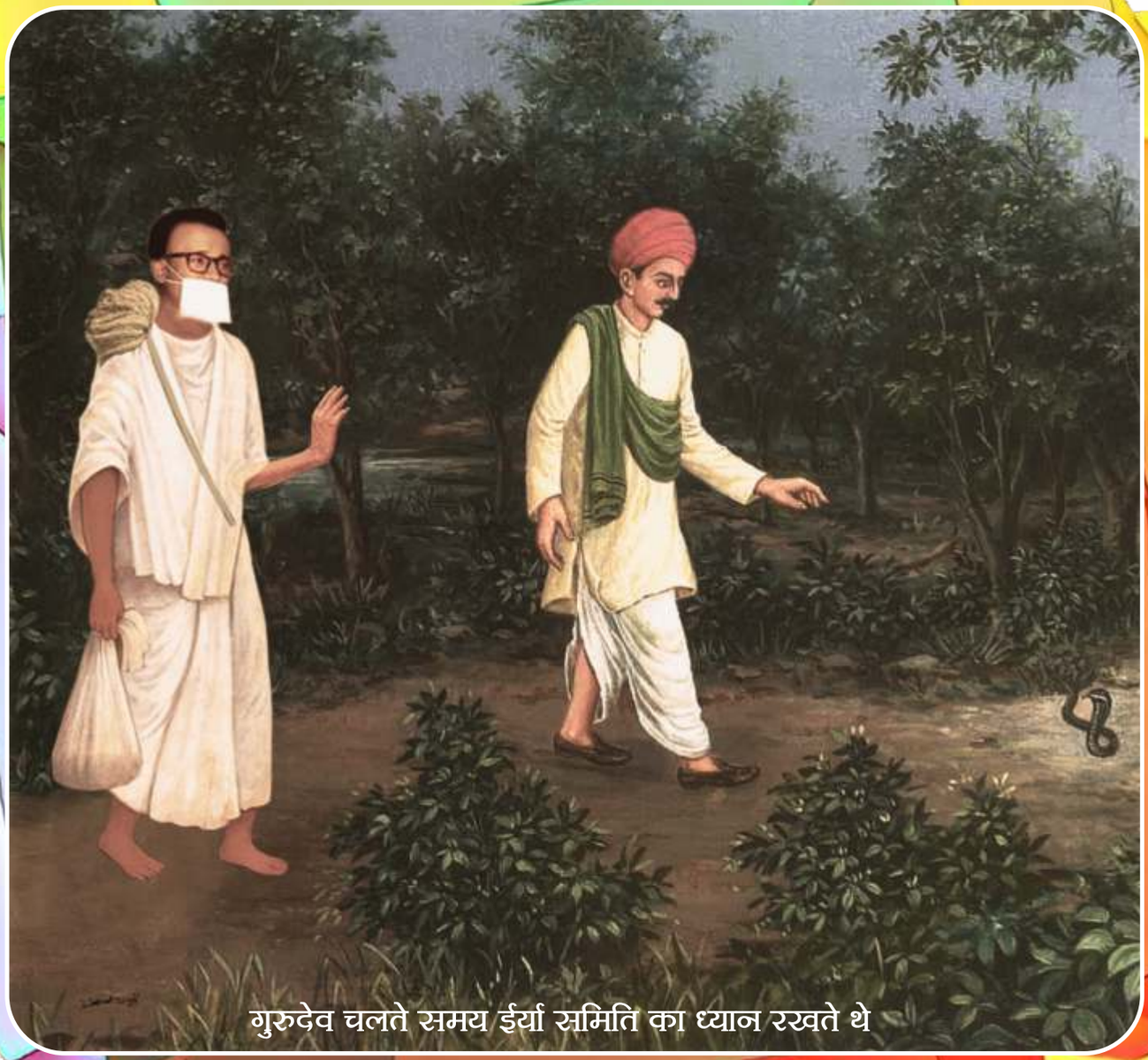

गुरुदेव चलते समय ईर्या समिति का ध्यान रखते थे

# 27 | ईर्या समिति और गुरुदेव

**आगमों** में अष्ट प्रवचन माता का विस्तृत उल्लेख है। यहाँ पाँच समिति व तीन गुप्ति को मातृ स्वरूप की उपमा दी गई है। जैसे माँ अपने बालक के शारीरिक स्वास्थ्य का ध्यान रखती है। इनका अनुपालन मुनि साधना का विशिष्ट अंग है। इसके अभाव में श्रामण्य की कल्पना निरर्थक है। इन पाँच समितियों में प्रथम अंग है ईर्या समिति। ईर्या समिति का अर्थ है निरीक्षण करते हुए विवेक पूर्वक गमन करना। आगमानुसार जैन मुनि के लिए साढ़े तीन हाथ आगे की भूमि को देखकर चलने का विधान है। जिससे मार्ग में चल रहे जीवों की यतना हो सके। समिति गुप्ति की भावपूर्वक आराधना करने वाला साधक अध्यात्म की ऊँचाई का स्पर्श कर लेता है।

गुरुदेव साध्य को लक्ष्य बनाकर संयम के पथ पर अग्रसर होने वाले महान साधक थे। अष्ट प्रवचन माता के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी। ईर्या समिति का विवेकपूर्ण पालन देखकर तो मुनिवृंद भी आश्चर्य चकित रह जाता था।

सन् 1981 में मैं विरक्त अवस्था में बुटाणा में गुरुदेव के चरणों में आया। यह वैराग्यकाल में गुरुदेव के प्रथम दर्शन थे। गुरुदेव के स्नेहिल व्यक्तित्व के दर्शन कर मैं भाव विभोर हो उठा। मैंने देखा जब गुरुदेव पाट से नीचे उतरने लगे तो सर्वप्रथम ओघे से भूमि का प्रमार्जन किया तत्पश्चात पैर भूमि पर टिकाया। गुरुदेव के अद्‌भुत सूक्ष्म विवेक को देखकर मैं आश्चर्यचकित था। ईर्या समिति के प्रति गुरुदेव का विवेक दर्शनीय था। उसी दिवस पर्यन्त मैंने इस क्रिया को अपने जीवन का अभिन्न अंग बना लिया। आज भी अपने संघस्थ मुनिराजों को ईर्या समिति के सम्यक् पालन की प्रेरणा देता हूँ क्योंकि संस्कारों को गुरुदेव ने हममें बहुत गहराई से आरोपित किया है।

सामान्य जन महापुरुषों के जीवन से चमत्कारों की अपेक्षा करते हैं। परन्तु मेरी दृष्टि जब-जब भी गुरुदेव के चरणों में गई। मैंने सदैव उनकी चमत्कारिक संयम प्रणाली का प्रेक्षण किया था। मैंने गुरुदेव श्री के जीवन को प्रत्येक दृष्टिकोण से निहारा। गुरुदेव के जीवन का प्रत्येक पहलू संयम संपदा से संपुष्ट था। जीवन के प्रत्येक आयाम में संयम व विवेक की अद्‌भुत झलक थी।



24 अप्रैल 1983 में मेरी अपनी जन्मभूमि को ही दीक्षा स्थली बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। दीक्षा के उपरांत मेरा गुरुदेव के संग प्रथम विहार रामामंडी की ओर हुआ। गुरुदेव गंधहस्ती की तरह अपने निर्धारित पथ पर अग्रसर थे। मैं इस दृश्य को भक्तिपूर्ण नेत्रों से निहार रहा था। घुटनों में पीड़ा के कारण गुरुदेव छोटे-छोटे पड़ाव में विहार कर रहे थे। विहार यात्रा में मैं व श्री नरेन्द्र मुनि जी सेवारत थे। गुरुदेव मेरे कंधे का आलंबन लेकर एक-एक पग मार्ग पर आगे बढ़ा रहे थे। गुरुदेव के गंभीर मुख मंडल को देखकर मेरा साहस नहीं हुआ कि मैं कोई वार्तालाप प्रारंभ कर सकूँ। मार्ग में जब गुरुदेव विश्राम कर लेते तो स्नेहिल मुझसे पूछते विहार में साता है। मैं भी मौन भाव से मुस्करा कर अपने भाव अभिव्यक्त कर देता। गुरुदेव के संग विहार-यात्रा में कुछ श्रावक भी चल रहे थे। परन्तु गुरुदेव अधिकांशत: मौन भाव से अग्रिम

भूमि को निहारते हुए चल रहे थे। गुरुदेवश्री के ईर्या समिति से संबंधित सूक्ष्म विवेक को देखकर मैं चिंतन करने लगा कि पूज्य श्री मयाराम जी महाराज, गुरुदेव श्री छोटेलाल जी महाराज एवं बहुसूत्री श्री नाथुलाल जी महाराज भी संभवत: इस प्रकार उच्च भावों में ईर्या समिति का पालन करते होंगे। उन भव्य महान आत्माओं की झलक मुझे गुरुदेव में प्रतिबिम्बित हो रही थी। मेरा मन पूर्णत: तृप्त था।

सन् 1983 के बरनाला चातुर्मास में जब मुझे बाहर भूमि के लिए गुरुदेव के संग जाने का अवसर प्राप्त हुआ। तब मैंने देखा गुरुदेव प्रासुक भूमि (हरी घास व कच्चे जल से रहित)पर चलने का विशेष विवेक रखते थे। मार्ग में मुझे भी ईर्या समिति से संबंधित निर्देश देते थे। मैं अपने भाग्य की सराहना करता हूँ जो मुझे गुरुदेव की परमोत्कृष्ट ईर्या समिति के द्रष्टा बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आप विचार कीजिए जब आप का हृदय इन पंक्तियों को पढ़कर श्रद्धा से सराबोर हो रहा है तो फिर मुझे तो इन पावन क्षणों को साक्षात देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मैं प्रतिपल गुरुदेव की संयम प्रणाली को अनिर्निमेष नेत्र से निहारता रहता।



1987 में जब गुरुदेव का पूज्य भंडारी जी महाराज के साथ चातुर्मास था। उन दिनों गुरुदेव रात्रि विश्राम हेतु भवन के ऊपरी तल पर पधारते। प्रात: काल जब सूर्योदय से पूर्व सीढ़ियों से नीचे उतरते तो एक-एक सीढ़ी की प्रतिलेखना करते हुए नीचे आते। गुरुदेव के इस विवेकपूर्ण व्यवहार को देखकर रोम-रोम श्रद्धा से विनत हो जाता है। आयु के इस पड़ाव में भी अद्‌भुत सजगता थी। मेरा जीवन धन्य हो गया। जो मैंने ऐसे महान गुरुदेव के चरणों में रहकर संयम के संस्कार प्राप्त किए। गुरुदेव का जीवन एक चलता फिरता शिक्षालय था। उनके जीवन की प्रत्येक क्रिया में शिक्षा का रहस्य समाहित था। उनकी साधना अद्‌भुत थी। प्रतिपल संयम के प्रति जागरूक थे।

गुरुदेव 1982 में चातुर्मास हेतु जींद में विराजमान थे। उस समय गुरुदेव के चरणों में मेरे साथ कई वैरागी अध्ययनरत थे। एक दिन हम भोजन के उपरांत शीघ्रता से स्थानक की सीढ़ियां चढ़ रहे थे। गुरुदेव ने हमारी इस क्रिया को देखा जैसे ही हम गुरु चरणों में वंदन हेतु आए तो गुरुदेव ने कहा-सीढ़ी चढ़ते समय चतुर्थ खंड के एक कोने में चींटियां निकल रही है। जिस कारण समाज ने उस सुराग पर हल्दी का छिड़काव किया है। क्या किसी वैरागी का उस ओर ध्यान गया? गुरुदेव का प्रश्न सुन सभी वैरागी शर्म पूर्वक भूमि की ओर देखने लगे। गुरुदेव ने समझाते हुए कहा-आगमकार के अनुसार अयतना के मुख्यत: 20 कारण वर्णित है। साधक को निर्देश देते हुए भगवान फरमाते हैं **'दव दवस्स न गच्छेज्जा।'** हड़बड़ाहट से चलना भी पाप है। सभी वैरागी उस सीढ़ी को देखने पुन: नीचे गए। गुरुदेव की जागरूकता देखकर सभी का हृदय श्रद्धा से झुक गया। सभी वैरागियों ने प्रण किया *'अब हम नीचे देखते हुए गमनागमन की क्रिया करेंगे।'*

गुरुदेव ने प्रत्येक शिष्य को संयम मार्ग पर स्थिर किया। आध्यात्मिक विकास की प्रेरणा दी। भेदभाव से रहित सभी को एक समान निर्देश दिए। यह तो शिष्य की योग्यता पर निर्भर है कि वह कितना ग्रहण कर सकता है? गुरुदेव ने जींद चातुर्मास में ही सभी वैरागियों को पाँच समिति तीन गुप्ति के थोकड़े के मर्म को समझाया। और उसे कंठस्थ करने की प्रेरणा दी। गुरुदेन ने एक कुशल बागवां की भाँति नन्हें पौधों का सिंचन किया। धूप-छाँव का ध्यान रखा ताकि वे भविष्य में वट वृक्ष बन सके।

गुरुदेव का ईर्या समिति से संबंधित विवेक अद्‌भुत था। आजीवन उन्होंने अपने जीवन को आगमानुसार जीने का प्रयास किया। गुरुदेव गति करते समय नपे तुले व कोमल कदमों का उपयोग करते थे। जिससे अनजाने भी किसी जीव की विराधना न हो जाए।

**ऐसे महान संयमी गुरुदेव को बारंबार वंदन!**

दोष रहित भाषा अर्थात
मधुर, कोमल, सत्य, हितकर, न्याय के
अनुकूल वचनों द्वारा
भाषा समिति का पालन करते
थे गुरुदेव

# 28 | भाषा समिति और गुरुदेव

**आगम** के विरुद्ध पूर्वापर संबंध से रहित, निष्ठुर, कर्कश, मर्मछेदक आदि दोषों से रहित भाषण करना भाषा समिति है। अर्थात मधुर, कोमल, सत्य हितकर, न्याय के अनुकूल वचन ही भाषा समिति का हार्द है। आगमों में वर्णन आता है।

**'सच्चेसु वा अणवज्जं वयंति।'**

भगवन फरमाते हैं कि 'साधक उन्हीं वचनों का उपयोग करे जो निरवद्य हो।' गुरुदेव एक उच्च कुल में जन्म लेने वाले सभ्य साधक थे। उनके मुख से दूसरों के प्रति सदैव सम्मान सूचक शब्द ही निकलते थे। मुझे गुरु चरणों में कई वर्षों तक रहने का सौभाग्य मिला। मैंने कभी भी गुरुदेव के मुख से निम्नस्तरीय भाषा का एक शब्द भी नहीं सुना। विकट से विकट परिस्थिति में उनका भाषा विवेक अतुलनीय था।



सन् 1968 में गुरुदेव चातुर्मास हेतु जयपुर में विराजमान थे। राजस्थान में किसी व्यक्ति के नाम के पीछे साहब लगाने का प्रचलन है। उस समय जयपुर के एक श्रावक गुमानमल जी गुरुदेव से आकर कहने लगे कि गुरुदेव हमारी लोकभाषा में साहब का सा. ही शेष रह गया परन्तु जब आप श्रावक को श्रावक साहब बोलते हैं तो मन बहुत प्रसन्न होता है। आपकी भाषा शैली अति उत्तम है। गुरुदेव का भाषा शैली व भोजन शैली दोनों पर अद्‌भुत नियंत्रण था। श्रोतागण! गुरुदेव की भाषा शैली से तो भली-भाँति परिचित थे पर गुरुदेव के भोजन विवेक से तो मुझ जैसे मुनिराज ही परिचित थे।

गुरुदेव का जन्म एक कुलीन कुल में हुआ। जिसके सदस्य संस्कारी व शिक्षित थे। गुरुदेव के पिता एक विख्यात वकील थे। उस युग पर दृष्टिपात करे तो ज्ञात होता है कि उस युग में मुनियों के पिता इतने शिक्षित नहीं होते थे। गुरुदेव के पिता वर्षोपूर्व गांव से आकर शहर में निवास करने लगे थे। परिवार से गुरुदेव को भाषा के संस्कार मिले। बुजुर्गों का सम्मान व सभी से मित्रभाषिता का गुण गुरुदेव को माता-पिता से नैसर्गिक रूप से प्राप्त हुआ था।

गुरुदेव ने कभी भी किसी को 'ओए' शब्द से संबोधित नहीं किया। गुरुदेव अक्सर फरमाते थे कि मुनि की भाषा श्रावक से सौ गुणा संशोधित होनी चाहिए। मुनि के वचन ही मुनि के व्यक्तित्व की पहचान बनते है। मैंने गुरुदेव के जीवन को बहुत समीप से देखा है। उन्होंने कभी भी भाषा समिति की लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन नहीं किया। न ही कभी उनके वचनों में उद्दण्डता व उच्छृंखलता की झलक दिखाई दी। एक बार दिल्ली में श्रावक आनंदराज जी सुराणा किसी विषय को लेकर तर्क-वितर्क करने लगे। उस मौके गुरुदेव ने अपना संतुलन नहीं गंवाया। वे प्रत्येक प्रश्न का सटीक उत्तर देते रहे। जहाँ विचार भिन्नता हो, गहरे मतभेद उभर आए हो ऐसी विपरीत परिस्थितियों में भी भाषा का संयम रखना अत्यंत कठिन होता है। उस समय भी गुरुदेव ने अपनी वाणी के माधुर्य का त्याग नहीं किया। गुरुदेव सटीक एवं आगमानुकूल वचनों का उपयोग करते रहे।

अगर कोई भी वस्तु (कॉपी, पैन इत्यादि) उनके पास होती तो उन्होंने कभी स्वामित्व पूर्ण भाषा का उपयोग नहीं किया। उनके मुख से सदा यही स्वर निकला यह वस्तु मेरी निश्राय में है। अपनी महत्त्वाकांक्षा से ग्रसित होकर विजय मुनि जी ने गुरुदेव के विरोध में एक पत्र प्रकाशित किया। गुरुदेव उस पत्र को शांतभाव से पढ़ रहे थे। मैंने पूछा- गुरुदेव यह क्या है? गुरुदेव सहज भाव से बोले-विजयमुनि जी का पत्र

है। आप विचार कीजिए। गुरुदेव के कितने उत्तम संस्कार होंगे। दूसरे व्यक्ति की भाषा का स्तर भले कितना ही निम्न क्यों न हो? परन्तु आपने अपने हृदय एवं भाषा को कलुषित नहीं होने दिया। गुरुदेव ने ऐसा नहीं कहा–जाट का पत्र है।

गुरुदेव की यही शिक्षा थी कि हम मुक्ति पथ के पथिक है। हमें अपनी वाणी के विवेक को जागृत रखना है। हम पट्टे पर प्रवचन देने के लिए अथवा लोक–व्यवहार के लिए ही मुनि नहीं है। हममें प्रतिक्षण साधुत्व का भाव होना चाहिए। गुरुदेव के जीवन में कोमलता थी। भाषा में माधुर्य था। अपने गुरुजनों के प्रति गुरुदेव का अनुनय–विनय का भाव था तो छोटे गुरु भाईयों को भी कभी कम सम्मान नहीं दिया। उन्होंने तपस्वी जी महाराज को दीक्षा के प्रथम दिन ही कहा–आप तो हमारे पिता तुल्य है। यह गुरुदेव के सभ्य संस्कार थे। अन्यथा स्वयं से तीन वर्ष लघु पर्याय मुनि को पिता का संबोधन कौन दे सकता है?

गुरुदेव का अपनी भाषा पर पूर्ण नियंत्रण था। शब्दों का चयन संतुलित एवं चित्ताकर्षक था। जब गुरुदेव बोलना आरंभ करते तो मानों फूल झर रहे हो। उस मौके श्रोता अभिभूत होकर नतमस्तक हो जाते हैं। गुरुदेव की भाषा भी उनके जीवन की भाँति अनासक्त थी। उन्होंने कभी आसक्तिपूर्ण अथवा आधिकारयुक्त भाषा का उच्चारण नहीं किया। कोई भव्य स्थानक भवन होता तो कहते आरंभ–समारंभ से बना है। किसी संबंध के विषय में पूछते तो कहते यह मेरे संसारी माता–पिता है।

गुरुदेव की वाणी का विवेक इतना अद्‌भुत था जैसे भाषा विवेक की औषधी का उन्होंने जन्म लेते ही सेवन कर लिया हो। गुरुदेव की दीक्षा का प्रथम दिन था। वाचस्पति गुरुदेव ने आज्ञा दी–सुदर्शन मुनि! योगीप्रवर पूज्य श्री बनवारी लाल जी महाराज आदि गुरुभगंवतों को ससन्मान लेकर आओ। गुरुदेव ने शास्त्रीय भाषा में 'तहत्ति गुरुदेव' कहते हुए आज्ञा का पालन किया। गुरुदेव ने आज्ञा पालन में आनाकानी अथवा थकान इत्यादि कारण का बहाना नहीं बनाया। मैंने देखा कि यदि किसी आवश्यक कार्य हेतु गुरुदेव को किसी मुनि को जगाना होता तो अत्यंत धीमी आवाज़ में बोलते। जिससे अन्य मुनियों को व्यवधान उत्पन्न न हो। मैंने गुरुदेव को आवेशपूर्वक या उच्चस्वर में बात करते नहीं देखा। गुरुदेव मांगलिक सुनाने से पूर्व कई शास्त्रीय गाथाओं का उच्चारण करते। मांगलिक में भी उनका स्वर मधुर एवं प्रभावशाली होता था।

गुरुदेव अपने संतों की भाषा विषयक त्रुटियों को दूर करने का भी यथासंभव प्रयास करते रहते थे। ग्रीष्म ऋतु में कभी नीरवता का वातावरण होता तो संत गर्मी से घुटन का अनुभव करते हुए यह बोल देते कि आज तो हवा बिल्कुल बंद है। यह सुनकर गुरुदेव ने भाषा को संशोधित करते हुए कहा–ऐसा कहो कि हवा कम है। क्योंकि वायु के अभाव में तो श्वास लेना भी असंभव है। यदि कोई दर्शनार्थी कक्ष के बाहर खड़ा होता तो संत सहज ही बोल देते– गुरुदेव दो मिनट में आ रहे हैं आप बैठिए। गुरुदेव उस अवसर पर भी संतों को समझाते कि संत को निश्चयकारी व सावद्य भाषा उपयोग वर्जनीय है। गुरुदेव फरमाते– आपको ऐसा बोलना चाहिए। गुरुदेव के कुछ समय में दर्शन होंगे। आप दया पालो। इस प्रकार गुरुदेव समय–समय पर भाषा शुद्धि से संबधित निर्देश देते रहते।

गुरुदेव रामामंडी में विराजमान थे। गोचरी जाने से पूर्व मुनिश्री ने पृच्छा की। आज सायं कालीन गोचरी में कितनी रोटी लाए। मैंने कहा– चार रोटी लेते आना। गुरुदेव ने हमारी बाते सुन ली। पश्चात् एकांत में हमें समझाया। गृहस्थ के समक्ष आहार संबंधी वार्तालाप नहीं करना चाहिए। गोचरी के विषय में कोड़ भाषा का उपयोग करे तो बेहतर है। यदि समयानुसार आवश्यक बात हो तो अत्यंत धीमे स्वर में कान में बात करें। जिससे आपको आहार का दोष न लगे और भाषा समिति का भी विवेक हो। इस प्रकार गुरुदेव भाषा के प्रति स्वयं सजग थे और अपने संतों को भी सजग करते रहते।

**ऐसे महान संयमी व्यक्तित्व को बारंबार नमन!**

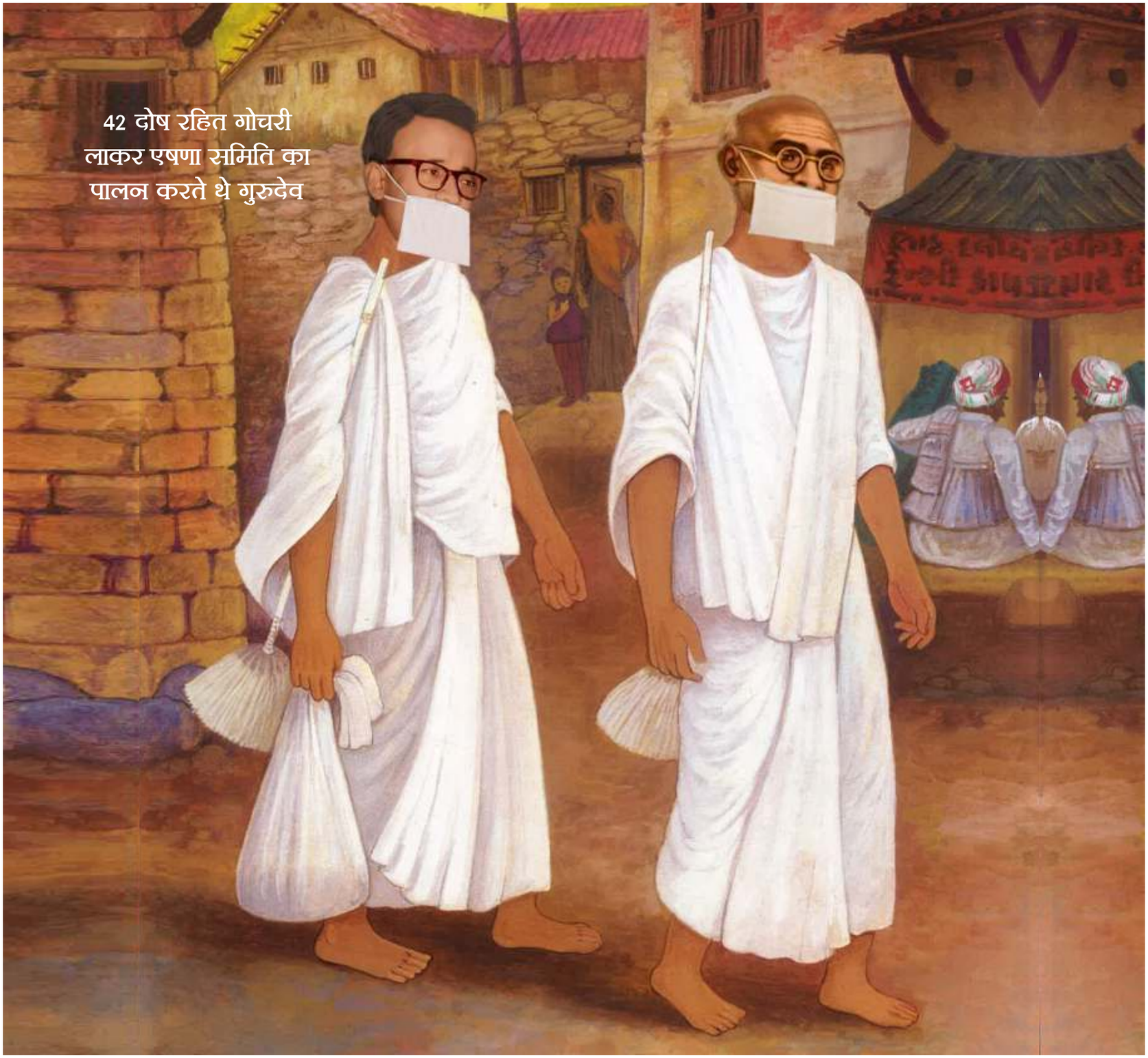
42 दोष रहित गोचरी
लाकर एषणा समिति का
पालन करते थे गुरुदेव

# 29 | एषणा समिति और गुरुदेव

**रत्नत्रय** के धारक मुनिराज को शरीर रूपी गाड़ी को समाधि महल तक ले जाने के लिए जठराग्नि की दाह को शमन करने के लिए औषधि की भांति अथवा गाड़ी में ईंधन की तरह अन्नादि आहार को बिना स्वाद ग्रहण करना एषणा समिति है। आगमों में 42 दोष टालकर भिक्षा आदि में सम्यक् प्रवृत्ति करने को एषणा समिति कहते हैं। एषणा समिति के प्रति सजगता मुनि जीवन की साधना का मुख्य हार्द है। क्योंकि रसविजय प्राप्त करने वाला साधक ही मुक्ति-महल की यात्रा को पूर्ण कर सकता है।

गुरुदेव आहार संबंधि इस रहस्य से भली-भांति परिचित थे। यह गुरुदेव का प्रबल भाग्य था, जहां उन्हें संयम स्वीकार करने से पूर्व ही जिह्वा रस संयम के संस्कार प्राप्त हुए। दीक्षा से पूर्व जब गुरुदेव पटियाला में पूज्य नाथूलाल जी महाराज के चरणों में आए तो उन्होंने एक आध्यात्मिक पहेली सुझाते हुए पूछा-'न सराहना, न विसराना' यह वाक्य कौन से सिद्धांत को उपमित करताहै। गुरुदेव ने तनिक विचार करते हुए कहा-यह उक्ति भिक्षाचरी द्वारा लाए गए आहार पर प्रयुक्त होती है। यदि भिक्षा में मनोनुकूल व्यंजन मिले तो प्रशंसा नहीं, यदि अरुचिकर आहार प्राप्त हो तो निंदा नहीं। लघुवय बालक के मुख से सारगर्भित बात सुनकर गुरुदेव अत्यंत प्रसन्न हुए। गुरुदेव ने उसी दिन आहार संबंधित 42 दोष कंठस्थ कर सुना दिए।

गुरुदेव एषणा समिति के प्रति पूर्णतया सजग थे। गुरुदेव पापभीरू व सुलभबोधि आत्मा थे। वे इस विषय के प्रति सावधान थे कि संयम प्रणाली में कभी दोष न लगे। 18 फरवरी 1942 को बृहत् दीक्षा के उपरांत वाचस्पति गुरुदेव ने गुरुदेव को तीन बातों की शिक्षा देते हुए कहा था कि सुदर्शन मुनि! तुमने संयम ग्रहण किया है। जिसका एकमात्र लक्ष्य पापमुक्त निर्मल जीवन व्यतीत करना है। कभी भी रसनेन्द्रिय के स्वाद में उलझकर संयम को दुषित मत करना। गुरुदेव ने वाचस्पति गुरुदेव की इस शिक्षा को आजीवन चरितार्थ किया। रसविजय को गुरुदेव ने अपनी साधना का मुख्य लक्ष्य बनाया। यह तभी संभव था जब भिक्षाचरी निर्दोष हो। क्योंकि रसलोलुपता के कारण आहार में दोष की पूर्ण संभावना होती है।

जब गुरुदेव एवं बाबा श्री जग्गुमल जी महाराज ठाणा-2 से विचरण करते थे। तो तीनों समय आहार का उत्तरदायित्व गुरुदेव ने संभाला हुआ था। गुरुदेव की भिक्षाचर्या इतनी सजग एवं विवेकपूर्ण थी कि कभी किसी श्रावक को टिप्पणी करने का अवसर नहीं मिला। एक दिन गुरुदेव बाबा जी महाराज की औषधि के लिए मेडीकल स्टोर पर गए। दुकानदार ने दवाई को लिफाफे में रखने के लिए लिफाफे को फूंक मार दी। गुरुदेव ने तत्काल औषध ग्रहण करने से मना कर दिया कि वायुकाय के जीवों की विराधना हुई है। गुरुदेव ने आहारचर्या के समय भी कभी लोभ या आलस्य को हावी होने नहीं दिया। शास्त्रोक्त पद्धति **'महुगार समा बुद्धा।'** अर्थात् 'श्रमण मधुकर के समान प्रत्येक गृह से थोड़ा-थोड़ा आहार ग्रहण करें।' इस वाक्य का पूर्णतः परिपालन किया। गुरुदेव विचरण काल में अपने बाबा जी महाराज के साथ किसी क्षेत्र में पधारे। संध्याकालीन गोचरी में एक बहन के घर निर्दोष आहार उपलब्ध हुआ। बहन ने भावपूर्वक कई रोटियां बहराने का आग्रह किया। गुरुदेव! सायंकाल का समय है। जहां संध्या में निर्दोष आहार उपलब्ध होना दुर्लभ है। अतः आप यही कृपा करें। परन्तु गुरुदेव ने

अपनी मर्यादा को ध्यान में रखते हुए बहुत अनुनय-विनय करने पर दो रोटियां ही ग्रहण की। उस दिन अन्यत्र कहीं आहार का संयोग नहीं बना। यद्यपि दैवसिक विहार-यात्रा एवं भ्रमण के कारण क्षुधा तीव्र थी। फिर भी बाबा जी महाराज एवं गुरुदेव ने प्रसन्नता पूर्वक एक-एक रोटी ग्रहण कर मन को संतुष्ट रखा।

गुरुदेव ने सुविधाओं को नजरअंदाज कर सदैव संयम को प्रधानता दी। मेरे नेत्र पवित्र हो गए जो मैंने गुरुदेव को हाथ में झोली उठाए गोचरी के लिए जाते हुए देखा। वह दृश्य आज भी मुझे भाव-विभोर कर देता है। जब मैं 1983 में गुरुदेव के संग-संग गोचरी के लिए गया। जैसे वर्तमान युग के महावीर पात्र लेकर गमन कर रहे हो। प्रसंग था, तपस्या के पारणे के निमित्त श्रावक रत्नलाल जी के घर पधारने का। गुरुदेव ने घर में प्रवेश करते ही सर्वप्रथम निरीक्षण किया कि कोई वस्तु संघट्टे में तो नहीं है। तत्पश्चात् आहार ग्रहण किया। गुरुदेव अक्सर अपने मुनियों से भी आहार के संबंध में पृच्छा करते थे। कितने घरों की फरसना की? आहार में साथ कौन-कौन था? कितने युवक थे? आहार कहां-कहां से प्राप्त हुआ? कोई संघट्टे का कारण तो नहीं बना। गुरुदेव के इस प्रकार सूक्ष्मता से पृच्छना का उद्देश्य था। निर्दोष आहार एवं संयम प्रणाली को सुदृढ़ बनाए रखना।



गुरुदेव अपने मुनिराजों को अक्सर आहार गवेषणा पर जाते समय ही निर्देश देते कि आज अमुक दिशा में गोचरी के लिए जाना है। 1983 के बरनाला चातुर्मास में गुरुदेव ने मुझे दो बार गोचरी जाने की आज्ञा दी। मेरे गोचरी जाने के ढंग को निहारा। मुझे आहार चर्या के नियमों से सूक्ष्मतापूर्वक अवगत करवाया। मैंने भी कभी उन नियमों का उल्लंघन नहीं किया। गुरुदेव ने भी मेरी आहारचर्या की सराहना करते हुए 1984 में मुझ स्वतंत्र आहार लाने की आज्ञा दे दी।

गुरुदेव आहार लाने वाले मुनियों का भी सम्मान करते थे। ग्रीष्म ऋतु में जब कोई मुनि आहार लेकर आता तो गुरुदेव पसीने से लथपथ उसकी चादर को सुखाने के लिए स्वयं उठकर खड़े हो जाते। परन्तु मुनि स्वयं ही पीछे हट जाते। गुरुदेव अक्सर कहते-तुम हमारे अन्नदाता हो। तुम्हें साता पहुंचाना हमारा कर्त्तव्य है। यदि कोई संत किसी घर से स्वादिष्ट वस्तु अधिक मात्रा में ले आता तो गुरुदेव कठोर शब्दों में उसे आगाह भी करते कि संत का उद्देश्य गोचरी होता है। जिस कारण कुछ आहार परठना पड़ा। गुरुदेव ने दंड स्वरूप उन मुनिराज को एकाशन तप का नियम करवाया। 1993 के दिल्ली त्रिनगर चातुर्मास में गुरुदेव ने मुझे श्रावकों को आहार-पानी संबंधित दोषों को बताने का निर्देश दिया। उस अवसर पर मैंने लगभग 100 लोगों की क्लास में आहार के दोषों पर प्रकाश डाला। गुरुदेव मेरे समझाने के ढंग से प्रसन्न होकर मुझे साधुवाद देने लगे।

जब पूज्य महास्थविर जी महाराज, पूज्य राजेन्द्र जी महाराज एवं मैं (अरुणचन्द्र मुनि) राजस्थान का विचरण कर गुरु-चरणों में आए, तो गुरुदेव ने हमारी आहारचर्या के संबंध में पूछा। एषणा समिति के प्रति हमारी सजगता को सुनकर गुरुदेव के मुख पर संतुष्टि के भाव थे। हमारी सराहना करते हुए गुरुदेव बोले-मयाराम गण की उज्जवल यश पताका को प्रदेश में लहराने के लिए तुम तीनों साधुवाद के पात्र हो।

गुरुदेव द्वारा प्राप्त संस्कारों को संवर्धित करना ही मेरे जीवन का लक्ष्य है। आज भी निर्दोष एषणा समिति के पालन के लिए प्रतिबद्ध हूं। यदि अपवाद के रूप में कभी रूग्णता के कारण गोचरी में दोष लगा तो उसे दंड स्वीकार कर शुद्ध करने का प्रयास किया है।

गुरुदेव आहार के समय सभी संतों को आहार वितरण करके ही स्वयं अपने पात्र में रोटी रखते थे। संघ के सभी संतों की रूचि एवं भावनाओं से परिचित थे। उन्हें ज्ञात होता था, कि कौन सा संत किस आहार को सातापूर्वक ग्रहण करता है। गुरुदेव की आहार वितरण प्रणाली भी अनूठी थी। गुरुदेव का स्नेह इतना विस्तृत था कि प्रत्येक मुनिराज यही सोचता था कि गुरुदेव मेरा विशेष ध्यान रखते हैं। इस स्नेहिल स्पर्श को पाकर मैं भी धन्य बन गया।

**ऐसे कृपावतार गुरुदेव को कोटि-कोटि नमन!**

**गुरुदेव** द्वारा
**प्रवचन पुस्तकों**
एवं
**हस्तलिखित पन्नों**
के संग्रह की
**सार संभाल**
अद्भुत थी

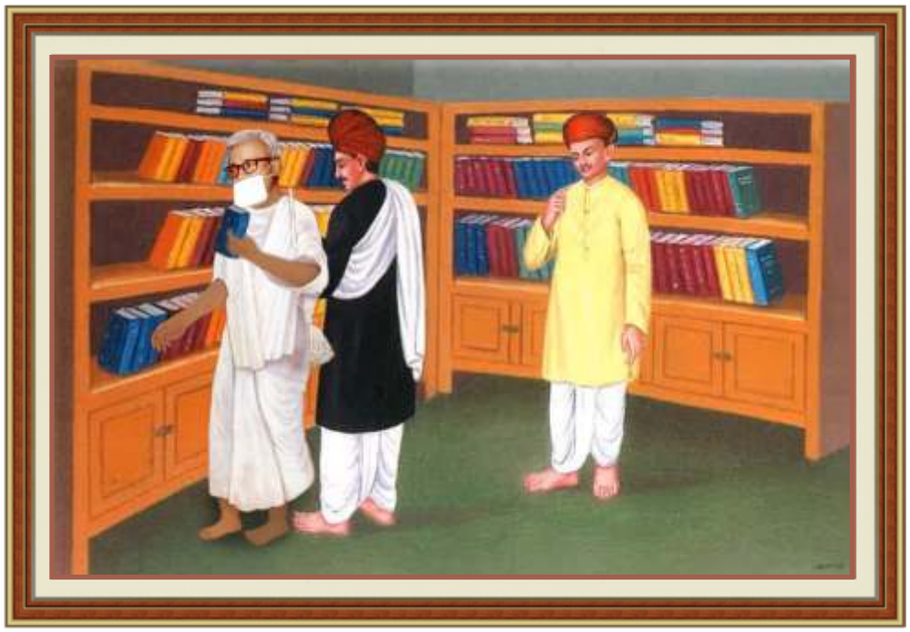

# 30 | आदान भंड मात्र निक्षेपणा समिति और गुरुदेव



**भण्डोपकरण** (साधु जीवन में सहायक उपकरण) लेने व रखने में प्रतिलेखन और प्रमार्जन की सम्यक् (निर्दोष) प्रवृत्ति को आदान भाण्ड़-मात्र निक्षेपणा समिति कहते हैं। विवेकपूर्ण आचरण संयम जीवन का हार्द है। पापमय वृत्ति से बचने के लिए भगवान ने साधक को उपकरणों के प्रति भी यतनापूर्वक व्यवहार का निरूपण किया है। गुरुदेव भगवान महावीर के सिद्धांतों के प्रति पूर्णत: समर्पित थे।

जब मैंने सन् 1986 में गुरुदेव द्वारा व्यवस्थित प्रवचन पुस्तकों को एवं हस्तलिखित पन्नों के संग्रह को देखा तो उनकी सार संभाल व्यवस्थित प्रणाली को देखकर नममस्तक हो गया। गुरुदेव में किसी वस्तु को ग्रहण करने व रखने की अद्भुत कला थी। उनकी प्रत्येक क्रिया में विवेक झलकता था। यदि साधक किसी वस्तु को ग्रहण करने एवं संभालने में अविवेक का प्रदर्शन करता है तो वह अपने संयम को संक्लेशित कर देता है। पापाश्रव को आमंत्रित करता है। अत: गुरुदेव इस समिति के प्रति पूर्णत: सावधान थे और संतवृंद को भी सजग रहने की प्रेरणा देते थे।

सन् 1987 में मैं अपने सहवर्ती मुनिराज के साथ पाट उठाकर दूसरे कक्ष में लेकर जा रहे थे। अचानक पाट हाथ से फिसल गया। जिस कारण आवाज भी हुई। गुरुदेव ने रात्रि प्रतिक्रमण के समय समझाते हुए कहा-किसी वस्तु को उठाने व लेकर चलने में इतनी जागृती होनी चाहिए कि किसी को कष्ट न हो। और न ही समाज के उपकरणों की क्षति हो। गुरुदेव आज्ञा देने के साथ-साथ आज्ञापालन पर भी बल देते

थे। गुरुदेव का इंगित आदेश प्राप्त कर मैंने उस दिन से लेकर जीवन पर्यंत कभी भी अयतना को हावी नहीं होने दिया। जिस कारण आज भी मेरा हृदय आनंद से परिपूर्ण है।

सन् 1986 के रोहतक संत सम्मेलन में मैंने देखा कि गुरुदेव संतों द्वारा प्रयोग किए जाने वाले लघुवस्त्र (खंड़िया) को भी संभाल कर रखते थे। समयानुसार उस लघु वस्त्र का भी उपयोग करते। गुरुदेव का कथन था कि संयमोपयोगी वस्तुओं की सार-संभाल करना भी मुनि का दायित्व है।

गुरुदेव परठने योग्य अवशेषों को भी एकत्रित कर लेते थे। समयानुसार उसे बाहर भूमि पर ले जाकर परठने का निर्देश देते थे। उसमें भी विशेष रूप से समझाते कि तुम्हारी वस्तु परठने की विधि इतनी विवेकपरक हो कि वह कागज या वस्त्र हवा के कारण इधर-उधर फैलकर वातावरण को दूषित न करे। परठने योग्य वस्तु को मिट्टी से ढकने का भी विशेष निर्देश देते। गुरुदेव जब स्थानक से अन्यत्र विहार करते तो निरीक्षण करते कि कोई वस्तु या कागज कहीं बिखरा हुआ तो नहीं है। क्योंकि साधक की छोटी-सी असावधानी भी लोकोपवाद का कारण बन सकती है। धन्य है गुरुदेव की सजगता एवं उनकी सिद्धांत-प्रियता को। गुरुदेव द्वारा आरोपित यह सुसंस्कार आज भी हमारे संघ के मुनियों का मार्गदर्शन कर रहे हैं।

जब भी कोई मुनि बाहर भूमि पर कुछ परठने योग्य वस्तु परठकर वापिस आता तो गुरुदेव उससे अवश्य पूछते कि उस वस्तु को रेत या मिट्टी से दबाकर आए हो? गुरुदेव की पृच्छा का आशय मात्र यह था कि साधक में सर्तकता बनी रहे। धन्य है गुरुदेव की संयम के प्रति समर्पण को। आज हम रोम-रोम से गुरुदव के प्रति समर्पित है। इसका कारण यह नहीं कि वे महान् वक्ता थे। इतने विशाल संघ के अधिपति थे। हमारा शीश मात्र इसलिए श्रद्धावनत है कि आपका संयमी जीवन अद्‌भुत एवं अलौकिक था। गुरुदेव की जिस सम्यक् कार्यप्रणाली को मैंने अपने नेत्रों से निहारा है। उसी का वर्णन मैं सुधी पाठकों के समक्ष कर रहा हूं।

गुरुदेव अपनी निश्राय के समस्त उपकरणों को विधिपूर्वक संभालकर रखते। जिस कारण पन्नों-पुस्तकों में जीवोत्पत्ति न हो। और वे पुस्तकें व पन्ने सुरक्षित भी रहें। गुरुदेव की इस सुघड़ पद्धति को देखकर मैंने भी प्रत्येक वस्तु को व्यवस्थित रखने की कला सीखी। यह सब गुरु कृपा का ही प्रतिफल है। गुरुदेव किसी अन्य मुनि द्वारा अव्यवस्थित वस्तु को भी व्यवस्थित कर देते थे।

मेरी दीक्षा के उपरांत गुरुदेव ने मुझे आदान भाण्डमात्र समिति के विषय में विशेष रूप से समझाया था। गुरुदेव ने बताया कि मात्रक को इस प्रकार रखना चाहिए कि किसी गृहस्थ की दृष्टि न पड़े।

रामामंडी में मैं पात्रों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रस्थापित कर रहा था। अचानक पात्र मेरे हाथ से फिसल गए। जिस कारण छोटा पात्र खंडित हो गया। तब गुरुदेव ने स्नेहपूर्वक समझाया कि पात्र इत्यादि भण्डोपकरण मुनि जीवन की संपत्ति है। उनकी यतना रखने में मुनि की शोभा है। उस अवसर पर गुरुदेव ने मुझे संयम की अन्य शिक्षाओं के प्रति भी जाग्रत किया। यतना के विषय में कहा कि एक साथ एक से अधिक वस्तुओं का परिवहन नहीं करना चाहिए। किसी भी प्रवृत्ति को करते समय तुम्हारे भीतर इतना संयम हो कि तुम्हारी प्रवृत्ति कोलाहल का कारण नहीं बनें। उपकरणों को उठाते व रखते समय ध्वनि नहीं आनी चाहिए। दरवाजे खिड़कियां बंद करते समय शोर न हो। किसी कार्य में शीघ्रता व आवेश का प्रदर्शन साधु जीवन के विपरीत आचरण है। पाट को कभी घसीटकर नहीं उठाना। दो साधक मिलकर आराम से पाट को उठाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखें। इस प्रकार गुरुदेव समय-समय पर आश्रव के निरोध व संयम के उत्थान के लिए मार्गदर्शन करते रहते थे।

**ऐसे महान उपकारी गुरुवर को नमन।**

गुरुदेव कफ, मल-मूत्र आदि त्याज्य को इस प्रकार
त्यागते थे कि छः काय के जीवों की विराधना न हो

# 31 | उच्चार प्रश्रवण परिट्ठावणिया समिति और गुरुदेव

**मल-मूत्र**, कफ आदि विसर्जन योग्य पदार्थ को ऐसे स्थान पर त्यागना, जिससे छ:काय जीवों की विराधना न हो। वातावरण दूषित न हो व समाज में लोकापवाद का कारण न बने। इस प्रकार विवेकपूर्वक उत्सर्जन व परिष्ठापन को उच्चार प्रश्रवण समिति के नाम से अभिहित किया गया है। वर्तमान काल में इस समिति को लेकर अनेकों धारणाएं बनी। आधुनिक परिस्थितियों के कारण शिथिलता की संभावनाएं जाग्रत हुई। परन्तु गुरुदेव ने कभी भी संयम पद्धति में शिथिलता को पनपने नहीं दिया।



सन् 1983 मेरे जीवन का वह स्वर्णिम अध्याय है, जब मेरे जीवन में आध्यात्मिक- यात्रा का श्री गणेश हुआ था। मुझे अपना प्रथम वर्षावास गुरुदेव के चरणों में करने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। उस समय गुरुदेव मुझे बाहर भूमिका जाने के लिए छोटी पात्री में जल लेने का निर्देश देते। मैं पात्र में जल लेकर गुरुदेव के पद्चिन्हों का अनुगमन करता। उस समय लगभग एक किलोमीटर की दूरी पर जंगल जाने योग्य भूमि थी। गुरुदेव की पंचमी समिति का अवलोकन कर मैं आश्चर्यचकित था। इस पंचम आरे में भी चतुर्थ आरे का जीवंत उदाहरण देखने को मिला। वहां पंचमी के लिए दो प्रकार के स्थान उपलब्ध थे। एक छायादार व दूसरा धूप में। गुरुदेव मल-उत्सर्जन के लिए ग्रीष्मऋतु में भी धूप वाले स्थान पर बैठे। धूप में बैठना सुगम नहीं था। शरीर पसीने से तरवतर हो रहा था। मैं अनुकूलता के अनुसार छाया में बैठ गया। आवश्यक कार्य में निवृत होकर जब हम स्थानक में आए तो मैंने गुरुदेव से पूछने का साहस किया- गुरुदेव! जब वहां छायादार स्थान उपलब्ध था तो आप तेज धूप में क्यों बैठे? गुरुदेव ने फरमाया- धूप वाले स्थान पर जीवोत्पत्ति की संभावना छायाजनक स्थान की अपेक्षा कम होती है। मेरा यही भाव है कि मेरी किसी क्रिया से सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव की विराधना न हो। ऐसा करूणापूर्ण विराट हृदय था गुरुदेव का।

गुरुदेव उत्कृष्ट संयम के समर्थक थे। शारीरिक व्याधि के कारण गुरुदेव के घुटनों में दर्द रहने लगा। तब संतों ने आग्रह किया कि आप स्थानक में ही आवश्यक क्रिया से निवृत्त हो जाए। हम परिष्ठापन कर देंगे। गुरुदेव ने कहा- 'मैं स्वालम्बी जीवन जीना ही पसंद करूंगा।' गुरुदेव ने पंचम समिति की आराधना में कभी समझौता नहीं किया न ही उसे दूषित होने दिया। ऐसे उत्तम संयम का पालन करने वाले गुरुदेव की शरण प्राप्त कर मेरा जीवन धन्य हो गया। यद्यपि वर्तमान परिवेश में इस समिति का पालन दुर्गम हो रहा है। परन्तु हम गुरुदेव के उज्जवल संस्कारों को विस्मृत नहीं कर सकते। समिति का सम्यक् पालन करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। हम आपके द्वारा प्रदत्त संयम प्रणाली का सम्यक् निर्वहन करते रहें। आपके पद्चिन्हों का अनुसरण करें। हमें ऐसा बल व बुद्धि प्रदान करें।

गुरुदेव ने घुटनों में अत्याधिक पीड़ा होने पर भी कभी इंग्लिश टायलेट का प्रयोग नहीं किया। कभी नाले या आश्रवयुक्त स्थान पर जल प्रवाहित नहीं किया। यदि कभी अनजाने में ऐसा दोष लग जाता तो गुरुदेव तत्क्षण प्राश्चित्त लेकर स्वयं को शुद्ध कर लेते। गुरुदेव के जीवन

की संध्यावेला में इस समिति के निर्वहन में कठिनाईयां आने लगी। परन्तु गुरुदेव के सुदृढ़ संकल्प के समक्ष मुश्किलों के हिमवान् पर्वत भी लाघव को प्राप्त हुए। गुरुदेव का सिंहनाद था कि शीश भले ही चला जाए परन्तु संयम शिथिल नहीं होने दूंगा।

सन् 1993 त्रिनगर चातुर्मास में वर्षा के कारण स्थानक की छत पर हरित काई जम गई। गुरुदेव ने मुझे छत के निरीक्षण का उपदेश दिया। हरियाली के कारण गुरुदेव ने हमें छत पर परठने का निषेध कर दिया। गुरुदेव की संयम के प्रति कितनी सूक्ष्मदृष्टि थी। गुरुदेव के इस विवेकपूर्ण दृष्टिकोण का मैं स्वयं साक्षी हूं। गुरुदेव शारीरिक मल व नख इत्यादि को कागज या कपड़े में लपेटकर भूमि में दबाने का निर्देश देते थे। मात्रक को परठने के पश्चात् भली भांति धूप में सुखाते। मात्रा के लिए सदैव मात्रक का उपयोग करते। परठते समय भूमि से चार अंगुल ऊपर से धीरे-धीरे परठा कर शास्त्रीय विधान का पालन करते। जब भी हम बाहर भूमिका के लिए निकलते तो हमें निर्देश देते कि निषेधात्मक स्थान व आवागमन युक्त स्थान पर विसर्जन का विवेक रखें। साधु की जीवन शैली से कोई ऐसा अनुचित कार्य न हो, जिससे धर्म का अपवाद हो। लोगों में अश्रद्धा का प्रसार हो। कांधला जैन स्थानक के ऊपरी तल पर देव स्थान निर्मित है। गुरुदेव ने कांधला चातुर्मास में हमें विशेष निर्देश दिए कि देव स्थान के आस-पास स्थंडिल व मात्रा नहीं परठे। संतों ने भी गुरुदेव की आज्ञा का विनयपूर्वक पालन किया।

गुरुदेव का पांचों समितियों के प्रति आस्था व विवेक पूर्णत: अनुमोदनीय था।

**ऐसे महान संयमी गुरुदेव को बारंबार नमन!**

मन को आश्रवयुक्त
विचारों से
शून्य स्थिति तक
पहुंचाने का मार्ग है
मनगुप्ति।

विचार शून्यता की स्थिति
तभी उत्पन्न हो सकती है
जब अंतरात्मा
संकल्प-विकल्प के
ताने-बाने से मुक्त हो।

# 32 | मनगुप्ति और गुरुदेव

**गुप्ति** का अर्थ है गोपन करना। जिस प्रकार कोई योद्धा रणक्षेत्र में उतरने से पूर्व कवच मुकुट धारण कर अपने मर्मस्थलों का गोपन करता है। उसी प्रकार संयम के क्षेत्र में उतरने वाला मुनि आस्रव निरूंधन के लिए तीन गुप्तियों का आश्रय ग्रहण करता है। जैन दर्शन के अनुसार मन-वचन व काय के कर्म ही योग है तथा योग ही आश्रव का मुख्य कारण है। आश्रव ही बंध (संसार) का मुख्य कारण है। अत: भगवान ने संवर का निरूपण करते हुए गुप्तियों की व्याख्या की है। जिसमें सर्वप्रथम मन गुप्ति का विवेचन आता है। मन को आश्रवयुक्त विचारों से शून्य स्थिति तक पहुंचाने का मार्ग है मनगुप्ति। विचार शून्यता की स्थिति तभी उत्पन्न हो सकती है। जब अंतरात्मा संकल्प-विकल्प के ताने-बाने से मुक्त हो।

बाह्य परिवेश से संसार में अनेकों मुनि विचरण कर रहे हैं, परन्तु मन से मुनि की साधना करने वाले विरले महापुरुष है। गुरुदेव श्री के

जीवन में मनसा, वाचा, कर्मणा साधुत्व प्रतिबिम्बित होता था। बाह्य संयोग-वियोग, उतार-चढ़ाव कभी उनके मन को विचलित नहीं कर पाएं।

गुरुदेव के आभामंडल से प्रस्फुटित होने वाली दिव्य किरणें हमें आध्यात्म का नित्य नवीन संदेश देती थी। गुरुदेव का जीवन किसी आकांक्षा, प्रतिस्पर्धा व मोह में आबद्ध नहीं था। उनमें सामाजिक अपेक्षा व नामेषणा की एषणा नहीं थी। उनके जीवन का एकमात्र ध्येय था, गुरु परम्परा की शान को अक्षुण्ण बनाए रखना। इस गौरवशाली परम्परा का निर्वहन उन्होंने अंतिम श्वास तक किया। शांत प्रकृति के कारण उनका आर्तध्यान व रौद्रध्यान से दूर-दूर तक कोई संबंध नहीं था। उनका मन शांत सरोवर की भांति निर्मल था। उनकी मन: गुप्ति की साधना अद्‌भुत थी।

उनके जीवन में मुसीबतों के झंझावात भी आए। अकारण विरोधी भी सिर उठाकर खड़े हो जाते। यदा-कदा कषायाविष्ट मनुष्य अपशब्द भी बोल देते। अशालीन श्रावक आक्रोश का प्रदर्शन भी करते। परन्तु गुरुदेव मेरू की भांति अविचल थे। उन्होंने अपने मन में कभी किसी से स्थायी वैर-विरोध नहीं रखा। शांतचित्त सभी पर करूणा की फुहार बरसाते।

गुरुदेव के जीवन में एक समय ऐसा आया जब विजय मुनि जी ने गुरुदेव के विरोध में पत्र प्रकाशित किया। परन्तु गुरुदेव के मन में कोई विद्वेष की गांठ नहीं थी। उनके मुख से सैदव यही शब्द निकलते कि यह सब मेरे ही किसी अशुभ कर्म का परिणाम है। जो मुझे अकारण विरोध का सामना करना पड़ा। परन्तु मेरे मन में उनके प्रति कोई वैरभाव नहीं है। गुरुदेव के घुटनों में दर्द रहता था। यदि कोई श्रावक गुरुदेव के दर्द के विषय में पूछता कि दर्द कैसा है? गुरुदेव मुस्कुराते हुए कहते-दर्द अच्छा है। अब तो दर्द से भी प्रेम हो गया है। पीड़ा में भी गुरुदेव का मन शांत रहता था।

सन् 1958 में मुनि सुशील जी ने माईक का उपयोग प्रारंभ किया। सांघिक मर्यादा के कारण गुरुदेव का उनसे संबंध विच्छेद हो गया। जिस कारण तात्कालिक वातावरण उत्तेजनापूर्ण बन गया। उन्हीं दिनों जनवरी मास में सुशील मुनि जी अपने अनुयायियों के साथ बारादरी में आए। वे गुरुदेव को वंदना करने लगे। गुरुदेव ने उन्हें एकांत स्थान पर ले जाकर समझाया कि अब हमारे साथ आपका वंदन व्यवहार नहीं है। हमारे लघु मुनि आपको वंदन नहीं करेंगे तो आपको पीड़ा होगी। अत: आप भी मुझे वंदन न करें। यह सुनते ही सुशील मुनि जी सहनशीलता की सीमा खो बैठे। रूष्ट होकर कहने लगे। आप एक कसाई की वंदना स्वीकार कर सकते हैं। परन्तु संत का वंदन स्वीकार नहीं कर सकते। वातावरण तनावपूर्ण बन गया। क्रोधावेश में सुशील मुनि जी तो चले गए। परन्तु रात्रि में कांफ्रेंस के अध्यक्ष श्री आनंदराज जी सुराणा आए और अमर्यादित शब्दों का प्रयोग करते हुए भड़कने लगे। गुरुदेव ने इस विरोध को भी विनोदभाव में स्वीकार किया। उन्हें शांत भाव से समझाने का प्रयास किया। प्रतिकूल वातावरण भी गुरुदेव की भाव-भंगिमा को मलिन नहीं कर पाया।

गुरुदेव ने अपने जीवन में अनेकों द्वन्द्वों का सामना किया। बाबा जी महाराज उन्हें जीवन के प्रारंभिक पड़ाव पर छोड़ स्वर्ग सिधार गए। वाचस्पति गुरुदेव का भी विछोह उन्होंने सहन किया। पूज्य तपोधनी जी महाराज का भी वियोग सहन करना पड़ा। अपने हृदय के सन्निकट कई अभिन्न बंधुओं से भी बिछुड़ना पड़ा। गुरुदेव ने किसी भी परिस्थिति में मन का संतुलन डांवाडोल नहीं होने दिया। मानसिक धरातल पर स्वयं को समरसता से सराबोर बनाएं रखा।

**ऐसे समता के धारक गुरुदेव का हार्दिक अभिनंदन।**

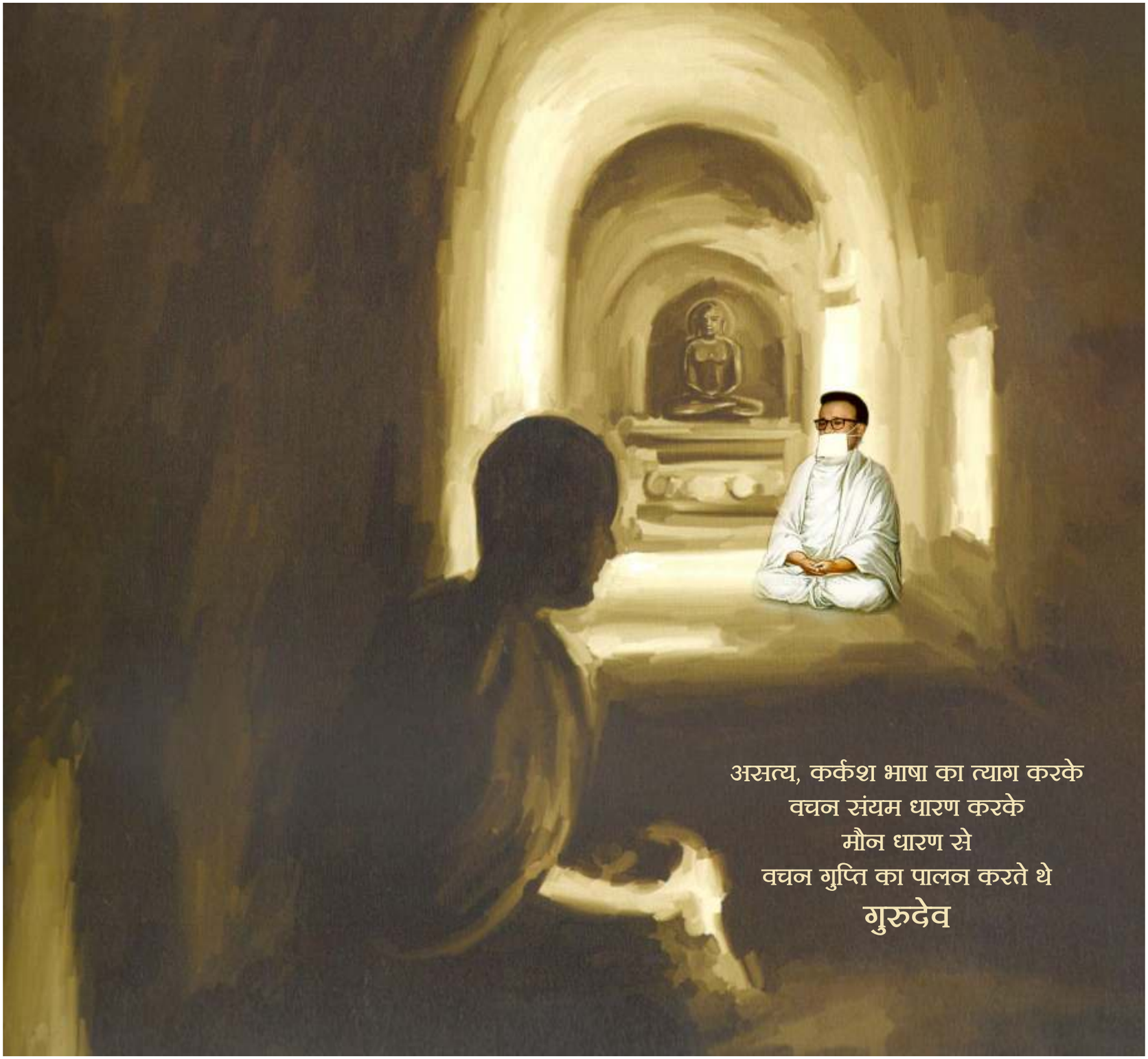
असत्य, कर्कश भाषा का त्याग करके
वचन संयम धारण करके
मौन धारण से
वचन गुप्ति का पालन करते थे
गुरुदेव

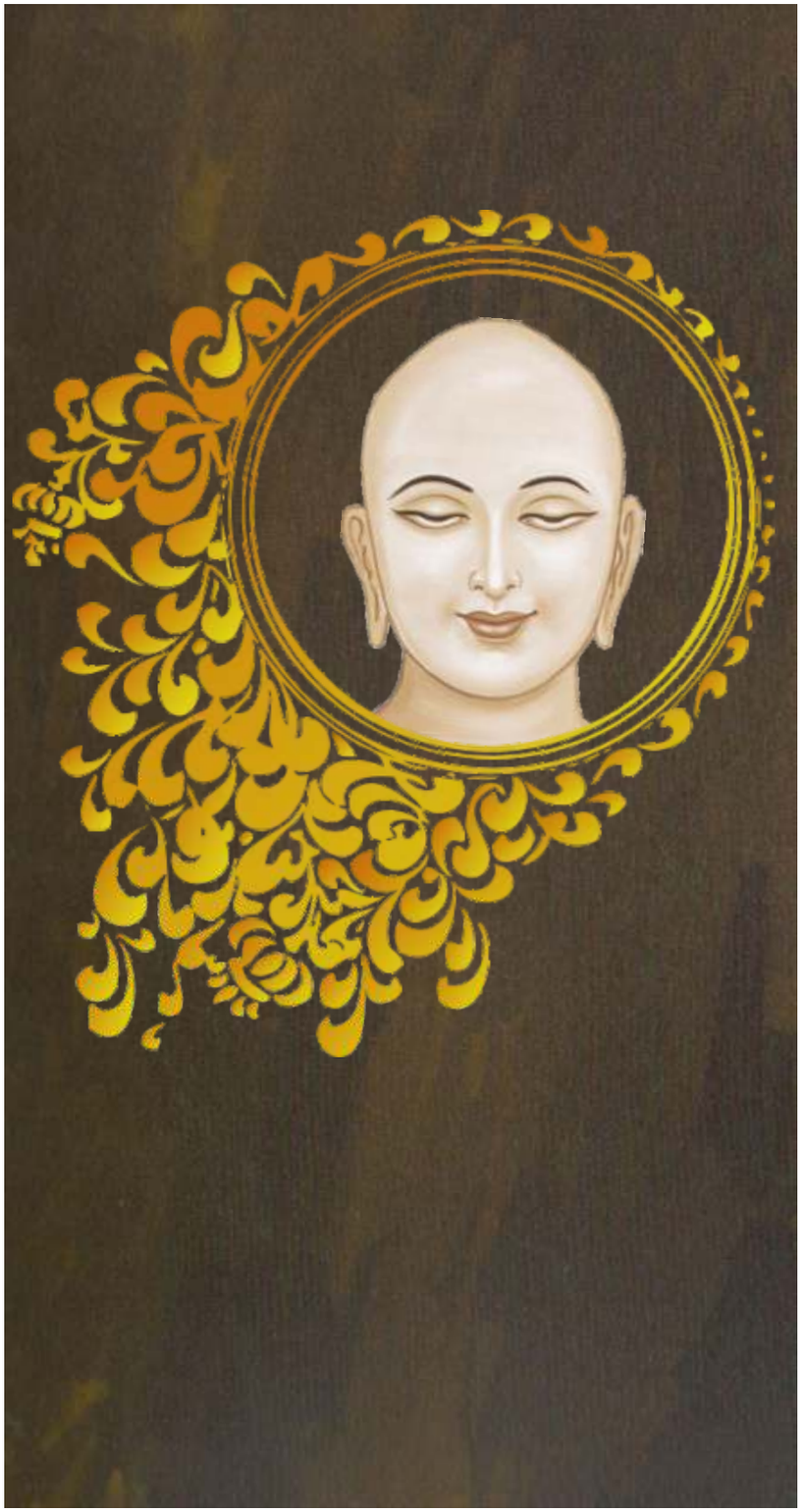

# 33 | वचन-गुप्ति और गुरुदेव

**असत्य** व कर्कश भाषा का त्याग अथवा वचन संयम अर्थात् मौन धारण करने को वचनगुप्ति कहते हैं। वचन की अशुभ प्रवृत्तियों को रोकना ही वचन गुप्ति का हार्द है। यह तभी संभव है। जब साधक निरर्थक प्रलाप को बंद करें। वचन गुप्ति की आराधना का सर्वोत्तम उपाय मौन एवं वाणी का संयम है। गुरुदेव ने अपने संयमी जीवन में मौन की विशेष रूप से आराधना की। वैसे तो गुरुदेव प्रारंभ से ही मौन व्रत की साधना करते थे। परन्तु धीरे-धीरे मौनपूर्वक संयम तप की आराधना करते हुए अद्भुत आनंद की अनुभूति करने लगे। गुरुदेव सर्वप्रथम दिवस या रात्रि में कुछ घंटे मौन रखकर आत्मरमणता का आनंद लेते थे। परन्तु धीरे-धीरे सप्ताह में एक दिन पूर्ण रूप से मौन साधना करने लगे। गुरुदेव की वचन गुप्ति में अद्भुत आकर्षण था।



सन् 1993 के त्रिनगर चातुर्मास में एक श्रावक प्रतिदिन मध्याह्न के समय दर्शनों के लिए आता। गुरुदेव मध्याह्न में मौन धारण करते थे। अत: वे हाथ उठाकर आशीर्वाद दे देते। यह क्रम निरंतर दो तीन महीने तक चलता रहा। न ही गुरुदेव ने कभी कुछ पूछा और न ही श्रावक ने कभी कोई प्रश्न किया। प्रतिदिन यह दृश्य देखकर मेरे मन में बहुत बेचैनी होने लगी। लगभग 100 दिवस पश्चात् मैंने उस श्रावक से पूछा- आप प्रतिदिन भावपूर्वक वंदन करने गुरुचरणों में आते हैं। क्या आपके मन में कभी यह विचार उत्पन्न नहीं होता कि गुरुदेव को मुझसे वार्तालाप करना चाहिए। मैं कौन हूं? प्रतिदिन कहां से आता हूं? श्रावक बोला-गुरुदेव की वीतराग छवि के दर्शन करके ही मेरा मन तृप्त हो

जाता है। गुरुदेव भले ही जिह्वा से कुछ न बोल रहे हो, किंतु उनके संयमी जीवन की झंकार सुनकर ही मैं संतुष्ट हूं।

मौनपूर्ण होने के पश्चात् मैंने गुरुदेव से प्रश्न किया कि आपने कभी मध्याह्न में आने वाले श्रावक से बात क्यों नहीं की? गुरुदेव का उत्तर सुनकर मैं आश्चर्य से भर गया। गुरुदेव बोले–जब वह श्रावक मेरे मौन-स्नान से ही तृप्त है, तो मैं अपना मौन खंड़ित क्यों करूं? वह भाई मुझसे वार्तालाप करने नहीं आता। वह मात्र मेरी मौन भंगिमा के दर्शन करने आता है। यदि बात ही करनी होती तो वह दिन में कभी भी आ सकता था। गुरुदेव के शब्द सुनकर मेरा हृदय श्रद्धा से झुक गया। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि देह दृष्टि से गुरुदेव भले ही इस लोक के वासी है। परन्तु अंतरात्मा से किसी दिव्य लोक में विचरण कर रहे हो।

गुरुदेव ने अपने जीवन के अंतिम क्षणों में सन् 1999 में शालीमार बाग में संतों के नाम पत्र लिखकर यह निर्देश दिया कि संघ का प्रत्येक मुनि एक घंटा मौन व्रत की उपसना अवश्य करें। वैसे तो मैं प्रतिदिन मौन व्रत की साधना कर रहा था, परन्तु गुरुदेव के आदेश के उपरांत प्रतिदिन 11 से 12 बजे तक मौन की आराधना करने लगा। 2020 और 2021 के चातुर्मास में मैंने 24 घंटों में सात घंटे मौन की साधना की। यह सब गुरुदेव की कृपा का ही सुफल है।

गुरुदेव अधिकांशत: मौनपूर्वक आत्मरमण करते हुए अपने समय को सार्थक करते थे। भले ही श्रावकों की भीड़ लगी हो, परन्तु गुरुदेव कभी अपने व्रत से विचलित नहीं हुए। यदि चर्चा करते तो ज्ञान-ध्यान से संबंधित वार्तालाप होता। राजनीति की बातों से उनका दूर-दूर तक कोई लगाव नहीं था। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के राष्ट्रहित के कार्यों का समर्थन तो किया। परन्तु कभी राजनीति से संबंधित कोई टिप्पणी नहीं की। जब-जब गुरुदेव के चरणों में बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, कभी भी उनके मुख से विकथा नहीं सुनी। सीमित शब्दों में वार्तालाप करके आगन्तुक व्यक्ति को संतुष्ट करने की अद्भुत कला के धनी थे।

गुरुदेव के समीप एक व्यक्ति आया। बोला-गुरुदेव आधुनिक परिवेश में कुछ संतों का जीवन उपहासस्पद बन गया है। अमुक संत में यह कमी है। उनमें संयम के प्रति दृढ़ता नहीं है। गुरुदेव सर्वप्रथम सारी बातें सुनते रहे। परन्तु जब वह भाई नहीं रुका। तो गुरुदेव बोले-भाई! मुझे किसी की निंदा सुनने की कोई रूचि नहीं है। यदि तुम ज्ञान-ध्यान से संबंधित वार्तालाप के इच्छुक हो तो बैठ सकते हो अन्यथा दया पालो। जिस साधक ने भी संयम ग्रहण किया है। उसका पालन करना, स्वयं उसका उत्तरदायित्व है। जो साधना करेंगे। अपना कल्याण कर लेंगे। तुमने इतना सिरदर्द क्यों लिया है? मेरे जीवन का लक्ष्य आत्म कल्याण है। न कि दूसरों पर अंतर्गत टीका-टिप्पणियां करना। गुरुदेव व्यर्थ के प्रपंच से कोसों दूर रहते हैं। वचन-संयम द्वारा आत्महित की साधना ही उनका लक्ष्य था।

**ऐसे आत्मार्थी गुरुदेव को नमन!**

**आत्मन**
**विकल्पों के उस पार**
**तुम जाज्वल्यमान हो।**
**अब तुम स्वयं में**
**खो जाओ।**

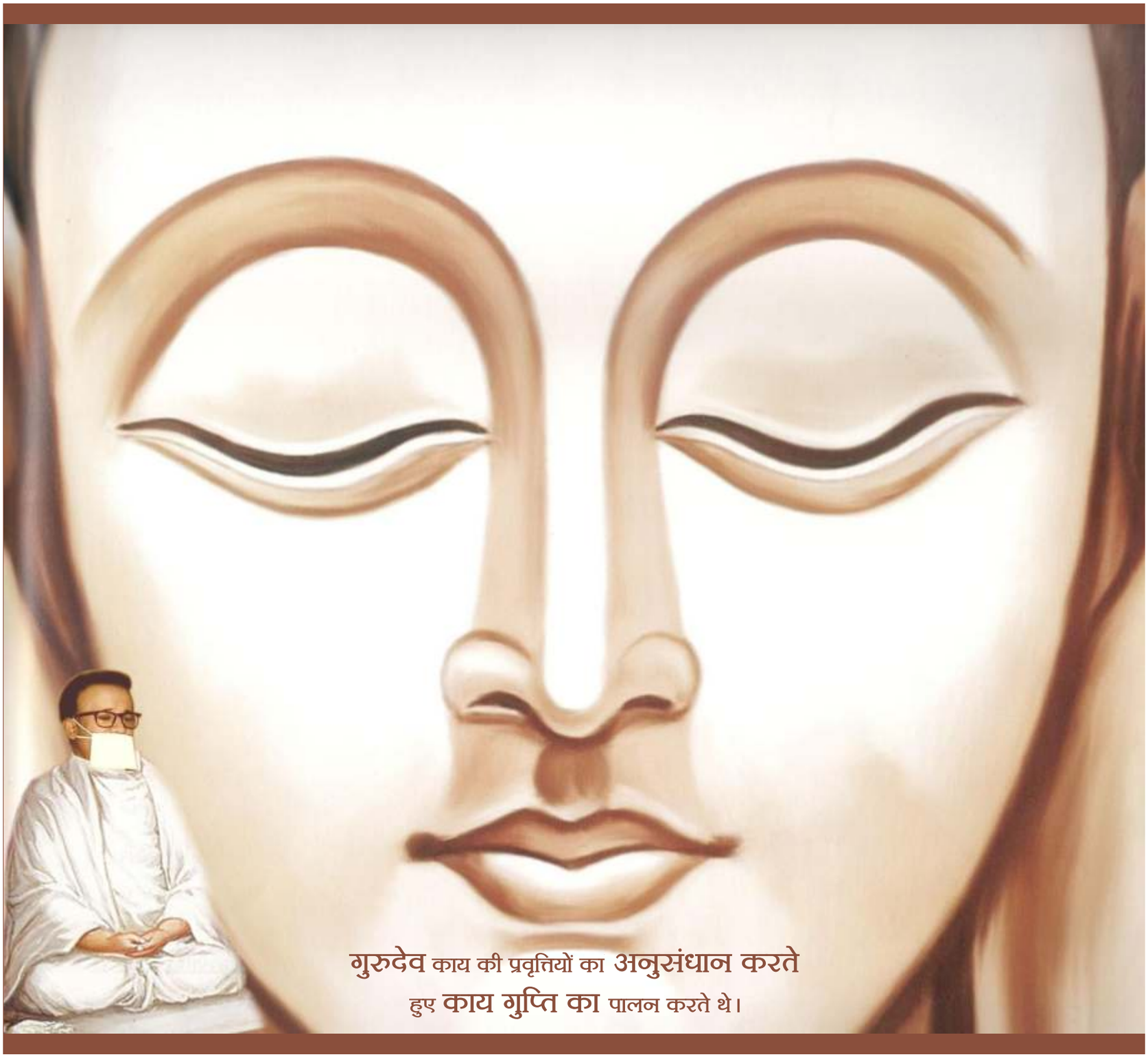

गुरुदेव काय की प्रवृत्तियों का अनुसंधान करते
हुए काय गुप्ति का पालन करते थे।

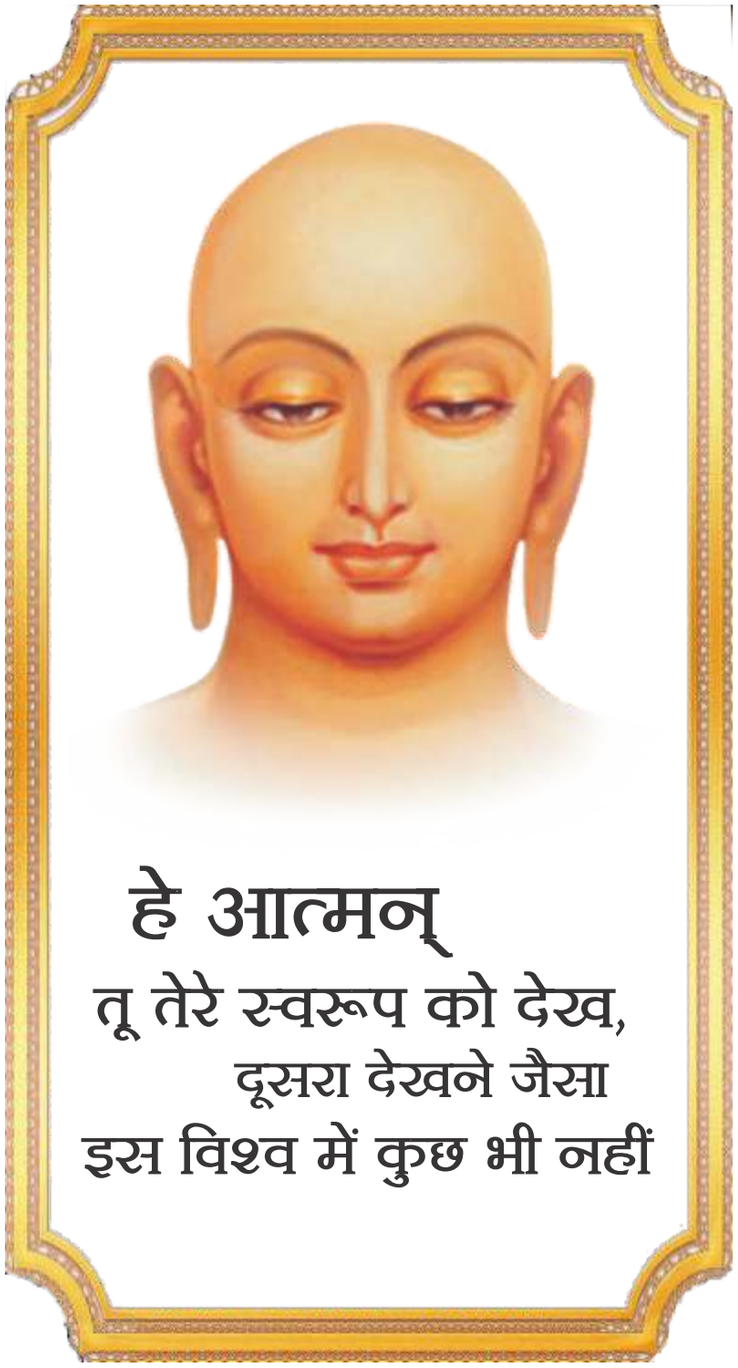




# 34 | काय गुप्ति और गुरुदेव

**मन**–वचन व काय की प्रवृत्ति पर नियंत्रण ही संयम धर्म का सार है। काया की अशुभ प्रवृत्तियों से निवृत्त होना काय–गुप्ति है। हलन–चलन व अंगोपांग की क्रिया को संयमित व नियंत्रित करना काय संवर है। शरीरगत समता का परिहार कर, शारीरिक क्रियाओं को साधने वाला साधक ही मोक्षमार्ग का अनुगामी बन सकता है। प्रज्ञाशील साधक काया की प्रवृत्तियों का अनुसंधान करता हुआ अपने जीवन को सफल बनाता है। जन्म के साथ बुद्धि प्रत्येक मनुष्य को प्राप्त होती है। परन्तु कोई विरल आत्मा ही प्रज्ञा को जाग्रत कर पाता है। बुद्धि के साथ विवेक व प्रज्ञा का तारतम्य ही साधक को साधना के साथ संलग्न करता है। गुरुदेव ने सदैव प्रज्ञापूर्वक अपनी जीवन एवं संयम प्रणाली का निरीक्षण किया।

गुरुदेव के जीवन की प्रत्येक क्रिया प्रज्ञा एवं विवेक प्रधान थी। उनकी काय गुप्ति इतनी सटीक एवं संयमित थी कि उनकी अदाओं को देखकर ही श्रद्धालु का हृदय गद्‌गद् हो जाता था। उनके प्रथम दर्शन करने वाला व्यक्ति बरबस बोल उठता कि यह कोई सामान्य संत नहीं, अपितु कोई महायोगी है। उन्होंने अपने साधना काल में ही शारीरिक वृत्तियों को पूर्णत: नियंत्रित कर लिया था। आगम का वह वाक्य–

**जयंचरे, जयं चिट्ठे, जयमासे, जयं सए।**
**जयं भुंजतो, भासंतो, पावकम्मं ण बंधई।।**

यतनापूर्वक चलने, उठने–बैठने व शयन करने वाला और विवेकपूर्वक भोजन वाणी का उपयोग करने वाला साधक पाप–कर्म का बंध नहीं करता।

गुरुदेव के जीवन में यह गाथा यथावत चरितार्थ होती थी। उनके खाने-पीने, उठने-बैठने व सोने में महान साधना का प्रतिबिम्ब झलकता था। गुरुदेव की कायिक गतिविधियों का संदर्शन करने से ऐसा प्रतीत होता था कि किसी चतुर्थ आरे के महामुनिराज के दर्शन हो गए हो। हमारे नेत्र धन्य हो गए, जो हमने ऐसे गुरुदेव के साक्षात् दर्शन किए। जिन महापुरुषों की गौरव-गाथाएं हम आगम-साहित्य में पढ़ते हैं। उस छवि को हमें प्रत्यक्ष निहारने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह कोई आश्चर्य भी नहीं कि आज से 100 वर्ष उपरांत लोग यह सोचने पर मजबूर हो जाए कि क्या ऐसे करूणामय व्यक्तित्व ने कभी अपनी चरणरज से इस धरा को पावन किया था।

गुरुदेवश्री की साधना सागरसम गंभीर थी। यदि वे गमनादि क्रिया के लिए एक पग भी आगे बढ़ाते तो उन्हें अपनी सूक्ष्म से सूक्ष्म क्रिया का भी भान होता था। काय की प्रवृत्ति के प्रति पूर्णत: जागरूक थे। गुरुदेव मन से सरल, वचन से सहज व काय से संयमी थे।

मैंने कभी गुरुदेव के गमनागमन में व्यग्रता के दर्शन नहीं किए। जुग प्रमाण मात्र अग्र भूमि को देखते हुए गंधहस्ती की भांति विचरण करते थे। काया की सूक्ष्म से सूक्ष्म क्रिया में किसी जीव की विराधना न हो इस बात का विशेष विवेक रखते थे। शास्त्रोक्त विधि द्वारा ही शरीर की गतिविधियों का संचालन करते। अभ्यास करते-करते गुरुदेव की काया इतनी संयमित हो गई थी कि घंटों एक आसन पर एकाग्र होकर बैठ जाते थे। गुरुदेव की काय-गुप्ति की साधना उत्कृष्ट थी।



सन् 1995 में गुरुदेव के मूत्राशय का ऑपेरशन हुआ। परन्तु ऑपरेशन की पीड़ा के उपरांत भी गुरुदेव पूर्णत: स्थिर रहे। गुरुदेव की एकाग्रता को निहारकर डॉक्टर भी आश्चर्य चकित था।

गुरुदेव के देवलोक के कुछ दिन पूर्व 18 अप्रैल 1999 को शालीमार बाग दिल्ली में अक्षय तृतीया के सुअवसर पर वर्षीतप के पारणों का आयोजन था। गुरुदेव उस कार्यक्रम में उपस्थित थे। तीक्ष्ण गर्मी के प्रभाव से शरीर पसीने से लथपथ था। परन्तु एकाग्रतापूर्वक चार घंटे विराजमान रहें। गुरुदेव की काय-गुप्ति अनुपम एवं अनुमोदनीय थी।

**ऐसे महान साधक के चरणों में कोटि-कोटि नमन!**

गुरुदेव प्रतिलेखना के प्रति सदा सजग रहते थे

# 35 | प्रतिलेखना और गुरुदेव

**भारतीय संस्कृति एक प्राणवान संस्कृति है। यह त्यागमय भावनाओं से अनुप्राणित है। यहाँ किसी भी साधना को अपनाने से पूर्व उसकी हेय, ज्ञेय व उपादेयता के विषय में विस्तृत चर्चाएं हुई हैं। प्रज्ञा की कसौटी पर कसने के उपरांत ही तत्त्वदर्शियों ने संयम को जीवन का अंग बनाया है। वीतराग देव द्वारा प्ररूपित संयम साधना में प्रतिलेखना एक आवश्यक अंग है, जिसे हम साधक के जीवन में विवेक व अविवेक के मध्य खींची हुई एक लक्ष्मण रेखा भी कह सकते हैं। अयतना ( अविवेक ) जहाँ साधक को सावद्य क्रियाओं में लिप्त करती है वहीं प्रतिलेखना का विवेक साधक को साधना के प्रति सजग रखता है।**

संघशास्ता पूज्य गुरुदेव साधना के सजग प्रहरी थे। गुरुदेव की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म साधना में भी अहोभाव की दिव्यता थी। गुरुदेव का विचार था कि मुझे भगवान की आज्ञा का अनुपालन व आराधन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है।

दीक्षा के उपरांत जब मुझे गुरु चरणों में बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो गुरुदेव की दिनचर्या को देखकर मैं बड़ा ही अभिभूत हो जाता था। हृदय श्रद्धा से उनके चरणों में झुक जाता था। प्रात:काल गुरुदेव ओघे की प्रतिलेखना करते तो एक-एक फली का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करते थे। कहीं अनजाने में भी सूक्ष्म-से-सूक्ष्म जीव की विराधना न हो जाए तभी मैं विचार करता कि गुरुदेव की वृत्तियां साधना में कितनी दत्तचित्त हैं।

गुरुदेव प्रभु की सूक्ष्म साधना को भी महान कर्म-निर्जरा का साधन बना लेते थे। जब कभी गुरुदेव के शिष्य गुरुदेव के उपकरणों को प्रतिलेखना के भाव से उठाते तो गुरुदेव हमें निर्देश देते- नहीं, आज मैं स्वयं प्रतिलेखना करूँगा। गुरुदेव स्वयं प्रतिलेखना करते समय विशेष आनंद की अनुभूति करते थे।

गुरुदेव अक्सर गुरुदेव अपने सभी संतों को इंगित करते हुए समझाते कि सूर्य के प्रकाश में मौन पूर्वक एकाग्र होकर भाव पूर्वक प्रतिलेखना करें। संयम की पर्युपासना कर रहे मुनियों को गुरुदेव हित शिक्षा देते हुए फरमाते-प्रतिदिन दोनों समय (प्रात: एवं सायंकाल) अपनी संपूर्ण उपधि की प्रतिलेखना करो। जिसका आज तक मैं एवं मेरे संघस्थ मुनि अनुपालन कर रहे हैं।



जब कभी कारणवश अंधकार में चलते तो ओघे से प्रतिलेखना करते हुए मन्थर गति से आगे बढ़ते थे। गुरुदेवश्री के चलने के व्यवहार से ऐसा प्रतीत होता था कि भगवान की आज्ञा आशीर्वाद बनकर उनके जीवन में अवतरित हो गई हो। गुरुदेव का यह आचरण जिनशासन के प्रति उनके समर्पण को भी दर्शाता है।

प्रतिक्रमण करते समय गुरुदेव ओघे के साथ-साथ पूंजनी का भी प्रयोग करते थे। प्रत्येक आवश्यक की आज्ञा लेने से पूर्व वे आगे-पीछे भूमि का प्रमार्जन करके ही वंदन करते थे। उनके चरणों में बैठकर मुझे जो संस्कार मिले वह आज भी मेरे जीवन की धरोहर बने हुए हैं। गुरुदेव का आचरण जीवंत आगम-ज्ञान था। उनकी प्रत्येक क्रिया हमारे लिए

प्रेरणास्रोत थी। एक बार मैंने गुरुदेव से नियम लिया कि मैं पाक्षिक-पर्व पर पुस्तकों की प्रतिलेखना करूँगा। मेरे भाव जानकर गुरुदेव अत्यंत हर्षित हुए। उनके आशीर्वाद को मैंने आज भी स्मृति में संजोकर रखा है। किसी भी साधक की धर्म-क्रिया के प्रति सजगता देखकर गुरुदेव आनंदविभोर हो जाते थे। प्रोत्साहन के साथ-साथ उसकी खूब-खूब अनुमोदना भी करते थे।

अगर कोई मुनि प्रतिलेखना करते समय प्रमादवश वाणी का प्रयोग करता तो गुरुदेव उसे तुरंत सावधान कर देते। मुझे स्मरण है कि हम सब संत मिलकर गुरुदेव के उपकरण एवं वस्त्रादि की प्रतिलेखना करते थे। एक बार मुझे किसी कार्यवश आने में विलंब हो गया। मैंने देखा कि सभी वस्त्र प्रतिलेखित हो चुके थे। मैंने उदास होकर गुरुदेव के चरणों में निवेदन किया कि गुरुदेव मैं आज आपकी सेवा से वंचित रह गया। मेरा म्लान मुख देखकर गुरुदेव ने मुझे कंधे वाला वस्त्र (ओडना) देते हुए कहा,- मैंने यह तुम्हारे लिए संभालकर रखा है। मैंने प्रसन्नता के अहोभाव से उस वस्त्र को हाथों में लिया और श्रद्धापूर्वक प्रतिलेखना कर वापस लौटा दिया। मेरे निष्ठाभाव को देखकर गुरुदेव ने गद्‌गद् होकर मुझे आशीर्वाद देते हुए कहा,- *अरुण! तुम्हारे आचरण एवं श्रद्धाभाव को देखकर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम शीघ्र मोक्षगामी आत्मा हो। मेरा मन कहता है कि तुम्हारी भव-स्थिति अल्प रह गई है। गुरुदेव के श्रीमुख से यह शब्द सुनकर रोम-रोम प्रसन्नता से खिल गया। सर्वस्व प्राप्ति के भाव ने मुझे कृतकृत्य कर दिया।*



प्रतिलेखना के विषय में गुरुदेव जितने स्वयं सजग थे, उतनी ही पारखी दृष्टि से शिष्यों का भी अवलोकन करते थे। उन्हें ज्ञात होता था कि मेरे संत किस रुचि से प्रतिलेखना कर रहे हैं। अगर कोई संत खड़े होकर पात्रों की प्रतिलेखना कर रहा होता तो गुरुदेव तुरंत उन्हें बोध देते कि खड़े होकर पात्रों का प्रतिलेखन करना अयतना का प्रतीक है। एक बार मैंने प्रतिलेखित वस्त्रों के ऊपर अप्रतिलेखित वस्त्र रख दिए। उसी क्षण गुरुदेव ने मुझे सावधान किया और मुझे भी अपनी भूल का अहसास हुआ।

यद्यपि गुरुदेव के दर्शनों हेतु प्रतिदिन भक्तों का सैलाब उमड़ता था परन्तु गुरुदेव कभी भी प्रतिलेखना के समय प्रमाद नहीं करते थे। गुरुदेव अपनी पाठ्य-सामग्री की भी समय-समय पर प्रतिलेखना करते थे। एक बार गुरुदेव ने मुझे नीचे हाल में प्रवचन के पाट पर गत्ता बिछाने की आज्ञा दी। गुरुदेव की आज्ञा में सदैव शिक्षा का समन्वय रहता था। जब मैं पाट पर गत्ता बिछाकर ऊपर आया तो गुरुदेव मेरी सारी क्रिया को भी निहार रहे थे। गुरुदेव ने मुझे अपने समीप बुलाकर कहा-तुम्हें गत्ता बिछाने से पूर्व पाट की प्रतिलेखना करनी चाहिए थी। मैंने इस गलती को पुनः न दोहराने का संकल्प लेकर गुरुदेव श्री के चरणों में क्षमा-याचना की। आज तक मेरी अपने मुनियों को भी यही प्रेरणा रहती है कि आसन बिछाने से पूर्व प्रतिलेखना अवश्य करें।

**ऐसे संयम सजग गुरुदेव श्री के चरणों में शत-शत नमन!**

# गुरुदेव समय पर प्रतिक्रमण के लिए सदा सजग रहते थे

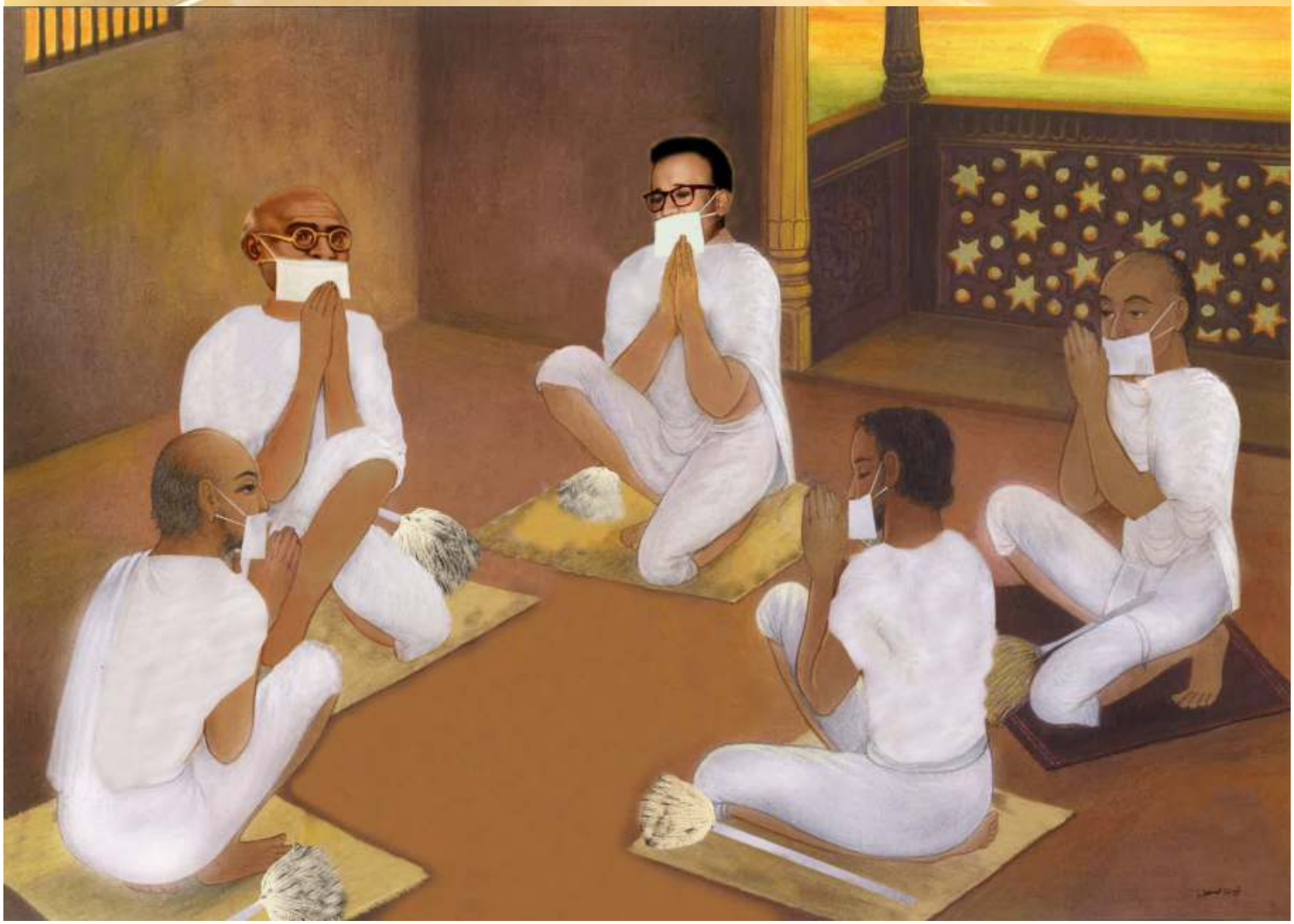

# 36 | प्रतिक्रमण और गुरुदेव

**प्रतिक्रमण** का बत्तीस आगमों में आवश्यक सूत्र के रूप में महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रतिक्रमण छः आवश्यक अनुष्ठानों में से एक हैं। जैन धर्म में प्रतिक्रमण एक आवश्यक कर्म है, जिससे मन वचन काय के द्वारा पूर्वकृत- कृतकारित अनुमोदना से सेवित दोषों का विमोचन करना, विशोधन करना, पश्चात्ताप करना, प्रायश्चित ग्रहण कर पुनः अपनी ग्रहण की गयी मर्यादा में लौट आना प्रतिक्रमण कहलाता है। प्रतिक्रमण से साधक प्रमाद जन्य दोषों से निवृत्त होकर आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित होता है। प्रतिक्रमण वीतराग पथ पर अग्रसर होने वाले साधक का प्राण है। गुरुदेव प्रतिक्रमण के इस गंभीरतम रहस्य से भलीभांति परिचित थे।



गुरुदेव के मन में न कोई पद-लिप्सा थी, न ही भवन-निर्माण की आकांक्षा, न ही प्रचार-प्रसार की महत्त्वाकांक्षा। उनके जीवन का एक मात्र लक्ष्य था। साधना द्वारा आत्म-साक्षात्कार। गुरुदेव श्रमणत्व की गहन गंभीर सूक्ष्मतम साधना के आराधक थे। गुरुदेव ने साधना की प्रत्येक प्रक्रिया को भावपूर्वक जीवन में धारण किया। उन्हीं धर्मक्रियाओं में प्रतिक्रमण का प्रमुखतम स्थान है। गुरुदेव की भावपूर्वक विधि सहित प्रतिक्रमण करने की शैली अनिर्वचनीय है। गुरुदेव जब भाव-सहित शुद्ध उच्चारण के साथ प्रातः एवं संध्या कालीन प्रतिक्रमण करते, तो उनकी इस सरस विधि को देखकर दर्शक का मन गद्‌गद् हो जाता था। गुरुदेव प्रतिक्रमण की आज्ञा लेते समय पूर्णरूप से तिक्खत्तों के पाठ का विधिपूर्वक उच्चारण करते। और घुटने टेककर वंदन नमस्कार करते थे।

सन् 1981 में मैं गुरुदेव के चरणों में जब वैरागी बनकर आया तो गुरु-कृपा से मैंने एक सप्ताह में ही सामायिक सूत्र, पच्चीस बोल और प्रतिक्रमण कंठस्थ कर लिया। गुरुदेव ने मुझे प्रतिक्रमण कंठस्थ करवाते समय सूत्र-शुद्धि व उच्चारण शुद्धि पर विशेष रूप से ध्यान देने का निर्देश दिया। क्योंकि मेरी भाषा पंजाबी थी। अतः कई बार उच्चारण में त्रुटि हो जाती। गुरुदेव ने कई पाठ पुनःपुनः उच्चारण करवा कर शुद्ध करवाए। गुरुदेव मुझसे पुनः पुनः सूत्रों का उच्चारण करवाते और मैं भी श्रद्धाभाव से बार-बार सूत्रों को सुनाता। गुरुदेव की जितनी रूचि मुझे प्रतिक्रमण कंठस्थ करवाने की थी, मैं भी उतनी लगन से सूत्रों को दोहराता। गुरुदेव बुटाणा से गोहाना पधारे। जहां तीन दीक्षाओं का भव्य आयोजन था। वहां पूज्य गुरुदेव तपस्वी श्री बद्रीप्रसाद जी महाराज भी विराजमान थे। गुरुदेव ने मुझे आदेश दिया कि पूज्य तपस्वी जी महाराज को शुद्ध रूप से प्रतिक्रमण सुनाओ। मैंने प्रतिक्रमण सुनाना प्रारंभ किया ही था कि तभी गुरुदेव ने इंगित करते हुए मुझे अपने समीप बुलाकर पूछा-क्या तुमने प्रतिक्रमण सुनाने से पूर्व तपस्वी जी महाराज को वंदना कर आज्ञा ली है? मुझे अपनी त्रुटि का अहसास हुआ। मैंने क्षमायाचना करते हुए पुनः तपस्वी जी महाराज को वंदन कर प्रतिक्रमण सुनाया। मुझसे प्रतिक्रमण सुनकर तपस्वी जी महाराज बहुत प्रसन्न हुए। मेरे शीश पर हाथ रखते हुए शाबाशी दी। गुरुदेव के समीप जाकर तपस्वी जी महाराज ने फरमाया। महाराज! यह बालक पूर्ण रूप से योग्य है। तीन दीक्षाएं होने जा रही है। यदि आप उचित समझते तो इसे भी संयम-रत्न देकर लाभान्वित कर सकते है। मेरी तरफ से पूर्णरुपेण सहमति है। गुरुदेव ने प्रश्नसूचक दृष्टि से मेरी ओर देखा। मैंने कहा-अभी पन्द्रह

दिन के स्वल्प वैराग्यकाल में मेरे परिजन मुझे दीक्षा की अनुमति नहीं देंगे। उस समय यह मेरा ही अतंराय कर्म था। अन्यथा पन्द्रह दिन के वैराग्यकाल में गुरुदेव का कृपा-वर्षण मेरे ऊपर हो गया था।

जब मैंने प्रतिक्रमण स्मरण किया तो गुरुदेव मुझसे पृथक रूप से प्रतिक्रमण सुनते थे। यदि सामूहिक रूप से प्रतिक्रमण किया तो सभी त्रुटियां निकालेंगे। जिससे मुझे घबराहट होगी। अत: गुरुदेव ने एकांत रूप से मुझे निष्णात बनाया। गुरुदेव प्रतिक्रमण सुनते समय प्रतिक्रमण की विधि व सावधानियों की भी शिक्षा देते। गुरुदेव फरमाते प्रतिक्रमण के मध्य में यहां तक संभव हो उठकर नहीं जाना चाहिए। प्रतिक्रमण की संपूर्ण विधि से अवगत करवाया। किस पाठ को किस विधि से करना है। और उस सूत्र के उच्चारण के पीछे क्या रहस्य है ? प्रतिक्रमण मौन रहकर विधिपूर्वक करना। प्रात:कालीन प्रतिक्रमण के पश्चात् निद्रा नहीं लेनी। इत्यादि समस्त शिक्षाएं देकर मुझे प्रतिक्रमण की उपयोगिता व कर्म-निर्जरा के रहस्य से अवगत करवाया। दीक्षा के उपरांत 1983 के बरनाला चातुर्मास में मैं ज्वर से पीड़ित हो गया। उस समय गुरुदेव प्रात:काल मेरे मस्तक पर स्नेहसिक्त हाथ फेरते हुए प्रतिक्रमण सुनाते रहे। ऐसे करूणाशील गुरुदेव नियम साधना के प्रति पूर्णत: सजग थे।

सन् 1998 के अंबाला चातुर्मास में गुरुदेव का स्वास्थ्य अनुकूल नहीं था। फिर भी गुरुदेव बैठकर प्रतिक्रमण करते। अक्सर संत गुरुदेव को आग्रह करते कि आप लेटकर प्रतिक्रमण श्रवण कर ले। पर गुरुदेव साधना के प्रति सजग थे। आगमिक पाठ अधिकतर बैठकर ही श्रवण करते थे। कैंथल में पूज्य शांति चन्द्र जी महाराज अस्वस्थ थे। अत: वे पृथक् कक्ष में विश्राम करते थे। 1999 में गुरुदेव के घुटनों में भी असहाय पीड़ा थी। फिर भी गुरुदेव प्रतिक्रमण की आज्ञा लेकर उनके कक्ष में साता-पृच्छा के लिए जाते थे।

गुरुदेव के हृदय में प्रतिक्रमण करने के साथ-साथ श्रावकों में भी प्रतिक्रमण के प्रचार-प्रसार की बलवती भावना थी। त्रिनगर चातुर्मास में मुझे आज्ञा दी कि यहां श्रावकों को प्रतिक्रमण के लिए तैयार करना है। मैंने विनय पूर्वक गुरु आज्ञा को शिरोधार्य कर प्रयत्न प्रारंभ किया। गुरु-कृपा से उस चातुर्मास में लगभग 40 भाई-बहनों ने प्रतिक्रमण कंठस्थ किया। आज भी वे श्रावक संवत्सरी के अवसर पर स्थान-स्थान पर प्रतिक्रमण करवाते हैं। उत्तर भारत के श्रावक-श्राविकाओं में सामायिक की रूचि अधिक थी। परन्तु प्रतिक्रमण के प्रति रूझान कम था। हरियाणा के भद्र श्रावकगण तो प्रतिक्रमण के गूढ़ शब्दार्थ को कम समझ पाते थे। परन्तु हरियाणा में भी धीरे-धीरे शिक्षा का प्रचलन बढ़ा तो गुरुदेव ने श्रावकों में प्रतिक्रमण सीखने की भावना को जाग्रत किया। जिस कारण हरियाणा में भी कई भाई-बहनों ने प्रतिक्रमण कंठस्थ किया।

गुरुदेव अपने जीवन की अंतिम बेला तक देवसिय व रात्रि प्रतिक्रमण के प्रति सजग थे। 23 अप्रैल 1999 की रात्रि गुरुदेव गंगाराम अस्पताल के समीप कोठी में विराजमान थे। वहां पर भी उन्होंने सजगतापूर्वक प्रतिक्रमण किया। गुरुदेव श्री के कार्यकाल में ही साधु-प्रतिक्रमण पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो गया था।

जब-जब भी संघ का सम्मेलन आयोजित होता। गुरुदेव प्रतिक्रमण से पूर्व सभी संतों से भावपूर्वक वंदन लेते और सभी को आशीर्वाद प्रदान करते। गुरुदेव को प्रतिक्रमण के समय अनुशासन हीनता कतई पसंद नहीं थी। त्रुटियां अथवा विलंब होने पर वे अपने मुनि को उलाहना भी देते थे। गुरुदेव की शिक्षा थी कि साधक को संयम के प्रत्येक अनुष्ठान को सजगतापूर्वक करना चाहिए। गुरुदेव प्रतिक्रमण से पूर्व सभी संतों को सामूहिक रूप से मंगल पाठ भी सुनाते थे। संभवत: मांगलिक सुनाने की परम्परा का आरंभ गुरुदेव ने ही प्रारंभ किया था। इस प्रकार गुरुदेव ने आजीवन प्रतिक्रमण की अहोभाव से आराधना की।

**ऐसे संयमी गुरुदेव को बारंबार नमन्!**

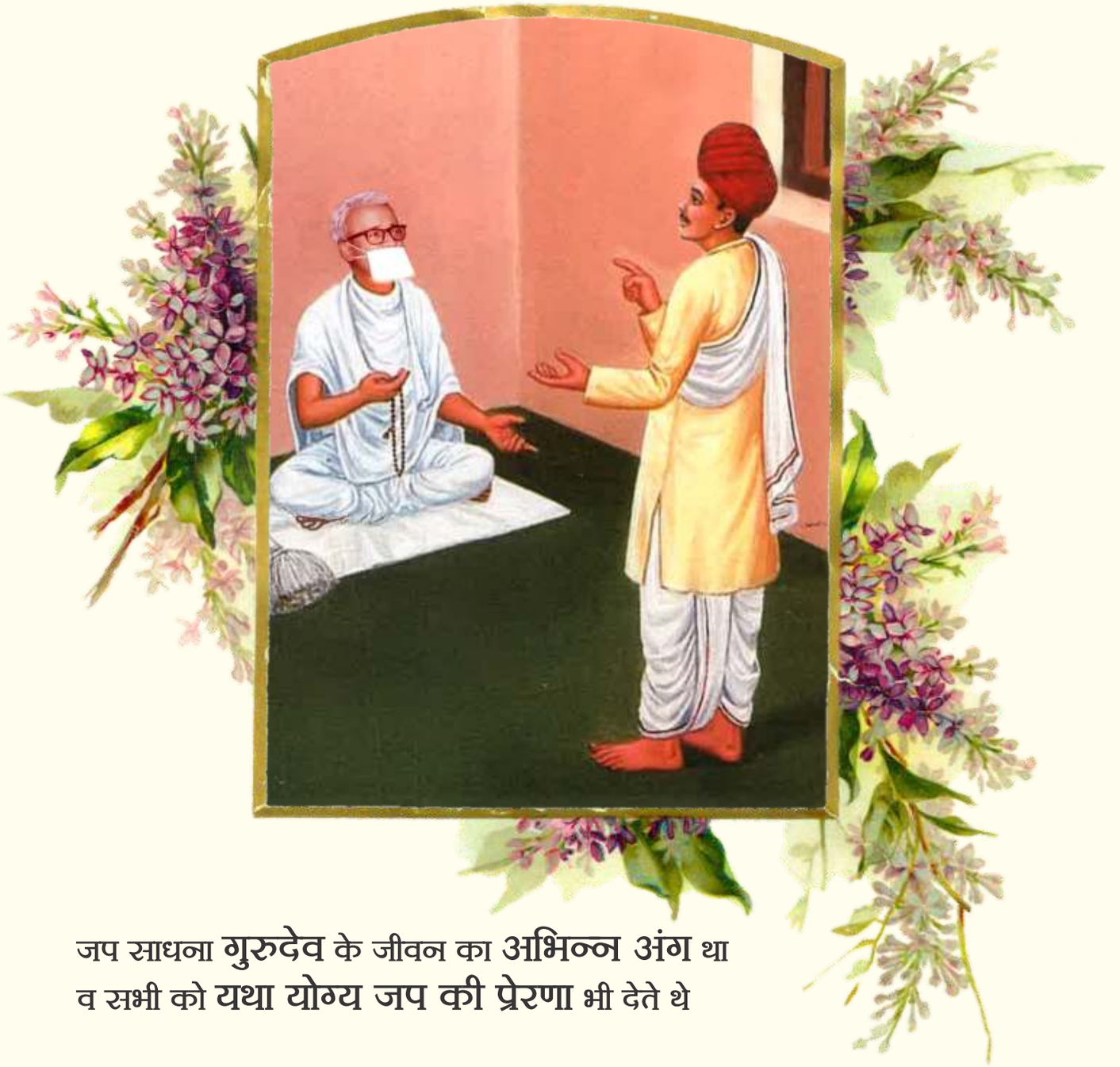

जप साधना **गुरुदेव** के जीवन का **अभिन्न अंग** था
व सभी को **यथा योग्य जप की प्रेरणा** भी देते थे

# 37 | जप साधना और गुरुदेव

**'जपात् सिद्धि जपात् सिद्धि**
**जपात् सिद्धि न सशंयः।'**

**किसी** महान् आचार्य द्वारा कथित उपरोक्त वाक्य जप-साधना के महत्त्व को वर्णित करता है। परम तत्त्व की उपासना व प्राप्ति के लिए जप साधना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन साहित्य में भाष्य-जाप, उपांशु जाप व मानस जाप का उल्लेख मिलता है। प्रत्येक धर्म व परम्परा में अपने आराध्य की भक्ति के लिए माला-जाप का विधान है। जप करने से मानसिक शक्ति के साथ-साथ सकारात्मक ऊर्जा में अभिवृद्धि होती है। गुरुदेव बाल्यकाल से ही जप-साधना के प्रति विशेष रूप से आस्थावान थे।

गुरुदेव का दसवीं कक्षा में शारीरिक विकृति के कारण एक पेपर ठीक नहीं हुआ। गुरुदेव का मन उदास हो गया। मानसिक स्वास्थ्य के लिए गुरुदेव ने नवकार महामंत्र का जाप किया। शेष पेपर बहुत अच्छे हुए। परन्तु जब परिणाम आया तो आश्चर्य की बात यह थी कि शेष पेपरों के साथ-साथ गुरुदेव ने उस पेपर में भी अच्छे अंक अर्जित किए, जो ठीक नहीं हुआ था।

जप-साधना उनके जीवन का अभिन्न अंग था। जब मैंने दीक्षा के पश्चात् प्रथम बार बरनाला चातुर्मास में गुरुदेव को रात्रि में जप-साधना में अवस्थित देखा, तो मेरे मन में भी जप के प्रति विशेष अनुराग उत्पन्न हुआ। मैं भी उठकर बैठ गया। गुरुदेव का ध्यान जब मेरी ओर गया तो गुरुदेव बहुत प्रसन्न हुए। एक दिन गुरुदेव ने कृपा कर फरमाया-जप साधना के संस्कार मुझे लघुवय से ही वाचस्पति गुरुदेव से प्राप्त हुए हैं। वाचस्पति गुरुदेव फरमाते थे, रात्रि साधना कर के ही साधु सच्ची संपदा का संचय करता है। वाचस्पति गुरुदेव के संस्कार गुरुदेव में आए और गुरुदेव ने उन्हीं संस्कारों का बीजारोपण हममें किया। तब से लेकर आज तक सूर्योदय से पूर्व उठकर स्वाध्याय, जाप इत्यादि जीवन का नित्यक्रम बन गया है। यह सब गुरुदेव की कृपा का ही सुफल है।

पूज्य गुरुदेव ने श्री राजेन्द्र मुनि जी को भी बरनाला चातुर्मास में शारीरिक स्वास्थ्य एवं रोग मुक्ति हेतु एक विशेष मंत्र का जप करने का निर्देश दिया था। वह मंत्र कितना प्रभावशाली सिद्ध हुआ है। मैं उस विषय पर चर्चा नहीं करना चाहता। परन्तु गुरुदेव का यह निर्देश जप के प्रति अनन्य आस्था का संकेत अवश्य है।



सन् 1975 के होशियारपुर चातुर्मास में गुरुदेव श्री की आज्ञा से श्री विनयचन्द्र जी महाराज ने भगवान महावीर निर्वाण दिवस पर एक साथ श्री उत्तराध्ययन सूत्र की सभा में स्वाध्याय की। भगवान महावीर के निर्वाण दिवस पर गुरुदेव ने संघ में एक स्थायी स्तंभ स्थापित किया। दीपावली के दिन मध्याह्न में बहनों को रात्रि में सभी भाईयों के लिए जप, स्वाध्याय व मांगलिक श्रवण की परम्परा प्रारंभ की। संघ में यह प्रथा आज भी गतिमान है।

सन् 1987 में पूज्य शास्त्री पद्मचन्द्र जी महाराज तथा मैं जब पंजाब में चातुर्मास के लिए प्रस्थान कर रहे थे। उस समय पंजाब में आतंकवाद के प्रभाव को देखते हुए गुरुदेव ने विशेष मंत्र की साधना करने का निर्देश दिया। जो आज भी मेरे जीवन का अंग बनी हुई है। गुरुदेव का स्मरण करते हुए मेरा मन आज भी अहोभाव से भर जाता है। जब गुरुदेव ने मुझे जींद में आगमों से पांच गाथाओं की महिमा समझाते हुए कहा था कि यह गाथाएं सर्वथा मांगलिक है। यह तुम्हारे उत्थान में

सहायक सिद्ध होगी। गुरुदेव ने मुझे अंबाला में अपनी प्राचीन धरोहर के रूप में रखी हुई तीन डायरियां दिखाई। एक डायरी में गुरुदेव द्वारा हस्तलिखित स्तोत्र व मंत्र पाठ थे। जिसकी साधना गुरुदेव प्रतिदिन करते थे। दूसरी डायरी में वरिष्ठ संतों द्वारा हस्तलिखित मंत्र थे। तीसरी डायरी में भी आगमों में वर्णित मांगलिक गाथाओं व मंत्रों का अखूट खजाना था। गुरुदेव ने मुझ जैसे लघु शिष्य पर अपनी कृपा का मेघ बरसाते हुए कृतकृत्य कर दिया। वह संपदा भी मेरे पास धरोहर के रूप में सुरक्षित है।

गुरुदेव की दिनचर्या का अधिकतर समय जप-पाठ व स्वाध्याय में ही व्यतीत होता था। जब मैंने दीक्षा ग्रहण की तो गुरुदेव अधिकांशत: रेडियम की माला पर जाप किया करते थे। कभी-कभी जागरुकता को बनाए रखने के लिए तर्जनी अंगुली में मणका दबाकर आगे सरकाते थे। गुरुदेव कई गृहस्थों को भी आर्तध्यान से बाहर निकालने के लिए मंत्र पाठ की साधना बताते थे। गुरुदेव अधिकतर समय शास्त्रीय गाथाओं का ही पाठ करते थे, दिल्ली में त्रिनगर चातुर्मास में गुरुदेव ने विशेष साधना प्रारंभ की जिसके अंतर्गत वे अपने मुनियों को भी पाठ सुनाते थे। कई अवसरों पर मुझे भी वह पाठ श्रवण सौभाग्य प्राप्त हुआ। परन्तु प्रत्येक रहस्य को उद्घटित नहीं किया जा सकता। यह बात गुरुदेव के जप के प्रति आस्था को प्रकट करने के लिए वर्णित की गई है।



जब हम राजस्थान का प्रवास संपन्न कर गुरुचरणों में उपस्थित हुए। उस समय मैंने गुरुदेव को बताया कि राजस्थान में पूज्य आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज ने एक शास्त्रीय गाथा कॉपी पर लिख कर दी है। गुरुदेव गाथा पढ़कर अतीव प्रसन्न हुए। गुरुदेव ने फरमाया-यह शास्त्रों की सारगर्भित गाथा है। तुम इसकी स्वाध्याय करना। मैं भी इस गाथा की अराधना करूंगा। गुरुदेव प्रतिदिन लगभग 2000 गाथाओं की स्वाध्याय करते थे। मैं गुरुदेव के जीवन की अद्भुत जप साधना पद्धति से अत्यंत प्रभावित रहा हूं। एक महान् जप साधक के रूप में उनकी छवि आज भी मेरे मानस पटल पर अंकित है। स्वाध्याय व जप की परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए गुरुदेव ने संघ में एक विधान स्थापित किया कि प्रत्येक मुनि नंदिसूत्र की स्वाध्याय करे। एवं प्रतिदिन पांच सौ आगम गाथाओं का परायण करे।

गुरुदेव का स्वाध्याय के प्रति श्रद्धा व सम्मान कितना गहन था। इस बात का अनुमान आप इस बात से लगा सकते हैं। गुरुदेव अपने जीवन का अंतिम वर्षावास अंबाला में व्यतीत कर रहे थे। गुरुदेव संध्याकाल के समय गैलरी में विराजमान थे। किसी कार्यवश उन्हें भवन के दूसरे तल तक जाना था। परन्तु मध्य में प्रवचन हॉल था। जहां मुनिराज धर्मशिक्षा की क्लास ले रहे थे। गुरुदेव ने सोचा कि यदि हॉल के मध्य होते हुए गया तो वहां सभी को खड़े होना पड़ेगा। जिसके स्वाध्याय में भी व्यवधान होगा। अत: गुरुदेव शारीरिक अशक्तता होते हुए भी दूसरी ओर से ऊपर की सीढ़ी चढ़कर द्वितीय तल तक पधारे। उनके मन में यही भाव था कि मेरी किसी भी गतिविधि से धर्मकार्य में बाधा उत्पन्न न हो।

जप व स्वाध्याय के प्रति गुरुदेव प्रारंभ से ही श्रद्धाशील थे। एक बार आचार्य श्री गणेशीलाल जी महाराज ने चातुर्मास में किसी विशेष उपद्रव की शांति के लिए विनयचंद्र चौबीसी का पाठ दिया। जिसकी गुरुदेव ने तन्मयतापूर्वक उपासना की। जिसके चमत्कारिक प्रभाव को भी गुरुदेव ने अपने जीवनकाल में अनुभव किया। मुझे भी पूज्य श्री शांतिचन्द्र जी महाराज ने काली सुकाली के पाठ की विधिपूर्वक आराधना का निर्देश दिया। इस पाठ में कई अलौकिक रहस्य समाहित है। आज उत्तरभारत में श्रद्धालुगण इस पाठ का श्रद्धापूर्वक जाप करते हैं। जब मैंने पूज्य श्री से इस पाठ का विषयक प्रश्न किया तो उन्होंने फरमाया कि यह दिव्य पाठ मुझे गुरु-कृपा से प्राप्त हुआ था। गुरुदेव द्वारा प्रदत्त संस्कारों के कारण आज भी हमारे मन में जप-पाठ के प्रति विशेष रूचि है।

**ऐसे जप-साधक गुरुदेव को कोटिश: वंदन!**

संत चलते फिरते तीर्थ रूप होते हैं
इसलिए गुरुदेव संत समागम
का अवसर कभी नहीं छोडते थे

# 38 | संत मिलन और गुरुदेव

**संस्कृत** साहित्य का एक प्रसिद्ध श्लोक है–

**साधूनां दर्शनं पुण्यं, तीर्थभूता हि साधवः।**
**कालेण फलते तीर्थं, सद्यः साधुसमागम।।**

अर्थात् संतों के दर्शन ही महान पुण्यफल प्रदान करते हैं। क्योंकि संतजन चलते–फिरते तीर्थ रूप हैं। संभवत: तीर्थ कालान्तर में फलित हो। परन्तु संतों का समागम (सत्संगति) से तत्क्षण सुपरिणाम प्राप्त होता है।

संतों के दर्शन अत्यंत दुर्लभ होते हैं। वे लोग महान पुण्यशाली होते हैं, जिन्हें संतदर्शन व सेवा का सौभाग्य प्राप्त होता है। इस संबंध में पूज्य गुरुदेव का पुण्य प्रबल था क्योंकि उन्हें बाल्यकाल से ही संतों के सान्निध्य में सेवा व सत्संग का लाभ प्राप्त हुआ। वास्तव में गुरुदेव की आध्यात्मिक यात्रा अपने दादा श्री जग्गुमल जी की गोद में ही प्रारंभ हो गई थी। क्योंकि दादा श्री जग्गुमल जी अपनी दिनचर्या का अधिकतम समय संतसेवा में ही व्यतीत करते थे। रोहतक में पूज्य श्री रामनाथ जी महाराज स्थिरवास थे। इस कारण गुरुदेव को उनके पावन दर्शनों का सहज लाभ प्राप्त होता रहता था। उस अवसर पर स्थानक भवन में विराजित अन्य संतों का भी दर्शन लाभ प्राप्त हुआ होगा।

संभवत: गुरुदेव ने बाल्यकाल में ही पूज्य छोटेलाल जी महाराज एवं पूज्य योगीराज श्री रामजीलाल जी महाराज के भी दर्शन किए है। महान उपकारी संयम प्रदाता पूज्य वाचस्पति गुरुदेव का उन्हें बचपन में ही सान्निध्य प्राप्त हुआ। परन्तु वाचस्पति गुरुदेव के प्रथम दर्शन गुरुदेव ने कहाँ किए इसका कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है।

सन् 1932 में राजस्थान परम्परा के महान आचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज से गुरुदेव ने समकित ग्रहण की। तत्पश्चात् सन् 1933 के आसपास पंजाब केसरी पूज्य श्री प्रेमचंद जी महाराज के दर्शन कर अपनी आत्मा को तृप्त किया। पूज्य अमींलाल जी महाराज से शिक्षाप्रद कथाओं का श्रवण किया। पूज्य तपस्वी श्री निहालचंद जी महाराज की संयममय जीवन शैली को निहारा।

इसे पूर्वभव के संस्कार कहें अथवा गुरुदेव का प्रबल पुण्य कि उन्हें उन महान संतों की जीवन शैली में अपने भावी जीवन की झलक दिखाई देने लगी थी। सन् 1937 के पश्चात् गुरुदेव ने पूज्य तपस्वी श्री रोशनलाल के दर्शनों से अपने नेत्रों को पवित्र किया। उसी अंतराल में पूज्य धर्म दिवाकर श्री चौथमल जी महाराज एवं आचार्यश्री खूबचंद जी महाराज की पावन झलक भी प्राप्त की। इसी अवसर पर आचार्यश्री काशीराम जी महाराज के रोहतक में अपने पैतृक निवास पर दर्शन किए। सन् 1940 में हिसार में विराजित श्री कस्तूरचंद जी महाराज एवं सिरसा में विराजमान तपस्वी श्री केसरीचंद जी महाराज से भी भेंट हुई।

1940 में पूज्य गुरुदेव की जीवन चुनरियां वैराग्य के मजीठिया रंग से ओतप्रोत हो चुकी थी। अपने दादा को ढूँढते–ढूँढते जब वे फिरोजपुर पहुँचे तो वहाँ उन्हें दादा गुरुदेव पूज्य श्री नाथूलाल जी महाराज के दर्शन हुए। सन् 1941 में वैराग्यावस्था में ही रायकोट में विराजित तात्कालिक उपाध्याय पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज के पावन दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

सन् 1942 में संगरूर में गुरुदेव के दीक्षा महोत्सव पर उन्हें एक

साथ 33 संतों के दर्शनों का महान सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिनमें कुछ प्रमुख संतों के नाम पढ़कर पाठक भी अपनी जिह्वा को पावन करें। उपाध्याय श्री आत्माराम जी महाराज, श्री प्रेमचंद जी महाराज (मनोहर परंपरा), कविरत्न श्री अमरमुनि जी महाराज, गणावच्छेदक श्री बनवारी लाल जी महाराज, तपस्वी श्री पन्नालाल जी महाराज इत्यादि।

सन् 1945 में पूज्य तपोधन श्री बद्री प्रमाद जी महाराज, श्री सेठ जी महाराज, श्री रामप्रसाद जी महाराज भी संत परम्परा में दीक्षित होकर अपने संयमी जीवन का उज्जवल अध्याय प्रारंभ कर चुके थे। गुरुदेव श्री का सन् 1944 का चातुर्मास पूज्य श्री मूलचंद जी महाराज के सान्निध्य में हुआ। समय-समय पर गुरुदेव का पूज्य श्री फूलचंद जी महाराज (श्रमण), पूज्य रणसिंह जी महाराज, श्री नेकचंद जी महाराज के साथ पावन समागम भी हुआ।

पूज्य वाचस्पति गुरुदेव अपने शिष्य रत्न की योग्यता एवं संयम के गुणों के प्रति पूर्णत: आश्वस्त थे। अपने शिष्य की प्रतिमा को निखारने व उनकी सेवा व समन्वय वृत्ति को प्रोत्साहन देने के लिए वाचस्पति गुरुदेव ने अपने प्रियतम शिष्य के कई चातुर्मास कितने ही महापुरुषों के सान्निध्य में करवाकर उन्हें संत एवं शासन सेवा का सुअवसर प्रदान किया।

सन् 1947 में गुरुदेव का पूज्य श्री बनवारीलाल जी महाराज एवं पूज्य श्री फकीरचंद जी महाराज के साथ चातुर्मास हुआ। सन् 1948 में श्री रामेश्वर जी महाराज के संग चातुर्मास किया। 1950 में श्री रामचंद्र जी महाराज, श्री हुक्मचंद जी महाराज के साथ चातुर्मास का लाभ प्राप्त हुआ। पूज्य भंडारी जी महाराज ने भी गुरुदेव को हृदय से कई बार अपने साथ रहने का आमंत्रण दिया। 1951 के पश्चात् गुरुदेव को देशभर के महान् आचार्यों, उपाध्यायों एवं वरिष्ठ संतों के दर्शन व सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ। गुरुदेव समय-समय पर पूज्य आचार्य श्री गणेशीलाल जी महाराज, श्री नानालाल जी महाराज, श्री हस्तीलाल जी महाराज, ज्योतिषाचार्य श्री कस्तूरचंद जी महाराज, मालव प्रांतीय श्री विनय मुनि जी महाराज, राजस्थान केसरी उपाध्याय पूज्य श्री पुष्कर मुनि जी महाराज, तपस्वी श्री रोशनलाल जी महाराज, श्री भागमल जी महाराज, श्री त्रिलोकचंद जी महाराज, श्री सुशील मुनि जी महाराज, श्री शुक्लचंद जी महाराज के पावन संपर्क में भी आए।

सन् 1972 में अंबाला में तपस्वीश्री सुदर्शन मुनि जी एवं 1975 में श्री शिवमुनि जी से भी भेंट की। पूज्य रघुवरदयाल जी महाराज, श्री रामकुमार जी महाराज, श्री भद्रमुनि जी महाराज, श्री सतीश मुनि जी महाराज जैसे महान् संतों के भव्य दर्शन भी किए।

अपने जीवन काल में गुरुदेव की कई महासतियों से भी भेंट हुई। भले ही वे महासतियां उनके संघ से पृथक् ही क्यों न रही हो। परन्तु गुरुदेव का आत्मीय आशीर्वाद सभी साध्वियों पर एक समान वर्षण करता था। गुरुदेव की महासाध्वी श्री सुंदरी जी महाराज, श्री मगन श्री महाराज, श्री कैलाशवती जी महाराज, श्री स्वर्णकांता जी महाराज, श्री आज्ञावती जी महाराज, श्री सुमित्रा जी महाराज, श्री संतोष जी महाराज, श्री विनयवंती जी महाराज, श्री तिलकसुंदरी जी महाराज, आदि अनेक साध्वियों से भेंट हुई।

गुरुदेव के कई राजस्थानी संतों के साथ भी मधुर संबंध थे। जैसे श्री शांतिमुनि जी महाराज, श्री पारसमुनि जी महाराज, महात्मा श्री जयंतिप्रकाश जी महाराज इत्यादि। 1992 के दिल्ली प्रवास में गुरुदेव ने श्री रामकृष्ण जी महाराज से 1996 में श्री ओममुनि जी महाराज के साथ भी साक्षात्कार किया। 1999 में श्री प्रेमचंद जी महाराज से अंतिम भेंट कर अपने जीवन की आलोचना की। समन्वयात्मक नीति के कारण गुरुदेव का समस्त परम्पराओं में स्नेह व सम्मान था।

**ऐसी महान पुण्यात्मा को बारंबार वंदन!**

गुरुदेव पर सर्वाधिक भजन सुनने को मिलते हैं स्वयं भी मधुर गायक थे

# 39 | भजन और गुरुदेव

**संसार** का प्रत्येक व्यक्ति अमरत्व का इच्छुक है। परन्तु शरीरिक दृष्टि से ऐसा कभी संभव नहीं हो सकता। फिर ऐसा कौन सा उपाय है जिससे व्यक्ति संसार से विदा होकर भी जन-जन की स्मृतियों में जीवित रहे। उसका जीवन जगत के लिए प्रेरणा बन जाए। ये कैसे संभव है? ऐसा व्यक्तित्व बनाने के लिए अपेक्षित है कि व्यक्ति जीवन में शताधिक पुस्तकों का लेखन करे अथवा ऐसी बेमिसाल जीवन शैली बनाए कि उसके व्यक्तित्व पर शताधिक पुस्तकों का लेखन हो सके।

संपूर्ण उत्तर भारत में गुरुदेव ही ऐसे अद्‌भुत व्यक्तित्व के धनी थे। जिन पर अनेकानेक कवियों ने रचनाएं लिखकर अपनी कलम को धन्य बनाया है। गुरुदेव के अपूर्व जीवन चारित्र को शब्दों में बांधने का प्रयास किया है। परन्तु महापुरुषों का अलौकिक जीवन चारित्र शब्दों की सीमा से अतीत है।

**सात समुद्र की मसि करूँ, लेखनी सब वन राय।**
**सब धरती कागज करूँ, गुरु गुण लिखा न जाए।।**

गुरुदेव की स्तुति में आज तक जितने रचनाकारों ने भजन लिखे हैं। संभवत: पंजाब परम्परा के 150 वर्ष के इतिहास में शायद ही किसी महापुरुष का इतना यशोगान हुआ हो। आज पूरे उत्तर भारत के लिए नवकार महामंत्र के पश्चात् कोई श्रद्धास्पद मंत्र है तो वह है 'श्री सुदर्शन गुरवे नम:।' यह मंत्र प्रत्येक भक्त के हृदय की धड़कन है। गुरुदेव हमसे दूर जाकर भी हमारे हृदय में बसे हुए हैं।

युगों-युगों के पश्चात् ऐसा व्यक्तित्व इस धरा पर अवतरित होता है। गुरुदेव की जीवन शैली में चुंबकीय आकर्षण था। जिस पर हजारों रूहानी भजन गाए जा चुके हैं।

सन् 1967 में सर्वप्रथम दीक्षा महोत्सव के उपलक्ष्य में भगवान श्री रामप्रसाद जी महाराज ने गुरुदेव को श्रद्धा नमन करते हुए भजन किया। जिसकी पंक्तियां कुछ इस प्रकार थी।

**सुदर्शन मुनि प्यारे, हमारे मन में।**
**समाए ज्यों पपीहा, मगन घन में।।**

जब इस भजन की रचना हुई तो यह इतना लोक विश्रुत हुआ कि जन-जन के होठों पर इसके शब्द थिरकने लगे। कालांतर में भगवन् श्री ने भाव-भक्ति से विभोर करने वाले कितने ही भजनों की रचना की। संतों की इस शृंखला में पूज्य श्री जयमुनि जी, श्री सुंदर मुनि जी, श्री राकेश मुनि जी, श्री सुनील मुनि जी एवं मुझ जैसे तुच्छ सेवक को भी गुरुदेव के जीवन पर भजन लिखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।



समय-समय पर अनेक संतों ने गुरुदेव का भजनों के माध्यम से गुणगान किया। उत्तर भारत के कई कवि सम्राटों ने गुरुदेव के महात्म्य को अपनी लेखनी में संजोने का सुंदर प्रयास किया। जिनमें मुख्यत: श्रावक श्री दरिया सिंह जी बडौदा वाले, श्री ओ.पी. हरियाणवी जी राजाखेडी वाले, श्री रमेश जी इसराणा वाले, श्री अरविंद जी सेक्टर-5 रोहणी दिल्ली से, श्री अभिषेक जी पानीपत से, श्री प्रेम तृषित जी जालंधर से, कविरत्न श्री विलायती राम जी जालंधर वाले इत्यादि श्रावकों के भजन लोगों को भक्ति रस में अवगाहन करवाते रहे।

गुरुदेव के भजनों से अपनी जिह्वा पवित्र करने वाले भक्तों की

लिस्ट तो बहुत लंबी है। उत्तर भारत में कोई न कोई संत या भक्त गुरुदेव पर लिखे भजनों को आज भी प्रतिदिन गुनगुनाता है। हजारों घरों में गुरुदेव के पवित्र नाम की आरती का सस्वर संगान किया जाता है।

गुरुदेव के देवलोक गमन पश्चात् गुरुदेव के चारित्रक गुणों को प्रकाशित करने वाला विशेषांक महावीर मिशन एवं आर्यवज्र स्वाध्याय संघ की ओर से मुद्रित किया गया। पूज्य श्री जयमुनि जी महाराज ने गुरुदेव के कालजयी व्यक्तित्व को लिपीबद्ध किया। गुरुदेव के जन्मशताब्दी महोत्सव पर मुझे अन्त:स्फुरना हुई कि मैं भी अपने श्रद्धेय गुरुदेव के चरणों में भक्ति का अर्घ्य समर्पित करूँ अत: गुरुदेव की स्मृतियों एकत्रित कर एक पुष्पमाला में गूंथने का तुच्छ प्रयास किया है। आशा है गुरुदेव के चारित्र की माला जन-जन को सद्गुणों से सुगंधित बनाएगी।



आज उत्तर भारत में गुरुदेव का जीवन-चारित्र लोकप्रिय एवं सर्वाधिक स्वाध्याय किया जाने वाला धर्मग्रंथ बन गया है। गुरुदेव के जीवन चारित्र की सर्वाधिक प्रतियां वितरित हुई है। श्रावक वर्ग गुरुदेव के जीवन चारित्र को इस प्रकार सम्मान देता है। जैसे लोग आगम ग्रंथ रामायण एवं गीता का सम्मान करते हैं। लोगों द्वारा इसकी अनेकों बार स्वाध्याय की गई है। इस पुस्तक पर कई परीक्षाओं का आयोजन भी हुआ है। गुरुदेव श्री का व्यक्तित्व इतना उच्च था कि यदि हम अपने भावों को लिपीबद्ध करे तो शब्द भी समाप्त हो जाए।

**ऐसे शब्दातीत महान व्यक्तित्व को बारम्बार वंदन!**

हे आत्मन्
हे निर्मल चेतना
तू स्वयं संपूर्ण है।

गुरुदेव चमत्कार में विश्वास नहीं रखते थे परन्तु चमत्कार उनका अनुगमन करते रहते थे

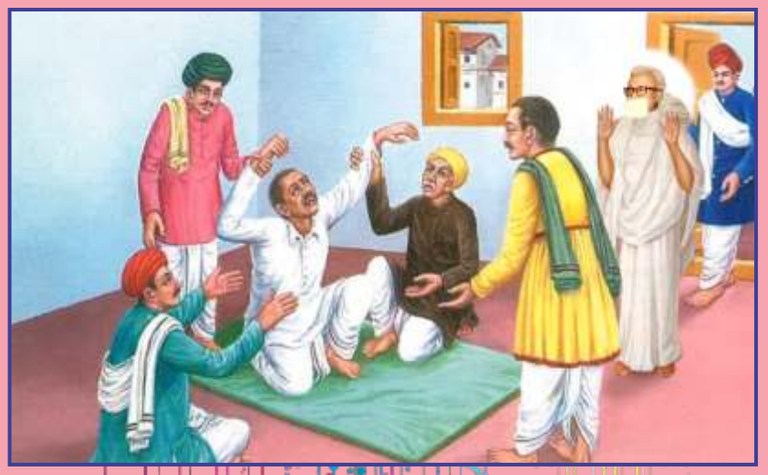

# 40 चमत्कार और गुरुदेव

**मानव** मन की यह सहज प्रकृति है कि वह चमत्कार की ओर अनायास ही आकर्षित हो जाता है। एक प्रचलित किंवदंती है 'चमत्कार को नमस्कार' जैन संत लोकेषणा से प्रभावित होकर कभी चमत्कार का आश्रय नहीं लेता। साधना के पथ पर अनेकों उपलब्धियां सहज प्राप्त हो जाती है। जिसे जन-साधारण चमत्कार मानने लगते हैं। प्रत्येक महापुरुष के जीवन में अनेकों चमत्कारिक घटनाएं होती हैं। इस लेख के माध्यम से मैं सुधी पाठकों को यह स्पष्ट करना चाहता हूं कि गुरुदेव का चमत्कार के प्रति क्या दृष्टिकोण था।



मैंने 1981 से लेकर 1999 तक गुरुदेव के जीवन को निकटस्थ व दूरस्थ निहारा है। गुरुदेव जिनशासन के सच्चे मुनि थे, मदारी नहीं। लोगों को चमत्कृत करने का कार्य मदारी का होता है। एक सच्चा संत कभी चमत्कारों के पीछे नहीं भागता। परन्तु साधना के प्रभाव से प्रकृति भी साधक का अनुगमन करने लगती है। गुरुदेव की प्रत्येक अदा में अद्‌भुत आकर्षण था। मुख पर सरस्वती का निवास था जो बात मुख से कहते वह पत्थर की लकीर बन जाती ।

मैं गुरुचरणों के साथ हृदय की आस्था से समर्पित था। अत: मैंने कभी लौकिक चमत्कारों को महत्त्व नहीं दिया। परन्तु गुरुचरणों में रहते हुए मैंने जो भी अनुभव किया। उसका उल्लेख यहां अवश्य करना चाहूँगा। वैसे तो गुरुदेव का व्यक्तिव ही किसी महान् चमत्कार से कम नहीं था। फिर भी उनके जीवन के कुछ अतिशय तथ्यों का वर्णन करना चाहता हूं।

**1.** पंजाब परंपरा के 300 वर्ष के वृहत् इतिहास में अनेकों महापुरुषों का अवतरण हुआ और उनकी शिष्य संपदा भी बनी। परन्तु किसी महापुरुष की निश्राय में 29 योग्य संतों का समुदाय नहीं था। गुरुदेव के जीवन में यह चमत्कार घटित हुआ। गुरुदेव के सभी शिष्य योग्य, उच्च खानदान से संबंधित एवं अनुशासित थे। जहां गुरु को चार शिष्यों को संभालना कठिन होता है। वही गुरुदेव ने अपनी बुद्धि व विवेक से सभी शिष्यों को बड़ो का अनुगमन करने की शिक्षा दी। और सभी शिष्य समर्पित एवं आज्ञा का पालन करने वाले बनें। यह भी स्वयं में एक चमत्कार से कम नहीं था।

**2.** गुरुदेव ने इस सुविधावादी युग में भी संयम परंपरा को अपटुड़ेट रखा। कंप्यूटर के इस आधुनिक युग में प्रभावित आसपास की परंपराएं शिथिल होने लगी। परन्तु गुरुदेव अपने संयम को अक्षुण्ण बनाने के प्रति कटिबद्ध रहे। यह भी किसी चमत्कार से कम नहीं था।

**3.** आपके शालीन व्यवहार में सम्मोहन का अद्‌भुत आकर्षण था। इतिहास साक्षी है कि किसी विरोधी को भी आपके व्यवहार से शिकायत नहीं रही होगी। आपने कभी अपने व्यवहार से किसी को पीड़ित किया हो। यह असंभव था। सभी दर्शकों ने सम्वेत स्वर में यही स्तुति गान किया कि आप अपने व्यवहार से सभी को सम्मोहित कर

लेते हैं। उत्तर भारत के प्रतिष्ठित संघ के सर्वेसर्वा होने पर भी आप सुदूर प्रांत से पधारने वाले मुनियों का स्वागत स्वयं आगे जाकर करते थे। गुरुदेव के सभी शिष्यों के मन में यह भाव रहता था कि इस बार गुरुचरणों में रहने का मेरा नंबर आ जाए। यह स्नेह भी आपके निष्पक्ष व्यवहार का जीता-जागता उदाहरण था। आप अपने मधुर स्वभाव के कारण उत्तर भारत के बेताज बादशाह व जन-जन की श्रद्धा के केन्द्र बने हुए थे।

आपने गुरु परंपरा से जो कुछ प्राप्त किया। उसे आपने शत-गुणित करके दिखाया। संतबल, श्रावक-बल के साथ-साथ संघबल में भी अभिवृद्धि हुई। पूर्व परंपरा के महापुरुषों में पूज्य मयाराम गण का नाम प्रचलित था, परन्तु आपके शिष्यबल व समन्वित व्यवहार ने आपको जन-जन का पूज्य बना दिया। आज यह संघ गुरु सुदर्शन गण के नाम से विख्यात है। उत्तर भारत के जनमानस में आपके प्रति गहन श्रद्धा है। संभवत: पंच-परमेष्ठि के पश्चात् श्रावक वर्ग आपके नाम की माला का ही स्तुतिगान करता है। आपकी जीवन-शैली पर जितने भजनों का निर्माण हुआ है। वह संभवत: किसी महापुरुष के जीवन में नहीं हुआ हो। उत्तर भारत का एक भी जैन आपके नाम से अनभिज्ञ नहीं है। यह भी अपने आप में एक चमत्कार है।

**4.** आपकी छत्रछाया में 29 शिष्यों ने संयम ग्रहण किया। आपके सभी शिष्य प्रवचनकार बने। यह भी एक अद्‌भुत संयोग है। कुछ शिष्य आगमज्ञ, इतिहासकार, संगीतकार व कुछ प्रभावक बनकर जिनशासन की सेवा में संलग्न हुए। सभी शिष्यों के जीवन निर्माण में आपने कितनी ऊर्जा का व्यय किया होगा। यह भी किसी चमत्कार से कम नहीं था।

**5.** आपकी जिह्वा में वाणी का अद्‌भुत अतिशय था। आप किसी व्यक्ति या घटना के संदर्भ में कोई भविष्यवाणी कर देते तो वह बात पत्थर की लकीर बन जाती। आपने मेरे भविष्य के विषय में जो बाते कही। वे सभी अक्षरश: सत्य सिद्ध हुई। असंभव लगने वाली बात भी संभव सिद्ध हुई। यदि इस विषय को लिपिबद्ध करने लगें, तो स्वतंत्र ग्रंथ का निर्माण हो सकता है। आपकी कृपा से हजारों लोगों की वीरान बगिया में बहारें आई। आर्थिक-दृष्टि से कमजोर व्यक्तियों को समृद्धि के पंख प्राप्त हुए। हजारों व्याधिग्रस्त लोगों को स्वास्थ्य प्राप्त हुआ। कई टूट रहे परिवारों को जोड़ने का कार्य किया। यह भी आपका अनुपम अतिशय था। आपने अपनी वाणी का उपयोग सदा संघ व समाज के कल्याण में किया। कभी समाज को विघटित करने का कार्य नहीं किया। कभी भी समाज को राग-द्वेष की लपटों में नहीं झोंका। गुरुदेव ने अपनी वाणी का उपयोग समाज एकता व जनोद्धार के लिए किया।

**6.** गुरुदेव की मंद-स्मित मुस्कान, सौम्य आभामंडल व करूणामयी दृष्टि से रोम-रोम में शांति का निर्झर प्रवाहित होता था। जो एक बार गुरुदेव के दर्शन करता। उसे अपलक निहारता रहता। उदास मुखमंडल पर भी प्रसन्नता का संचार होने लगता। भाग्यहीन भी सौभाग्यशाली बन जाता। मुक्ति की प्यास जाग्रत हो जाती। वैराग्य की अखूट प्यास सत्य का अन्वेषण करने लगी। गुरुदेव की भक्ति में कितनी ही मीराएं अपने कान्हा के दर्शनों से ही संतुष्ट थी। कितनी ही चंदनबालाएं अपने भगवान की दिव्य छवि को निहारने के लिए तरसती थी। जिसने भी एक बार भक्ति से आपको निहारा। वह सदा के लिए आपका बन गया। यह आकर्षण भी किसी चमत्कार से कम नहीं था।

मंच से प्रवचन करने वाले वक्ता हजारों होते हैं। परन्तु आपकी वाणी में जादुई सम्मोहन था। जैसे कृष्ण बांसुरी से समय रूक गया हो। कोयल सी मधुर वाणी थी। श्रोता भाव-विभोर होकर कह उठते कि समय थम जाए और हम गुरुदेव की वाणी में अवगाहन करते रहें।

गुरुदेव की वाणी में वह अमृत रसायन था कि बिना पूछे लोगों को समस्या का समाधान मिल जाता। जिज्ञासाएं शांत हो जाती। वाणी में जब अमृत-निर्झर प्रवाहित होता तो भक्तों के झुंड बिना किसी आमंत्रण के खींचे चले आते। श्रोता रिक्त झोलियां लेकर आते और ज्ञान के खजाने भर कर ले जाते थे। यह सब किसी चमत्कार से कम नहीं था। गुरुदेव ने अपने पुरुषार्थ से जैन धर्म को जन-जन का धर्म बनाया। जैन-स्थानकों से बाहर जन-जन के मन में आस्था का बिगुल बजाया। नव-नवीन संघों का निर्माण कर जैनत्व को भव्य रूप दिया। जीर्ण व उत्साहहीन संघों में ऊर्जा का संचार किया। यह भी गुरुदेव के जीवन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी।

आपके जीवन का सबसे महान चमत्कार था। आपका समुज्जवल संयम। आपने जिस बहुमान व वैराग्य भाव से संयम की चादर को ओढ़ी। उसे जीवन के अंतिम क्षण तक मलिन नहीं होने दिया। आपका संपूर्ण जीवन संयम की सुवास से महक रहा था। संयम ही आपके जीवन का प्राण था, श्वास थी और सर्वस्व था। संयमरक्षा के लिए आप किसी भी बलिदान के लिए तत्पर थे। और अपने संघ को भी संयम के प्रति निष्ठावान बनाया।



आस्थाशील श्रावक आपके जीवन के हजारों चमत्कारों का गुणगान करते हैं। यदि जन-जन के अनुभवों को एकत्रित करने लगे तो वर्षों व्यतीत हो जाएंगे। परन्तु आपकी गुण गाथाओं की गणना दुर्लभ है। आपकी मनोहारी छटा किसी चमत्कार से कम नहीं थी। हमारा यह परम सौभाग्य रहा कि हमने ऐसे महापुरुष के साक्षात् दर्शन किए। उनकी चरणरज ग्रहण की। उनका आशीर्वाद प्राप्त किया।

**ऐसे सहज सरलात्मा को कोटिशः नमन्।**

मैं अखंड
उपयोग की
धारा में प्रवहमान
अस्तित्व हूं

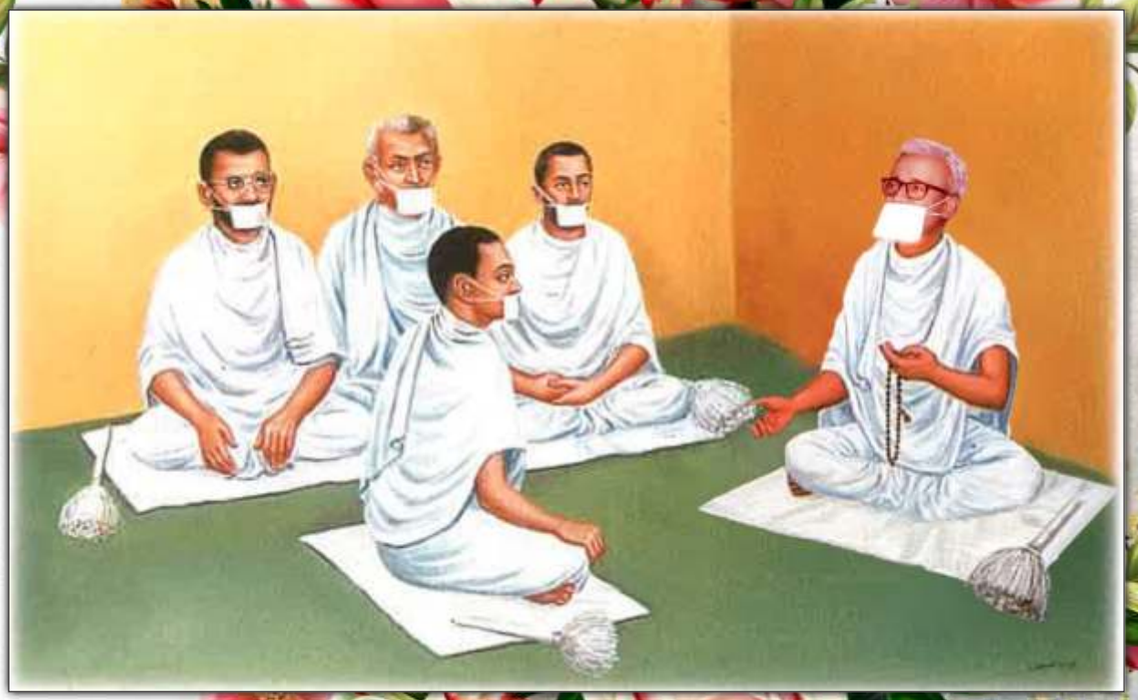

गुरुदेव **अनुशासनप्रिय** थे
**स्वयं भी** अनुशासन का पालन करते थे
**दूसरों से भी** पालन करवाते थे

# 41 | अनुशासन और गुरुदेव

**अनुशासन** किसी भी व्यक्तित्व को सुदृढ़ बनाने व संशोधित करने की आधारशिला है। अगर आधार सम्यक् नहीं है, तो व्यक्तित्व भी सुव्यवस्थित नहीं हो सकता। अनुशासन का अर्थ है शरीर व बुद्धि का नियंत्रण। नियंत्रित व संयमित व्यक्ति ही गुरुजनों द्वारा निर्धारित नियमों का पालन करने में सक्षम हो सकता है। गुरुदेव भी एक अनुशासन प्रिय संतरत्न थे। उन्होंने कभी गुरु-परम्परा द्वारा निर्धारित अनुशासन को खंडित नहीं होने दिया। अनुशासन उनके जीवन की सहज अभिव्यक्ति थी।

गुरुदेव की अनुशासित जीवन विद्या ने एक विशाल अनुशासित संगठन का निर्माण किया। वर्तमान युग में अनुशासन एक अत्यंत जटिल प्रश्न है। आज एक लघु परिवार को अनुशासित करना कठिन है। आप विचार करें कि गुरुदेव ने विभिन्न परिवार व शहरों से आए अपने साधकों को कैसे अनुशासित किया होगा। इसका एकमात्र कारण है कि गुरुदेव अनुशासित गुरु के अनुशासित शिष्य थे। अनुशासन उनके जीवन के कण-कण में प्रतिबिम्बित होता था।



गुरुदेव की मान्यता थी कि आत्मोत्थान के लिए अनुशासन प्रिय होना अनिवार्य है। अनुशासन मुनि जीवन का प्राण है। मर्यादा विहीन जीवन मुनि कहलाने योग्य नहीं है। गुरुदेव ने आजीवन अनुशासन रूपी क्रीज पर डटकर अनुशासित जीवन जीया। अंतत: उन्हें इस आध्यात्मिक मैच में विजयश्री भी प्राप्त हुई।

गुरुदेव ने बाल्यकाल में ही व्याख्यान वाचस्पति पूज्य गुरुदेव श्री मदनलाल जी महाराज के चरणों में संयम ग्रहण कर पंजाब-परंपरा के अनुशासन को स्वीकार किया। और अंतिम श्वास तक इस मर्यादा को अक्षरश: निभाया। पूज्य आचार्य श्री काशीराम जी महाराज द्वारा निर्धारित समाचारी का प्रमाणिकता से पालन किया। श्रमण संघ का निर्माण हुआ तो माईक पर बोलने को लेकर एक व्यवस्था बनाई गई कि जब तक सुसंगत तथ्यों के आधार पर माईक पर बोलने को लेकर कोई निर्णय न हो, तब तक कोई साधक माईक का उपयोग न करे। इस मर्यादा का मात्र गुरुदेव ने ही निर्वहन किया। इसके विपरीत माईक पर बोलकर मर्यादा भंग करने वाले श्रमण-संघीय कहलाए और माईक का उपयोग न करने के कारण गुरुदेव को श्रमण संघ से पृथक् गिना जाने लगा।

गुरुदेव ने अपनी पूर्व-परम्परा से मिले अनुशासन की अवमानना नहीं की। गुरुदेव अपने दादा श्री जग्गुमल जी महाराज की सेवा में नौ वर्ष तक चाँदनी चौंक में विराजमान रहे। वहां सुदूर प्रांत से आने वाले विभिन्न संप्रदायों के मुनियों से उनका समागम भी हुआ। परन्तु गुरुदेव ने कभी अपनी समाचारी को शिथिल नहीं होने दिया। भगवन्श्री राम प्रसाद जी महाराज ने गुरुदेव की अनुशासन प्रियता का गुणगान करते हुए लिखा-

**संयम ( अनुशासन ) की साधना के ये संविधान है।**
**उसूलों के पुजारी, संघ के भगवान है।।**

गुरुदेव का हृदय जितना कोमल था, अनुशासन के विषय में उतना ही कठोर था। संघ के किसी मुनि ने यदि चारित्र संबंधी अनुशासन भंग

किया तो गुरुदेव ने उसे निष्काशित करने में विलंब नहीं किया। सहयोगी मुनियों ने भी यदि मर्यादा को खंडित किया तो उनसे आज्ञा-संबंध का विच्छेद कर दिया। गुरुदेव को क्वाटिंटी नहीं, क्वालिटी प्रिय थी। यदि किसी भी मुनि की प्रवृत्ति और व्यवहार आपत्तिजनक व संयम के प्रतिकूल अनुभव हुआ तो गुरुदेव तत्क्षण उसे उपालम्भ देने से हिचकिचाते नहीं थे।

गुरुदेव ने सर्वप्रथम स्वयं को मर्यादित किया। ऐसी किसी प्रवृत्ति का आचरण नहीं किया। जो गुरु-मर्यादा के विपरीत हो। दीक्षा के पश्चात गुरुजनों ने जिस कार्य का निषेध किया उस आज्ञा को उन्होंने नतमस्तक होकर स्वीकार कर लिया। गुरुदेव ने सर्वप्रथम स्वयं को अनुशासन की अग्नि में तपाया। तत्पश्चात शिष्य वर्ग को अनुशासन के सांचे में ढाला। उन्होंने कभी अनुशासन हीनता के प्रति कोमलता का व्यवहार नहीं किया। वे शिष्यों को तलाशते, तराशते व अनुशासन में तपासते भी थे।

जींद में मैं पीत ज्वर से आक्रांत हो गया। जिस कारण आहार संबंधी दोष का सेवन हुआ। रोग-निवृत्ति के पश्चात गुरुदेव ने मुझे भगवती सूत्र के मूलपाठ की स्वाध्याय का प्रायश्चित दिया। समय-समय पर गुरुदेव संयम की स्खलना होने पर मुनियों को दंड या प्रायश्चित देने में संकोच नहीं करते थे। अपवाद मार्ग में यदि किसी ने वाहन का प्रयोग किया तो उसे छः माह दीक्षा-उन्मूलन का उत्कृष्ट छेद भी दिया। किसी मुनि से त्रुटि होने पर चिकित्सक की भांति उसका उपचार भी करते थे। एक बार किसी मुनि ने संयम संबंधी शिथिलता का सेवन किया तो गुरुदेव ने पूज्य श्री श्रमण फूलचंद जी महाराज से दंड देने की प्रार्थना की। पूज्यश्री ने जो दंड का विधान बताया वही दंड उन्होंने संघस्थ मुनि को दिया। यदि अनुशासन के संबंध में गुरुदेव का कठोर व्यवहार था तो किसी का दुःख देखकर उनका हृदय करुणा से शीघ्र पसीज जाता था। किसी कवि ने सत्य ही कहा है-

**'अहो स्वित् विचित्राणि, चरितानि महात्मनाम्।'**

अहो! सरल स्वभाव के महापुरुषों का चारित्र कितना विचित्र होता है।

मेरा जीवन धन्य हो गया कि मुझे ऐसे महापुरुष की शरण प्राप्त हुई जिनका जीवन स्वयं में अनुशासन का ज्वलंत उदाहरण था। मुझे इस बात का सात्विक गौरव भी है कि मैंने आज तक गुरुदेव द्वारा निर्देशित मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया। उनके पदचिन्हों को भगवान् की भाँति पूजा है।

कुछ साधक स्वार्थ के वशीभूत गुरु-परम्परा के नाम पर निजी संपत्ति का निर्माण करने लगते हैं। स्मारकों का निर्माण करवाते हैं। परन्तु गुरुदेव इन सभी प्रलोभनों से कोसों दूर थे। उन्होंने गुरुजनों के सिद्धांतों को जीवंत बनाए रखा। वाचस्पति गुरुदेव द्वारा प्रदत्त अनुशासन के तीन सूत्रों 1. जीभ के चटोरे नहीं बनना, 2. संस्था व स्मारक का निर्माण नहीं करना, 3. स्त्रियों से अधिक संपर्क नहीं रखना। इन सूत्रों को अपने जीवन का आधार बनाया। इस कारण गुरुदेव में अनुशासन का अद्‌भुत तेज प्रदीप्त हुआ। किसी अनुशासन हीन मुनि पर एक दृष्टि डालते तो वह थर-थर कांपने लगता।

गुरुदेव के जीवनकाल में एक समय ऐसा भी आया। जब अधिकांशतः मुनि माईक का उपयोग करने लगे। माईक संतजनों के लिए आकर्षण का केन्द्र बन गया था। परन्तु उस समय भी गुरुदेव अपनी मर्यादा में अड़िग रहे। गुरुदेव इस बात से भली भांति परिचित्त थे कि नौका में हुआ एक छेद भी नौका को मझधार में डुबाने के लिए पर्याप्त है।

पर में
मैं वाली
बुद्धि चलेगी
तो
रति,
अरति का
चक्र चलता
ही रहेगा।

उन्होंने कभी संयम दिवस या जन्म दिवस पर आडंबरों का प्रदर्शन नहीं किया। गुरु मयाराम जी की परंपरा का हृदय से निर्वहन किया। गुरुदेव ने संयम की दृढ़ता के लिए समयानुसार समाचारी का मोड़िफिकेंशन भी किया। जहाँ शिथिलता की आशंका थी वहाँ नए नियम बनाए। गुरुदेव संयम के किसी पहलू में शिथिलता के समर्थक नहीं थे। सन् 1983 में दीक्षा के उपरांत गुरुदेव ने हम दोनों मुनियों को अनुशासित जीवन जीने के जो निर्देश दिए। उनका पालन हम आज तक कर रहे हैं। पूज्य गुरुदेव श्री मयाराम जी महाराज ने जो संयम की ज्योति प्रज्वलित की। उसे पूज्य छोटेलाल जी महाराज, पूज्य नाथूलाल जी महाराज, पूज्य गुरुदेव मदनलाल जी महाराज ने सुरक्षित रखा। मुझे गर्व है कि आज भी गुरुदेव की कृपा से संघस्थ मुनि अनुशासन की ज्योति को जाज्वल्यमान बनाए हुए हैं।

संघ तो बहुत होते हैं परन्तु उसी संघ का अस्तित्व अमरत्व को प्राप्त करता है। जिसका सिंचन अनुशासन रूपी अमृत से किया गया हो। गुरुदेव को व्याधि के कारण यदि दोष का सेवन करना पड़ा तो गुरुदेव ने उसे प्रायश्चित की प्रक्रिया के माध्यम से तत्क्षण शुद्ध किया।

जब हम राजस्थान का प्रवास पूर्णकर 1993 में त्रिनगर चातुर्मास के लिए दिल्ली आए तो वहां लोंकाशाह जयंति पर गुरुदेव का ओजस्वी प्रवचन सुनकर मुझे अहसास हुआ कि गुरुदेव का जीवन अनुशासन का जीवंत उदाहरण है। अनुशासन प्रिय जीवन शैली के कारण ही गुरुदेव ने पूज्य मयाराम गण के परचम को संपूर्ण उत्तर भारत के घर-घर में फहराया था।

**ऐसे अनुशासनप्रिय गुरुदेव को वंदन!**

गुरुदेव को
असाता वेदनीय
कर्म के कारण
कई बार व्याधियों
ने घेरा
परन्तु गुरुदेव
समताभाव
से सब सहन
करते थे।

# 42 | रोग और गुरुदेव

**रोग** वास्तव में एक प्राकृतिक तप है। अंतर मात्र इतना है कि तपस्वी स्वेच्छापूर्वक रोग सहन कर लेता है और रोगी अनिच्छापूर्वक। स्वेच्छापूर्वक कठिनाईयों को सहन करने के कारण तप दु:खद प्रतीत नहीं होता। इसी प्रकार यदि रोग को भी स्वेच्छापूर्वक सहन कर लिया जाए तो रोग भी तप बन जाता है। रोग व रोगी, भोग व भोगी ये संघर्ष की यात्रा है। जिसका परिणाम कभी सुखद नहीं होता जबकि साधक तप में दैहिक दृष्टि से संघर्ष तो करता है परन्तु उसका परिणाम सदैव सुखद होता है।



आगमकार कहते हैं कि तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव, साधु व श्रावक रोग से ग्रस्त हो जाते हैं। परन्तु व्याधि में समभाव धारण करने वाला साधक महानता को प्राप्त कर लेता है। गुरुदेव को असाता वेदनीय कर्म के कारण जीवन में कई बार रोगों का सामना करना पड़ा। परन्तु गुरेदव की यह विशेषता थी कि उन्होंने रोगों का समभावपूर्वक सामना किया। रोग को विरोधी के रूप में नहीं, सहयोगी के रूप में स्वीकार किया। उसे शत्रु नहीं, मित्र के रूप में सम्मान दिया। रोगों के प्रति समभाव रखने वाला साधक महानिर्जरा के पथ पर चल पड़ता है। गुरुदेव के घुटनों में दर्द रहता था। अक्सर श्रावक पूछते-गुरुदेव! दर्द कैसा है? गुरुदेव मुस्कराते हुए कहते कि अब दर्द से भी मैत्री हो गई है।

सन् 1942 के संढोरा चातुर्मास में गुरुदेव संवत्सरी के सन्निकट ज्वर से आक्रांत हो गए। बड़े संतों ने केशों के लिए क्षुर मुण्डन का भी प्रस्ताव रखा। परन्तु गुरुदेव ने समभाव व समझ का परिचय देते हुए अपना प्रथम लुंचन सहर्ष संपन्न करवाया।

गुरुदेव का शरीर बाल्यकाल में अत्यंत बलिष्ठ था। परन्तु सन् 1948 के सुनाम चातुर्मास में स्नायुतंत्र के प्रकोप के कारण नजले ने उन्हें जकड़ लिया। दिखने में तो रोग लघु होता था। परन्तु शरीर को भीतर से छलनी कर दिया। दीक्षा के उपरांत जब मैं गुरुदेव के पैर दबाता तो पिंडलियों से कमजोरी प्रतीत होती। गुरुदेव बताते दीक्षा के कारण पिंडलियां पत्थर की भांति सुदृढ़ थी। परन्तु जुकाम ने शरीर जर्जरित कर दिया।

सन् 1947 में गुरुदेव मूनक क्षेत्र में गुरुदेव श्री वनवारी लाल जी महाराज की सेवा में चातुर्मास कर रहे थे। एक दिन वे तीव्र ज्वर से पीड़ित हो गए। उस समय गुरुदेव के साहस व समभाव की पराकाष्टा देखिए, उन्होंने किसी को नहीं बताया कि मुझे बुखार है क्योंकि यदि सत्य प्रकाशित किया तो पूज्यश्री की सेवा से वंचित रह जाऊंगा। किसी श्रावक से औषध भी नहीं मंगवाई कि कारण बताना पड़ेगा। जब प्रात: पूज्य वनवारी लाल जी महाराज ने शौच जाने के लिए हाथ थामा। तो देखा शरीर गर्म है। पूज्यश्री बोले-तूने बताया क्यों नहीं, गुरुदेव विनम्रतापूर्वक बोले-यदि बता देता तो आप मुझे सेवा का अवसर नहीं देते। यह गुरुदेव का समभाव था।

चांदनी चौंक में गुरुदेव पूज्य बाबा जी महाराज की सेवा में तल्लीन थे। कभी ज्वर की अवस्था होती, तब भी स्वयं ही गोचरी लेने जाते। 1953 में गुरुदेव टाईफाईड से ग्रस्त हो गए। उस समय पूज्य तपस्वी जी महाराज ने सेवा कार्य संभाला। परन्तु गुरुदेव का उस समय भी रोग के

प्रति पूर्ण समभाव था। 1961 में गुरुदेव के पैर में तीक्ष्ण कांटा चुभ गया। जिसे स्थानक में आकर पूज्य सेठ जी महाराज ने निकाला। परन्तु गुरुदेव ने उफ तक नहीं की।

सन् 1973 में गुरुदेव को एक दीर्घकालिक रोग ने घेर लिया। मूत्राशय में जलन व मूत्र निकास में अवरोध अनुभव हुआ। दिल्ली से डा. अलमस्त ने गुरुदेव का उपचार हेतु निरीक्षण किया। बोले-आपको गदूद में कैंसर है। यद्यपि यह कैंसर की प्रांरभिक अवस्था है। कैंसर का नाम सुनकर बड़े-बड़े साहसी भी घबरा जाते हैं। परन्तु गुरुदेव सागरवत् शांत रहे। गुरुदेव के इस आत्म-विश्वास को देखकर डाक्टर भी आश्चर्य चकित था। जैसे उसने किसी साधारण ज्वर का नाम लिया हो। डाक्टर ने कहा-इस रोग का उपचार एकमात्र आप्रेशन से संभव है। जो गुरुदेव ने सन् 1995 में लुधियाना में करवाया। 22 वर्ष गुरुदेव इस रोग को समभावपूर्वक झेलते रहे। शाहबाद में गुरुदेव किसी श्रावक के घर दर्शन देने पधारे। घर के फर्श की चिकनाहट के कारण गुरुदेव का पैर फिसल गया। जिस कारण गुरुदेव का घुटना क्षतिग्रस्त हो गया। उस चोट का दर्द भी गुरुदेव को आजीवन चलता रहा। परन्तु गुरुदेव के मन में कभी विषमता का भाव नहीं आया।

11 अप्रैल 1999 के दिन गुरुदेव ने शालीमार बाग में प्रवेश किया। उस अवसर पर गुरुदेव ने सुंदर भजन गाया। जिसकी लाईन इस प्रकार थी-

**गाओ मंगलगान जय तीर्थंकर,**
**सबका हो कल्याण जय तीर्थंकर:**
**जीवन की अंतिम बेला है! तन रोगों से घिरा हुआ।।**
**है तपोधनी का ध्यान! ....**

जीवन की अंतिम बेला में भी गुरुदेव का मन पूज्य तपोधनी जी महाराज का स्मरण कर रहा था। आर्तध्यान की छाया दूर-दूर तक नहीं थी। 20 अप्रैल को गुरुदेव टेस्टिंग के लिए करोल बाग पधारे। नवकारसी आने पर भी पानी नहीं पिया। सारा दिन शांत भाव से बैठे रहे या लेट जाते। स्वाध्याय श्रवण का क्रम निरंतर गतिमान था। गुरुदेव प्राचीन राजेन्द्र नगर में श्रावक श्री शिखरचंद जी जैन के निवास स्थान पर ठहरे हुए थे। 24 तारीख प्रात: वे कोठी के प्रांगण में भ्रमण कर रहे थे कि अचानक चक्र आया। संतों ने गुरुदेव को पाट पर लिटाया। शरीर पसीने से भर गया। उल्टी भी हुई। गुरुदेव ने कहा-मेरा अंतिम समय है। संत बोले-अभी ऐसा कोई लक्षण दिखाई नहीं देता। स्थिति संभल जाएगी। आप औषध सेवन करें। परन्तु गुरुदेव गंभीर थे। बोले-यदि संथारा नहीं, तो मुझे व्रत का प्रत्याख्यान ही करवा दो। इस प्रकार गुरुदेव ने समभावपूर्वक देह त्याग किया।

**ऐसे महान समताधारी गुरुदेव को वंदन!**



## मैं तो स्थिर ही हूं।
## मैं शाश्वत लय का आत्मद्रव्य हूं।

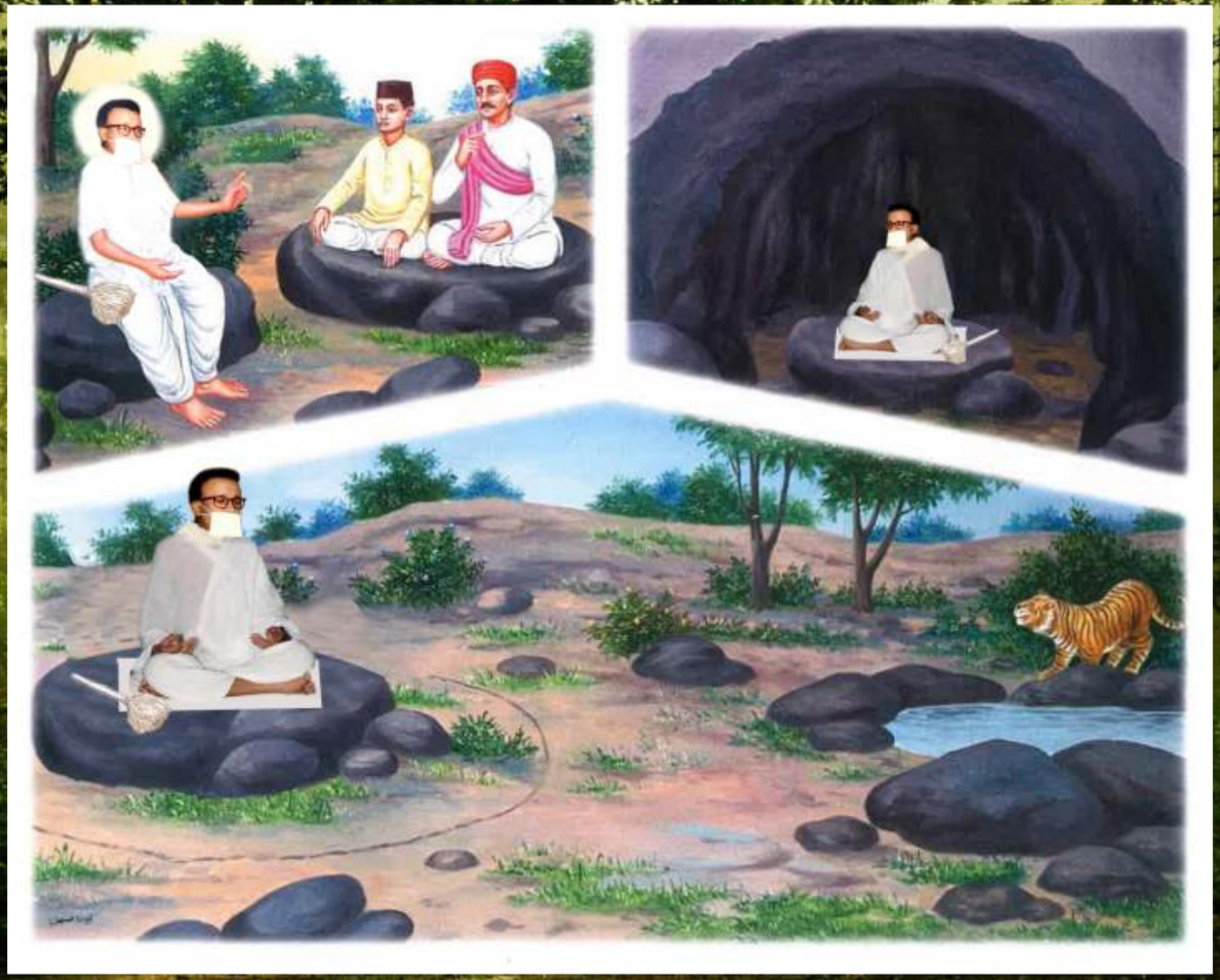

गुरुदेव के जीवन का प्रत्येक हाव-भाव, संयम व तप से भरपूर था।

# 43 तप और गुरुदेव

**शास्त्रकारों** ने साधक को निर्देश देते हुए कहा-'संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।' साधक संयम व तप द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरण करें। तप वह अग्नि है, जो विशाल कर्म-समूह को क्षण-भर में भस्म करने में सक्षम है। पूर्वकृत पुण्य व कर्म-निर्जरा के कारण ही किसी आत्मा में तप के प्रति बहुमान प्रकट होता है। गुरुदेव की जीवन धारा संयम व तप से अभिमंत्रित थी।

गुरुदेव के जीवन की प्रत्येक चेष्टा, हाव-भाव संयम व तप से प्रतिध्वनित था। गुरुदेव अपनी नौका को संयम व तप रूपी पतवार के माध्यम से आगे बढ़ा रहे थे। संयम की आभा से तप शोभायमान होता है। संयम संवर का माध्यम है, तो तप पूर्व संचित कर्मों की निर्जरा करता है। तप का नाम सुनते ही लोग अनशन या उपवास के विषय में सोचने लगते हैं। यद्यपि अनशन तो तप का लघुतम विषय है। यद्यपि तप एक सूक्ष्म व मूल्यवान प्रक्रिया है।

गुरुदेव शारीरिक अक्षमता के कारण तप की दीर्घकालीन साधना तो नहीं कर सकें, परन्तु सूक्ष्मतप उनके जीवन का अभिन्न अंग था। गुरुदेव अक्सर भूख से कम भोजन ग्रहण करते। सीमित द्रव्यों का ही सेवन करते। मिष्ठान, मेवे का आजीवन त्याग था। मैंने कभी भी गुरुदेव को मिठाई या नमकीन खाते नहीं देखा। रसनेन्द्रिय पर पूर्ण नियंत्रण था। विनय, सेवा व स्वाध्याय रूपी आभ्यंतर तप की निरंतर उपासना करते थे। ध्यान उनका प्रिय विषय था।

संसार में अनशन आदि तप करने वालों को तपस्वी कहा जाता है। परन्तु गुरुदेव भाव तप के आराधक थे। अनेकानेक महापुरुषों की सेवा का सौभाग्य गुरुदेव को प्राप्त हुआ। विनय उनके रोम-रोम में समाहित थे। ध्यान के निरंतर अभ्यस्थ थे। गुरुदेव का जीवन आभ्यंतर तप से सुशोभित था।

गुरुदेव ने रोहतक में पक्खी के दिन अचानक उपवास का प्रत्याख्यान ग्रहण किया। गुरुदेव के उपवास से सभी संत आश्चर्यचकित थे। गुरुदेव की तपस्या के कारण उस दिन सभी संतों ने भी उपवास का प्रत्याख्यान लिया। यद्यपि न्यूनाधिक तप भी संभव था। गुरुदेव आभ्यंतर तप के साथ-साथ, बाह्य तप को भी पूर्ण महत्त्व देते थे। अपने संघस्थ मुनियों को पाक्षिक,अष्टमी व पंचमी के दिन व्रत की प्रेरणा देते रहते। जो मुनि तप की आराधना करते, उन्हें विशेष रूप से साता पूछते। भावपूर्वक तप की अनुमोदना करते थे। यदि कोई श्राविका दीर्घ तपस्या या वर्षीतप करती तो गुरुदेव भरी सभा में उसे शेरनी के नाम से संबोधित करते।

1993 के त्रिनगर चातुर्मास में ज्ञानीराम जी आदि श्रावक-श्राविकाओं ने दीर्घ तपस्या की आराधना की। उस समय गुरुदेव का उत्साह दर्शनीय था। उन्होंने मनोयोग पूर्वक तपस्वियों की अनुमोदना की। प्रतिदिन किसी तपस्वी को दर्शन देने जाते थे। दीर्घ तपस्वियों को प्रत्याख्यान करवाने या तो स्वयं जाते या फिर अपने मुनियों को प्रेषित करते। जब समाज दीर्घ तपस्वियों को अभिनंदन द्वारा सम्मानित करता तो गुरुदेव आनंद विभोर हो जाते। गुरुदेव की मंगलमय प्रेरणा से कई चातुर्मासों में दीर्घ तपस्याएं हुई। जिनमें सिरसा, सुनाम, लुधियाना,

अंबाला व शालीमारबाग का नाम विशेषत: उल्लेखनीय है।

सन् 1968 में जयपुर में पूज्य शांतिचन्द्र जी महाराज ने व सन् 1989 में कांधला में श्री नरेन्द्र जी महाराज ने मासक्षमण की तपस्या की तो गुरुदेव अपने हाथों से पानी पिलाकर तपस्वी आत्माओं को साता पूछते थे। तपस्वी आत्माओं के प्रति गुरुदेव के मन में विशेष अहोभाव था। गुरुदेव ने सन् 1949 में पूज्य अमीचंद जी महाराज एवं पूज्य श्री नेकचंद जी महाराज के सान्निध्य में प्रथम बार नौ दिन अनशन उपवास की तपस्या की। नौ दिन गुरुदेव को रात्रि में निद्रा नहीं आई। शरीर दुर्बल हो गया। गुरुदेव ने दृढ़ संकल्पशक्ति के बल पर अपना लक्ष्य पूर्ण किया। गुरुदेव की तपस्या के कारण श्री संघ के श्रावक-श्राविकाओं में भी तपस्या की लहर उमड़ पड़ी। उस वर्ष घर-घर में तप का अंबार लग गया।



गुरुदेव की यह स्पष्ट मान्यता थी कि तप आत्म-शुद्धि व मन की पवित्रता का प्रतीक है। लोकेषणा अथवा सिद्धि या संपत्ति के लिए किया गया तप भव-भ्रमण का कारण है। गुरुदेव का कथन था कि तप भले ही अल्प हो, परन्तु विधिपूर्वक होना चाहिए। जैसे आयंबिल तप में मात्र एक द्रव्य का सेवन हो। तिविहार उपवास में मात्र प्रासुक जल का सेवन करें। बिसलरी या मीठा जल असेव्य है।

सन् 1996 में सुनाम चातुर्मास से पूर्व 27 जून को संगरूर में गुरुदेव ने वाचस्पति गुरुदेव की स्मृति में उपवास व्रत रखा। उस समय शारीरिक दुर्बलता अधिक थी। परन्तु गुरुदेव के प्रति श्रद्धा व दृढ़ मनोबल से अभिभूत होकर गुरुदेव ने सातापूर्वक तप की आराधना की। गुरुदेव पर्युषण पर्व में पौषध करने के बाल्यकाल से ही अभ्यस्त थे। आठ वर्ष की लघुवय से ही पौषध करने लगे थे।

**ऐसे संयमी तपाराधक गुरुदेव को वंदन!**

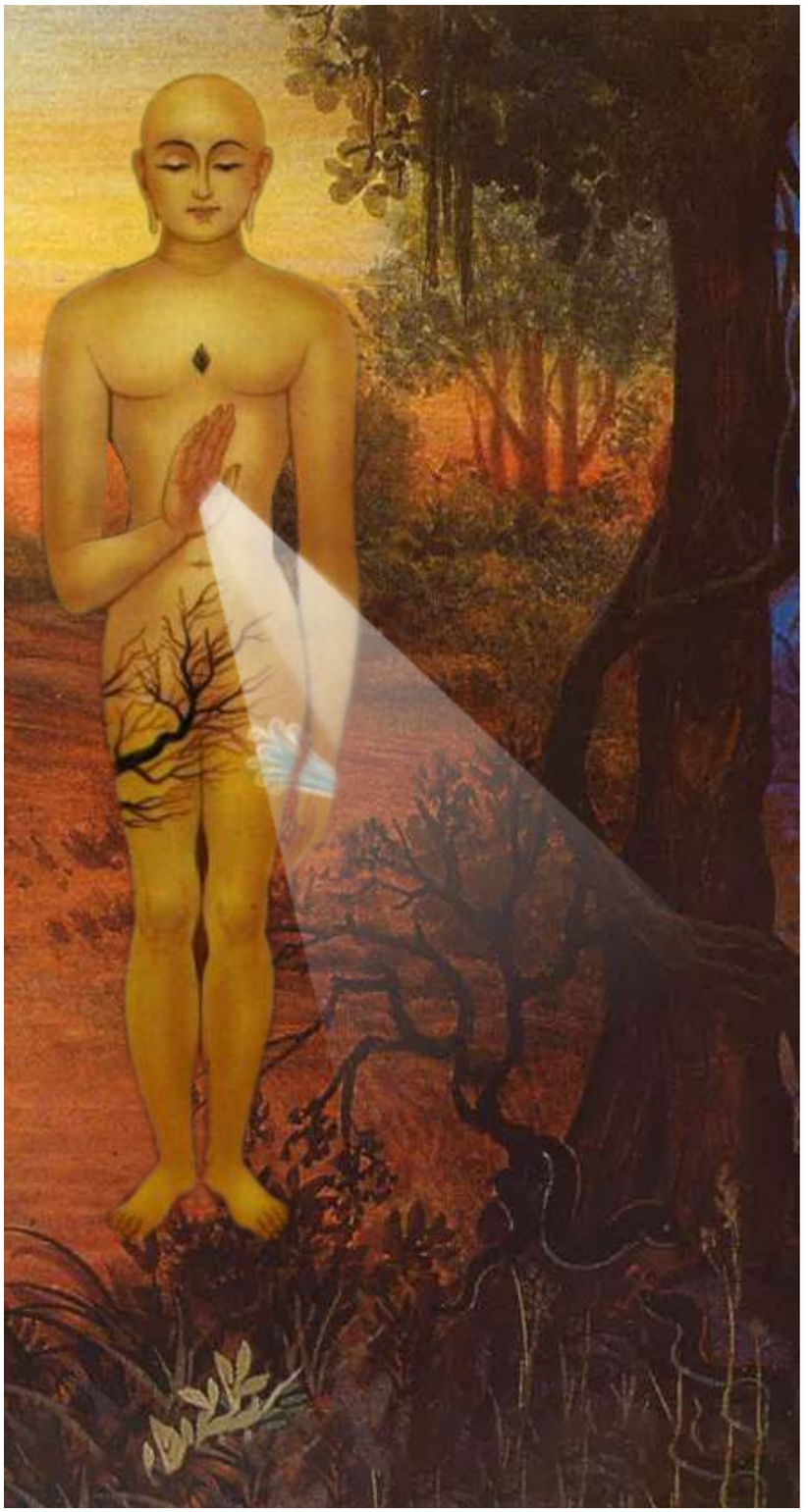

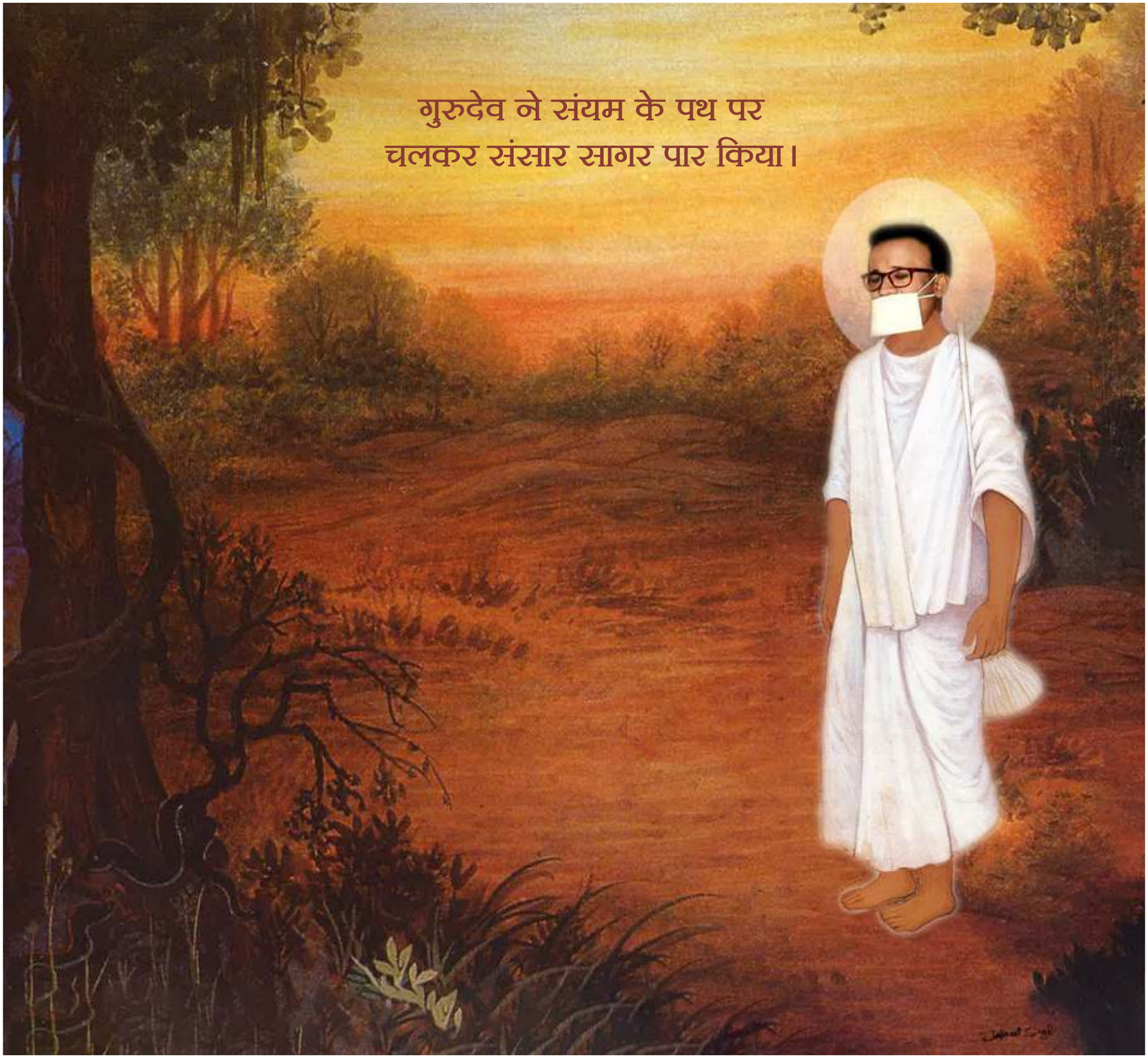
गुरुदेव ने संयम के पथ पर
चलकर संसार सागर पार किया।

# 44 संयम और गुरुदेव

**संयम** आनंदित जीवन जीने का अनिवार्य अनुबंध है। संयम भारतीय संस्कृति का मूल है। विलासिता, निर्बलता और अनुकरण के वातावरण से किसी संस्कृति का उदय नहीं होता। संयम के आधार पर निर्मित संस्कृति प्रभावशाली व दीर्घजीवी होती है। भगवान महावीर का अमर उद्घोष है। 'संयमं खलु जीवनम्।' संयम ही जीवन है। गुरुदेव अनुत्तर संयम के धारक थे।

उन्होंने संयम को प्रदर्शन का नहीं, आत्म-दर्शन का साधन बनाया। संसार सागर को पार करने के लिए संयम का चयन किया। संयम के मार्ग में उत्पन्न होने वाली कठिन बाधाओं के समक्ष कभी पस्त नहीं हुए। बल्कि दृढ़तापूर्वक समस्त अवरोधों को ध्वस्त किया। गुरुदेव का संयम बाह्य लिबास नहीं था, अपितु आंतरिक अनुभूति था। पूज्य तपस्वी श्री बद्री प्रसाद जी महाराज ने (गृहस्थ अवस्था में) जब दिल्ली में गुरुदेव के दर्शन किए तो वे गुरुदेव के संयम से विशेष रूप से प्रभावित हुए। गुरुदेव का व्यक्तित्व संयम की आभा से जगमगा रहा था। सादगीपूर्ण वस्त्र व तेजस्वी जीवनशैली से तपस्वीजी अत्यंत प्रभावित हुए।



प्रारंभ से ही मयाराम गण का प्रत्येक मुनि अपनी संयमित जीवन शैली के लिए विख्यात था। गुरुदेव ने इस परंपरागत मर्यादा को अक्षुण्ण बनाएं रखा। और पूर्वजों की ख्याति को चार चाँद लगाए। पूज्य श्री रामप्रसाद जी महाराज ने गुरुदेव का गुणगान करते हुए भजन लिखा-कि गुरुदेव शेरों-सी चाल चलते हैं। पूर्वजों की आन को कायम रखते हैं। गुरुदेव ने अपने पूर्वजों की शान को कभी क्षीण नहीं होने दिया।

गुरुदेव ने उत्तम भावों से संयम-मार्ग ग्रहण किया। परन्तु कभी संयम की अरति नहीं की। सिंह की भांति संयम का पालन किया। जिन भावों को लेकर आगे बढ़े। उससे कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। गुरुदेव ने अपनी संयम-प्रणाली में सदैव आचार को प्राथमिकता दी। कभी प्रचार के पीछे पागल नहीं बने। गुरुदेव संप्रदायवाद के नहीं, संयम के समर्थक थे। उन्होंने समाज में संप्रदाय का विष नहीं घोला। अपितु संयम की शिक्षा दी। गुरुदेव फरमाते थे कि 'संयम के नाम पर समाज को खंड-खंड करना, मुनि का कार्य नहीं है।' संयम का विकास व्यक्तिगत कार्य है। परन्तु इसके लिए समाज को विघटित करना आत्मघातक है।

आप इतिहास का अवलोकन करें। जब पंजाब में गुरुदेव मयाराम गण के पृथक् शास्ता बन गए तब भी संगठन में कोई आंच नहीं आई। गुरुदेव यदि चाहते तो अपने अतिशय प्रभाव के कारण भिन्न संगठन का निर्माण कर सकते थे। परन्तु गुरुदेव संप्रदायवाद की संकीर्ण विचारधारा से संक्रमित नहीं हुए। उन्होंने विषमता का नहीं, समरसता का मार्ग अपनाया। गुरुदेव संगठन के प्रहरी बने।

जिस प्रकार पूज्य गुरुदेव श्री मयाराम जी महाराज अपने युग में संयम-सुमेरु थे। उसी प्रकार गुरुदेव भी अपने युग के संयम सुमेरु के रूप में उभरे। हमने पूज्य मयाराम जी महाराज के युग के संदर्शन नहीं किए। परन्तु हमारा सौभाग्य है कि हमने गुरु सुदर्शन के युग को देखा।

उनके संयम को देखने व पालन करने का सुअवसर प्राप्त किया।

गुरुदेव कभी पद, प्रतिष्ठा व डिग्री के इच्छुक नहीं बने। उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था उत्कृष्ट संयम का पालन। इसी कारण उन्होंने आचार्य की पदवी की अभिलाषा नहीं की। अपने संयम को सुरक्षित रखा। गुरुदेव चाहते थे कि जैसे-जैसे संघ में दीक्षाएं हो रही है, वैसे-वैसे मुनियों में अनुशासन व संयम वर्द्धमान होना चाहिए।

18 जनवरी 1992 के दिन गुरुदेव का 50वां दीक्षा दिवस था। अर्थात् दीक्षा की स्वर्ण जयंति का प्रसंग समुपस्थित था। परन्तु गुरुदेव ने कठोर निर्देश दिया कि कोई भी मुनि एकांत में या लोक-व्यवहार में मर्यादा का उल्लंघन नहीं करेगा। यदि कोई दीक्षा-दिवस मनाने का इच्छुक है, तो व्रत-प्रत्याख्यान का आराधन कर इस दिन को मनाएं। वर्तमान युग के मुनियों के लिए भी गुरुदेव के जीवन की यह संयमी विचारधारा अनुकरणीय है।

सन् 1994 में बड़ौत मंडी में समाज के नवनिर्मित प्रवचनहाल का उद्घाटन समारोह था। मुख्य दान-दाताओं के सम्मान का भी कार्यक्रम आयोजित करना था। निमंत्रण पत्र भेजने के लिए तैयारी जोरों पर थी। जिसमें लिखा था कि गुरुदेव सुदर्शनलाल जी महाराज के सान्निध्य में प्रवचनहाल का उद्घाटन। गुरुदेव ने समाज को संशोधन करने का निर्देश देते हुए कहा-संत किसी भवन के निर्माण, शिलान्यास या उद्घाटन में सम्मिलित नहीं होते, यदि व्यवस्था आडम्बरहीन हो तथा संयमानुकूल हो तो हम मात्र प्रवचन कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त हमारा कोई योगदान या अनुमोदन नहीं है। यह गुरुदेव की संयमपरक विचारधारा थी।

एक मुनि की निश्राय में तीन वर्षों से एक गर्म (लोई) शाल थी। वह नई लोई लेने का इच्छुक था। एक श्रावक ने अपनी भावना प्रकट की। गुरुदेव ने संत से लोई मंगवाई। लोई देखकर संत को कहा कि अभी इस लोई का पांच वर्ष तक उपयोग करो। एक संत ने आधुनिक चश्मा बनवाया। गुरुदेव ने तत्क्षण उपालंभ देते हुए कहा साधु के उपकरण प्रदर्शन के साधन नहीं होने चाहिए।

सन् 1999 में गुरुदेव गंगाराम हॉस्पिटल के समीप एक कोठी में विराजमान थे। गर्मी की भीष्णता के कारण कोठी असाताकारी थी। गुरुदेव का स्वास्थ्य भी अनुकूल नहीं था। परन्तु गुरुदेव ने एक बार भी अपने मुख से शिकायत नहीं की। गुरुदेव आत्मभाव में तल्लीन थे।

गुरुदेव के परमभक्त रोहतक से जिनेन्द्र जी दर्शनार्थ उपस्थित हुए। वे अपने साथ गुरुदेव का मांगलिक रिकार्ड करने के लिए रिकार्डर लेकर आए थे। परन्तु गुरुदेव ने इसे मर्यादा के विपरीत बताकर स्पष्ट इंकार कर दिया। जिनेन्द्र जी ने अपनी बात मनवाने के लिए बहुत तर्क भी दिए। परन्तु गुरुदेव अड़िग रहे। उन्होंने कहा यदि ऐसा है, तो मैं मांगलिक भी नहीं सुनाऊंगा। गुरुदेव संयम के प्रति हार्दिक भाव से समर्पित थे। हम धन्य है कि हमें ऐसे महान् संयमी गुरुदेव का शिष्य बनने का अहोभाग्य प्राप्त हुआ।

**ऐसे संयमनिष्ठ गुरुवर को बारंबार वंदन!**

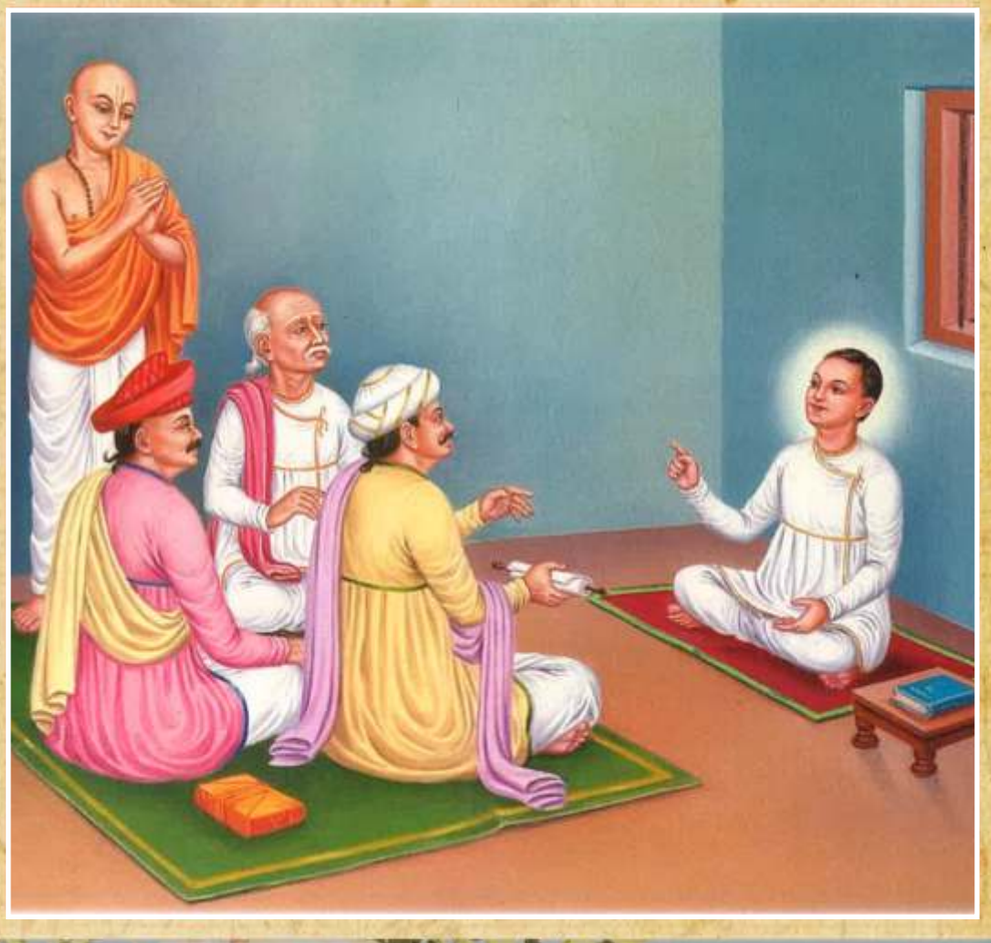

गुरुदेव ज्योतिष
के ज्ञाता थे
परन्तु
अंधविश्वासी
नहीं थे।

# 45 ज्योतिष और गुरुदेव

**'ज्योतिषां सूर्यादिग्रहाणां बोधकं शास्त्रम्'** अर्थात् सूर्यादि ग्रह और काल का बोध कराने वाला ज्योतिष शास्त्र कहा जाता है। ज्योतिष गणित की एक शाखा है। जिसके आधार पर ग्रह, नक्षत्र के संचार, परिभ्रमण काल, ग्रहण और स्थिति संबंधित घटनाओं का निरूपण एवं शुभाशुभ फल का कथन किया जाता है। ज्योतिष गणित से निकाला गया भविष्य फल उपयोगकर्ता के अनुभव और अभ्यास पर निर्भर है। ज्योतिष लोगों के भविष्य फल को जानने की उत्सुकता को भी शांत करता है। परन्तु वास्तविक रहस्य यह है कि वर्तमान को सार्थक करने वाला ही अपने भविष्य को उज्ज्वल बना सकता है।

जहाँ तक मेरी समझ का उपयोग है। गुरुदेव ज्योतिष के प्रति आस्थावान थे। परन्तु उनकी श्रद्धा अंध नहीं थी। वे ज्योतिष को एक विज्ञान की भाँति उपयोग करते थे। गुरुदेव ज्योतिष के गहन ज्ञाता तो नहीं थे परन्तु प्रारंभिक जानकारियों से भली-भाँति परिचित थे। जैसे मुर्हूत की जानकारी, दिशाशूल, विहार यात्रा का क्रम कब ओर किस दिशा में हो इत्यादि विषयों के जानकार थे।

दीक्षा का मुर्हूत गुरुदेव अक्सर पंडितों से पुछवा लेते थे। दिल्ली त्रिवेणी की दीक्षा का मुर्हूत गुरुदेव ने राजस्थान से उपाध्याय श्री कस्तूरचंद जी महाराज से निकलवाया था। बाबू केसरदास जी जालंधर से भी दीक्षा के मुर्हूत निकलवाए जाते थे। मेरी जन्मपत्री बाबू केसरदास जी ने बनाई थी। जो गुरुदेव ने अपने पास रखी थी।

रोहतक के ठाकुरद्वारे में एक पंडित जी जो सामुद्रिक शास्त्र के ज्ञाता थे। उन्होंने गुरुदेव के शारीरिक लक्षणों को देखकर कुछ भविष्यवाणियाँ की थी। जो कालान्तर में सत्य सिद्ध हुई। एक अन्य देवज्ञ ने भी गुरुदेव के विषय में बताया था कि इस बालक की जन्म पत्रिका में राजयोग है। गृहस्थ में रहा तो उच्चपद प्राप्त करेगा। अगर सन्यस्त हुआ तो उच्चकोटि का संत बनेगा।

कभी-कभी गुरुदेव अपने मुखारबिंद से कृपा करते कि उनके जन्म के पश्चात बाबा जी ने अपने पारिवारिक पंडित बाबू जी से उनकी जन्म-पत्री बनवाई थी। जिसका फलादेश बताते हुए पंडित जी ने कहा था कि यह एक तेजस्वी बालक है। जीवन में अतिशय प्रसिद्धि प्राप्त करेगा। परन्तु शारीरिक व्याधि सदैव बनी रहेगी। मन चिंतित रहेगा।



1942 में जब गुरुदेव ने दीक्षा ग्रहण की तो पंडित जी की बात वाचस्पति गुरुदेव को बताई। उस अवसर पर वाचस्पति गुरुदेव ने फरमाया-संयमरूपी औषध से दोनों रोगों का उपचार संभव है। संयमित एवं मर्यादित आहार से शरीर में कभी असाध्य रोग उत्पन्न नहीं होगा। वाचस्पति गुरुदेव का कथन अक्षरश: सत्य सिद्ध हुआ। गुरुदेव आजीवन कभी किसी असाध्य रोग यथा हृदय रोग, मधुमेह, उच्चरक्तचाप आदि से पीड़ित नहीं हुए। मानसिक तनाव का प्रसंग उपस्थित होने पर अपने ज्ञान एवं आत्मबल के उपयोग से स्वयं को सदा संतुलित बनाए रखा। समत्व की साधना गुरुदेव के जीवन का ध्येय थी। क्योंकि गुरुदेव की यह दृढ़ आस्था थी कि धर्म व अध्यात्म सर्वोच्च शक्ति है। इसके समक्ष ज्योतिष का फलादेश भी बोना सिद्ध हो सकता है। गुरुदेव एकांत रूप से ज्योतिष पर ही निर्भर नहीं थे। यद्यपि कुछ

विषयों में उनकी व्यक्तिगत मान्यता भी थी।

जैसे वे19 के अंक को अपने जीवन में अशुभ मानते थे। संभवत: इस मान्यता पर गुरुदेव के जीवन की इस घटना का भी प्रभाव था। जब 1995 में सोनीपत में 19 मुनि एकत्रित हुए। मुनियों का प्रथम प्रवेश भी 19 जनवरी को हुआ। संयोगवश प्रवेश के पश्चात वहाँ गुरुदेव के अतिरिक्त सभी संत खांसी व ज्वर से पीड़ित हो गए। उपचार एवं विश्राम हेतु दिन में भी एक साथ दस-दस आसन बिछे रहते थे।

एक विज्ञ ज्योतिष ने गुरुदेव की आयु के विषय में भविष्यवाणी की थी कि आप अक्तूबर 1998 तक देह त्याग कर देंगे। परन्तु गुरुदेव ने अपनी अंतिम यात्रा की तैयारी कई वर्ष पूर्व ही कर ली थी। गुरुदेव मृत्यु से कभी हतोत्साहित नहीं हुए। वे तो मृत्यु के स्वागत के लिए पूर्णत: तैयार थे।

जब 4 जून 1998 में गुरुदेव ने आलोचना के समय मुझे यह बात कही-अरुण! अब दीये में तेल कम है। उस क्षण मैं अश्रु पूर्ण नेत्रों से गुरुदेव की निर्भीक छवि को निहार रहा था। प्रशस्त राग के कारण मेरा मन कई दिनों तक व्यथित रहा।

परन्तु जब ज्योतिष द्वारा बताई गई तिथि सानंद व्यतीत हो गई तो मुझे परम प्रसन्नता थी कि गुरुदेव सकुशल है। गुरुदेव अक्सर फरमाते- मुझे मृत्यु की कोई चिंता नहीं। न ही इस विषय में मैं अधिक सोचना चाहता हूँ।

एक दिन मेरी हस्त रेखाएं देखते हुए गुरुदेव ने अपने ज्योतिष ज्ञान के आधार पर बताया। अरुण मुनि! तुम्हारी सूर्य रेखा प्रशक्त प्रबल है। तुम संसार में खूब यश-कीर्ति अर्जित करोंगे। तुम्हारे प्रवचनों में जन-सैलाब उमड़ेगा। मैं तो इन वचनों को सदैव गुरुदेव का आशीर्वाद मानता हूँ। गुरुदेव का ज्योतिष पर विश्वास तो था। परन्तु साधना को सर्वोच्च स्थान देते थे।

**ऐसे कालजयी व्यक्तित्व को मेरा शतश: नमन!**

गुरुदेव साधना के
जिस शीर्षस्थ
स्थान पर आरूढ़ थे
वहां से भविष्य की
प्रतीति सहज
हो जाती है।

# 46 | निमितज्ञ और गुरुदेव

**द्रव्य,** क्षेत्र , काल, भाव की सांकेतिक परिस्थितियों का आंकलन कर जो भविष्य फल का प्रतिपादन करें। उसे निमितज्ञ कहा जाता है। किसी भी घटना से पूर्व प्रकृति के संकेत हमें उस घटना का संदेश दे देते हैं। परन्तु इन संकेतों को समझने की योग्यता किसी विशेष साधक में होती है। गुरुदेव के जीवन के ऐसे अनेकों प्रसंग है, जिससे प्रतीत होता है कि गुरुदेव इस लक्षण शास्त्र के ज्ञाता थे। अथवा साधना के माध्यम से गुरुदेव का हृदय रूपी दर्पण इतना परिमार्जित हो चुका था कि उसमें भविष्य की घटनाएं स्पष्ट झलकने लगती थी।



ऐसे शुभ्रचेता साधक को भविष्य के लिए किसी कल्पना का आधार नहीं लेना होता, उसके चित्तरूपी दर्पण पर भविष्य की घटना अनायास ही प्रकट हो जाती है। गुरुदेव साधना के जिस शीर्षस्थ स्थान पर आरूढ़ थे वहां भविष्य की प्रतीति प्रयत्नसाध्य न होकर सहज हो जाती है।

गुरुदेव कई बार संत अथवा श्रावक के विषय में सरलतापूर्वक टिप्पणी कर देते तो वह बात अक्षरश: सत्य सिद्ध हो जाती। यह देखकर सभी को बहुत आश्चर्य होता। सभी यह जानने के उत्सुक होते कि गुरुदेव को यह रहस्य कैसे ज्ञात हुआ ? परन्तु अंतर्जगत् में विचरण करने वाले महापुरुषों के लिए ऐसी घटनाएं सामान्य होती है।

सन् 1960 में रोहतक चातुर्मास से एक दिन पूर्व गुरुदेव शहर के बाहर गोकर्ण नामक रमणीय स्थल पर विराजित थे। रात्रि स्वप्न आया कि रोहतक शहर का निम्न भाग भीषण बाढ़ से त्रस्त है। मन आशंकित हुआ। गुरुदेव ध्यानस्थ होकर साधना में लीन हो गए। प्रात: गुरुदेव श्री के चातुर्मास का मंगलमय प्रवेश संपन्न हुआ। तदुपरांत रोहतक में भीषण बाढ़ का दृश्य उपस्थित था। गुरुदेव की आशंका निर्मूल नहीं थी। गुरुदेव को शुभाशुभ घटनाओं की प्रतीति पूर्व हो जाती थी।

सन् 1962 में गुरुदेव होशियारपुर क्षेत्र में चातुर्मास हेतु विराजमान थे। संध्या के समय भवन के ऊपरी तल पर विश्राम के क्षणों में आसमां निहार रहे थे। अचानक गुरुदेव के मन में विचार आया कि जाखल मंडी (हरियाणा) में कुछ अप्राकृतिक घटना घटित हो सकती है। यद्यपि इस विषय में कोई प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष समाचार नहीं था। न ही ऐसा कोई संकेत प्राप्त था। मात्र गुरुदेवश्री के मन का अनुभव आधारित विचार था। गुरुदेव ने अपने समीपस्थ मुनियों से चर्चा की। श्रावकों के माध्यम से जाखल मंडी से समाचार मंगवाया गया। ज्ञात हुआ कि मंडी का अधिकांश इलाका जलग्रस्त है। सात से आठ फुट पानी मंडी में भर गया है। आज हम किसी समाचार को सुनने या जानने के लिए टी.वी. या मोबाइल पर आश्रित है। परन्तु महापुरुषों की टेलीपेथी इतनी स्ट्रॉग होती है कि कोई घटना उनसे गुप्त नहीं रहती। गुरुदेव के जीवन में ऐसे सैकड़ों प्रसंग है कि गुरुदेव ने किसी श्रावक या संत को कोई निर्देश दिया और भविष्य में उस निर्देश की महिमा को जानकर वह साधक गुरुदेव के वचनों का मुरीद बन गया।

सन् 1998 की घटना है एक श्रावक गुरुदेव से मांगलिक सुनकर

जाने के लिए तत्पर था। गुरुदेव ने उसे निहारकर कहा–श्रावकजी! अभी आधा घंटा ओर दया पालो। श्रावक बोला–गुरुदेव! बस का समय हो रहा है। शीघ्र जाना होगा। परन्तु इस बार गुरुदेव के शब्दों में आज्ञा की झलक थी। अभी आधा घंटा प्रतीक्षा करो। श्रावक गुरुदेव के चरणों में बैठ गया। आधे घंटे के पश्चात् जब वह बस स्टैंड गया तो ज्ञात हुआ कि इससे पूर्व आधा घंटे पहले जो बस निकली थी वह दुर्घटनाग्रस्त हो गई है। अधिकतर यात्री चोटिल है जिन्हें हस्पताल में भर्ती करवाया गया है। वह श्रावक मन ही मन गुरुदेव को वंदन करने लगा। गुरुदेव ईशारों में ही इतनी मूल्यवान बाते फरमा देते थे। जिसे समझने वाला अपनी झोलियां भर लेता था।

4 अप्रैल 1999 को शालीमार बाग दिल्ली से एक बस सोनीपत में गुरुदेव के दर्शनार्थ सोनीपत में आई। श्रीमान् किशोरी लालजी देहरे वाले भी उस बस में यात्रा कर रहे थे। सोनीपत में आकर वह अचानक रहस्यमय ढंग से गुम हो गए। परिजनों के लिए वह गहन चिंता का विषय था। परिवार गुरुचरणों में उपस्थित हुआ। गुरुदेव ने एक मंत्र जाप करने का निर्देश दिया। परिवार वालों ने पुन: प्रार्थना की कि गुरुदेव! लाला जी घर पुन: लौट आएंगें? गुरुदेव ने फरमाया। आप11 दिन इस मंत्र की आराधना करे। यह मंत्र मैं उसी श्रावक को देता हूं। जिसे कार्य सिद्धि संभव हो। गुरुदेव के कथनानुसार लाला जी 11 दिन पश्चात घर वापिस आ गए। परिजनों ने यह शुभ समाचार गुरुदेव को प्रेषित किया। गुरुदेव ने सहज भाव से कहा–मुझे ज्ञात है।

मेरा 1998 में पटियाला में चातुर्मास चल रहा था। वहां एक श्राविका पिंकी बहन मासक्षमण की तपस्या के भाव से तप के क्षेत्र में पुरुषार्थ कर रही थी। शरीर दुर्बल था। तपस्या के बीच स्वास्थ्य भी अनुकूल नहीं था। 15 दिन पश्चात मैं भी उस बहन को प्रत्याख्यान देने में संकोच करने लगा। उसी दिन गुरुदेव का पत्र प्राप्त हुआ। जिसमें गुरुदेव ने लिखा। तपस्वी पिंकी बहन को मेरा धर्म संदेश देना। उसका मासक्षमण सातापूर्वक संपन्न होगा। धैर्य रखे। गुरुदेव के संदेश ने जैसे दुर्बल शरीर में ऊर्जा का संचार कर दिया हो। बहन का स्वास्थ्य अनुकूल हो गया। तपस्या बिना किसी अवरोध के साता पूर्वक संपन्न हुई। मैं मन ही मन गुरुदेव के प्रति श्रद्धावनत था।

एक श्रावक अपने पुत्र के साथ गुरु चरणों में उपस्थित हुए। बोले–मेरा पुत्र सी.ए. की तैयारी कर रहा है। क्या इसे सफलता मिलेगी? गुरुदेव ने सहजता से कहा–इस बार परीक्षा में अनुतीर्ण (फेल) होगा परन्तु घबराएं नहीं, पुन: प्रयास करने पर सफलता निश्चित है। ठीक ऐसा ही घटित हुआ। इस प्रकार भक्तगणों पर कृपा वर्षण करते रहते थे। जिन्होंने गुरुदेव के अनुग्रह को अनुभव किया। उनका जीवन कृतकृत्य हो गया।



**ऐसे उपकारी गुरुदेव को शतश: वंदन !**

**ध्यान अनुभूति उपयोग मात्र भीतर...**

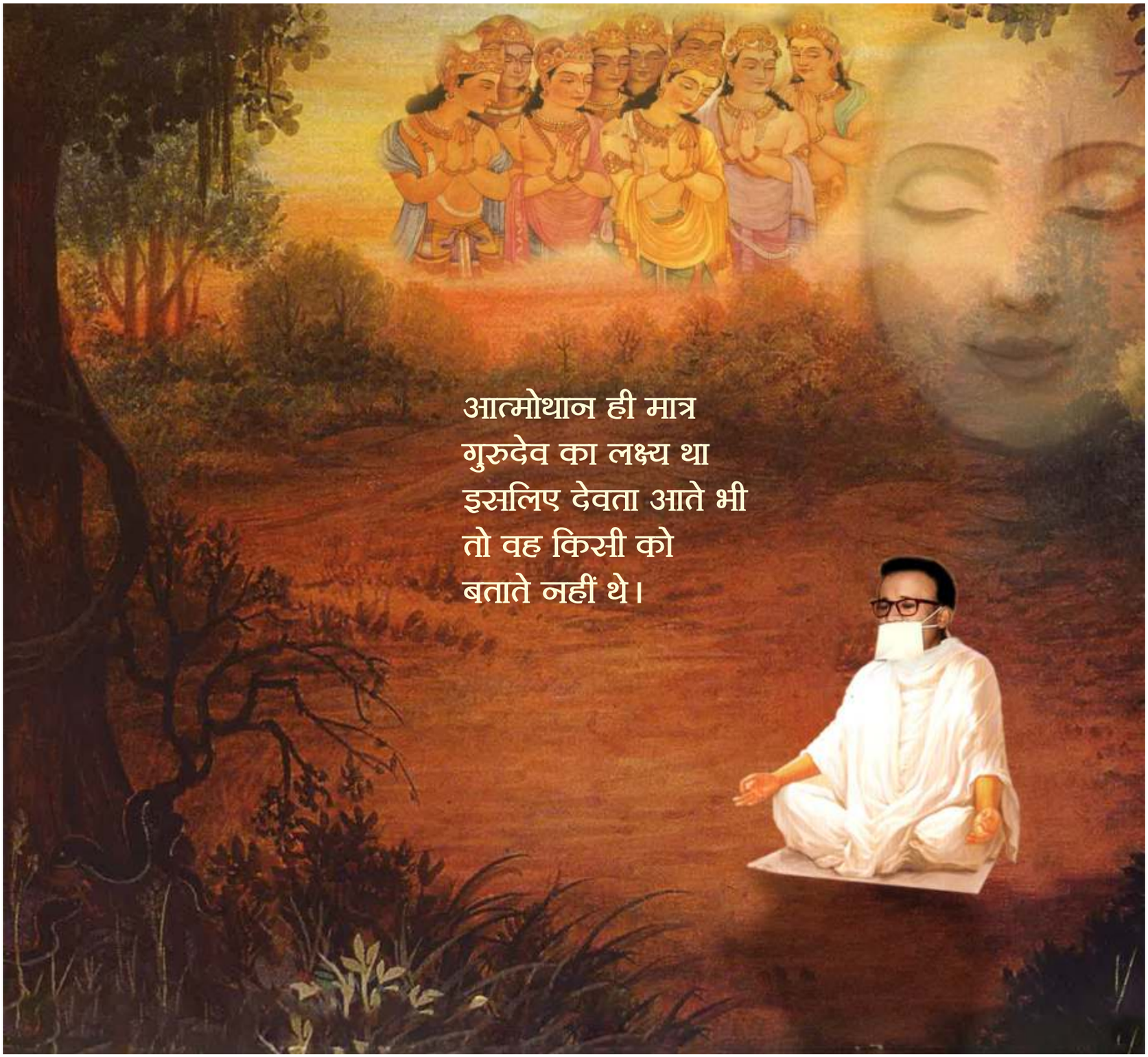
आत्मोथान ही मात्र
गुरुदेव का लक्ष्य था
इसलिए देवता आते भी
तो वह किसी को
बताते नहीं थे।

# 47 | देवता और गुरुदेव

**जैन**-धर्म के अनुसार 'देवाश्चतुर्निकाया:' देवों के चार भेद है। भवनपति, व्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक। तत्वार्थ सूत्र के चतुर्थ अध्याय में देवों का विस्तृत वर्णन है। देवलोक पुण्य भोगने का स्थान विशेष है। परन्तु देवताओं के दिव्य प्रभाव को सुनकर जनमानस भी उसकी ओर आकर्षित रहता है। स्वर्ग एवं स्वर्गलोक के देवताओं के संबंध में लोगों के मन में गहन जिज्ञासाएं हैं। जैसे कि देव दर्शन सुलभ है या दुर्लभ। देवों का निवास स्थान कहाँ हैं ? देवों की दृश्य या अदृश्य शक्ति क्या है ? ऐसे अनेक प्रश्न जनमानस के मन में उठते रहते हैं।

ऐसा ही एक प्रश्न मैंने गुरुदेव के समक्ष रखा कि देवताओं के संबंध में कोई अपना निजी अनुभव बताने की कृपा करें। परन्तु गुरुदेव ने कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया। गुरुदेव अपने श्री मुख से स्वयं के जीवन से संबंधित हजारों प्रसंग सुनाए परन्तु स्वयं के जीवन का देवताओं से संबंधित कोई भी प्रसंग नहीं सुनाया। इस विषय पर गुरुदेव ने कभी कोई चर्चा नहीं की। यद्यपि अपने गुरुदेव एवं दादा गुरुदेव के जीवन में देवों से संबंधित कई प्रसंग बताए कि कैसे देवता भी वाचस्पति गुरुदेव की सेवा में रहते थे। परन्तु स्वयं के विषय में कभी कोई ऐसा वर्णन नहीं बताया।

गुरुदेव ने कभी अतिशयोक्ति पूर्ण वार्तालाप द्वारा स्वयं को सिद्ध पुरुष बताने की चेष्टा नहीं की। वे सत्य के पक्षधर थे। गुरुदेव ने कभी यह मिथ्या संदेश प्रसारित नहीं किया कि देवता भी उनकी सेवा में आते हैं। एक बार गुरुदेव ने देवताओं के संबंध में बोलते हुए फरमाया था कि देव भले ही भौतिक दृष्टि से समृद्धिशाली होते हैं। कई प्रकार की वैक्रिय लब्धियां भी उनके पास होती हैं। परन्तु देवों के भी पूज्य, अध्यात्म के सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित देवाधिदेव तीर्थंकर भगवान ही सर्वोपरि एवं वंदनीय देव हैं, जिन्हें वीतराग देव की शरण प्राप्त हो गई तो वह सराग देवों की ओर आकर्षित नहीं होता। गुरुदेव ने कभी देवताओं के आह्वान के लिए जप-तप की आराधना नहीं की। आगम स्वाध्याय ही उनका प्रिय विषय था। यंत्र-मंत्र व ताबीज इत्यादि में उनकी रुचि नहीं थी।

गुरुदेव ने कभी देव सिद्धि के लिए कोई विशेष अनुष्ठान नहीं किया। गुरुदेव आगमों की गाथाओं की माला करते थे। स्तोत्र इत्यादि का उच्चारण भी नगण्य था। वीतराग वाणी का मनन एवं कर्म निर्जरा ही उनका परम लक्ष्य था। आत्मोत्थान ही उनका ध्येय था। चमत्कार प्रदर्शन से कोसों दूर थे। जैसे कि हम अतीत में पूज्य गुरुदेव श्री मयाराम जी महाराज एवं पूज्य वाचस्पति गुरुदेव के जीवन में देवताओं से संबंधित प्रसंग पढ़ते हैं। परन्तु गुरुदेव के जीवन काल में ऐसा कोई प्रसंग पढ़ने में नहीं आया।

एक बार ऐसा सुना भी जाता है कि गुरुदेव रात्रि के अंधकार में कक्ष के भीतर बैठे जाप कर रहे थे। अचानक कक्ष कुछ क्षणों के लिए दिव्य प्रकाश से भर गया। गुरुदेव के सान्निध्य में बैठे संत ने पूछा-गुरुदेव ये अद्‌भुत प्रकाश कैसा था ? परन्तु उस समय भी गुरुदेव मौन ही रहे। उनके मन में चमत्कार द्वारा प्रसिद्धि पाने की आकांक्षा नहीं थी।

वस्तुत: गुरुदेव ने चमत्कारों को कभी विशेष महत्व दिया ही नहीं। सरल, सहज व स्पष्ट व्यक्तित्व ही उनकी पहचान थी। उनकी जीवन-शैली देखकर दर्शक बरबस ही बोल उठता था कि वाह! क्या संत हैं! जैसे किसी धर्म देव के दर्शन कर लिए। उनका मुख मंडल निहारने से ही मन शांत हो जाता था। उनकी कथनी और करनी में साम्य भाव था। गुरुदेव के जीवन में कोई कृत्रिमता नहीं थी व न ही कभी दैवीय चमत्कारों की बातों में लोगों को उलझाने का प्रयास किया। '**जहा अंतो तहा बाह्य**' उनका जीवन जैसा भीतर था वैसा ही बाहर झलकता था। गुरुदेव जैनत्व की साधना के सच्चे साधक थे।

गुरुदेव का मंतव्य था कि संयम रत्न के समक्ष सभी लौकिक एवं पारलौकिक रत्न मूल्यहीन हैं।

**'देवावि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो।'**

जिस साधक का मन धर्म रूपी नंदन वन में रमण करता है उसके समक्ष देवता भी नतमस्तक होते हैं। संयमी जीवन ही स्वयं में एक महान चमत्कार है।



गुरुदेव की साधना मोक्षमार्ग की साधना थी। गुरुदेव का कथन था कि हमने गृहस्थ जीवन का त्याग चमत्कार दिखाने के लिए नहीं किया। यह करतब तो खेल दिखाने वाला जादूगर या मदारी भी कर सकता है। हमारा लक्ष्य तो भगवान महावीर द्वारा प्रदत्त साधना को आत्मसात् करने का है। गुरुदेव का उद्देश्य था कि श्रावकवर्ग चमत्कार में उलझकर धर्म के मूल मार्ग से भ्रष्ट न हो जाए। अत: उन्होंने धर्म को चमत्कारों से नहीं जोड़ा। धर्म का एकमात्र लक्ष्य आत्म शुद्धि के सोपान चढ़कर सिद्धि की प्राप्ति का है। वस्तुत: गुरुदेव का आसक्ति मुक्त साधनामय जीवन किसी चमत्कार से कम नहीं था।

**चमत्कारों से भीड़ इक्ट्ठी न करने वाले गुरुदेव को श्रद्धा से वन्दन**

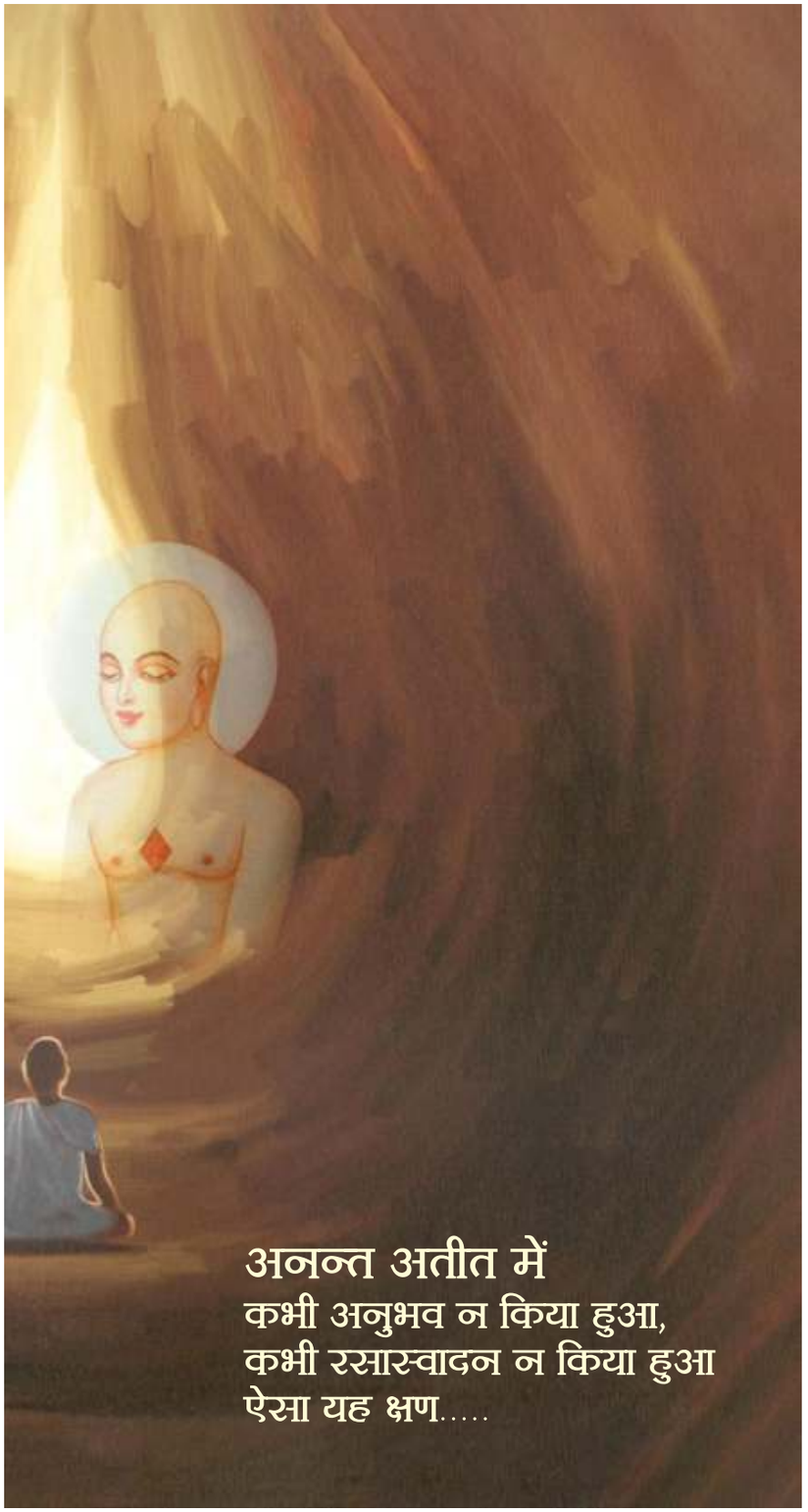

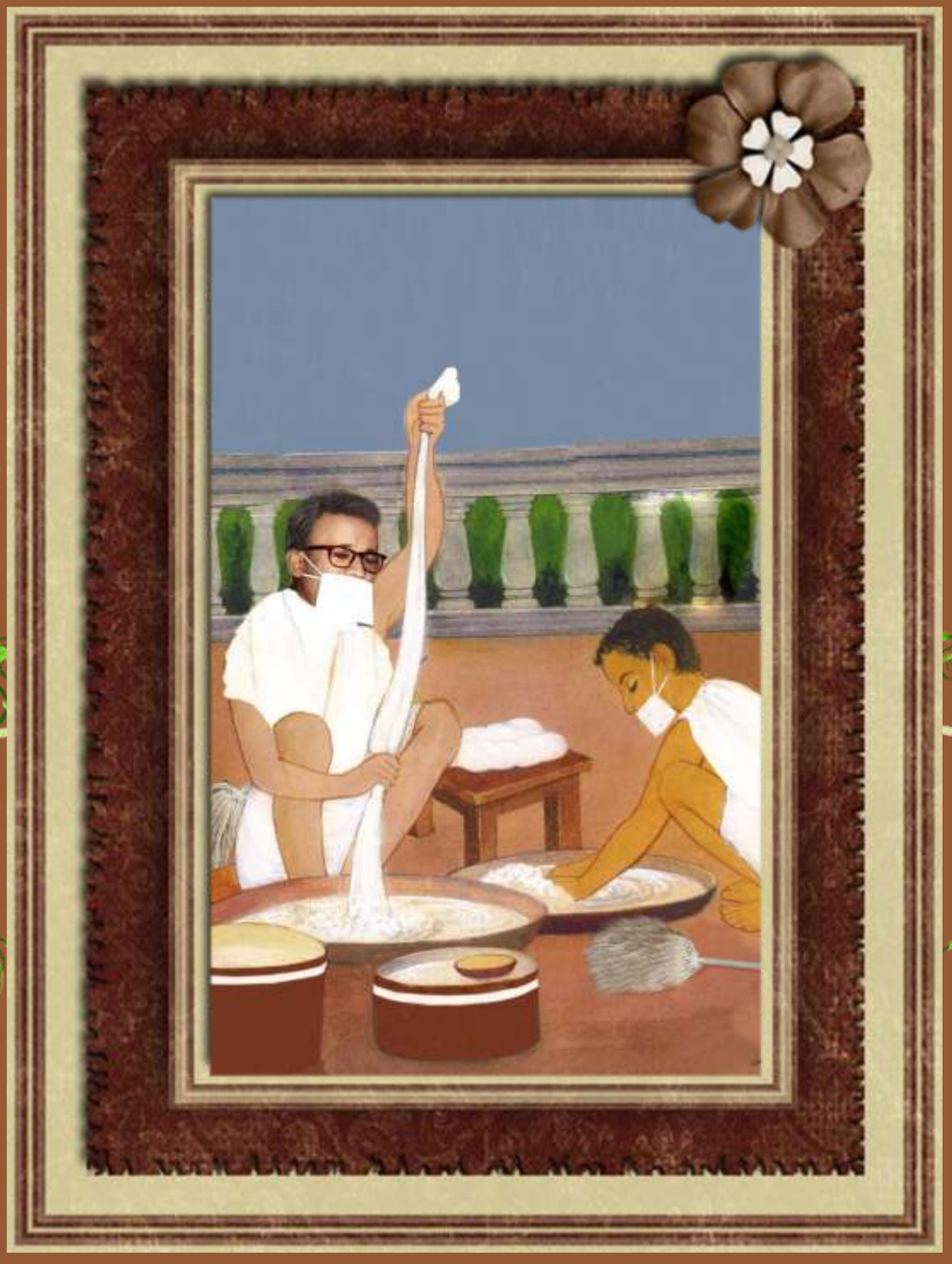

गुरुदेव का संपूर्ण जीवन सहज, सरल, स्पष्ट, स्नेहिल,सात्त्विक व समन्वयपूर्ण था

# 48 | जीवनशैली और गुरुदेव

**जीवन**-शैली आत्मा का प्रतिबिम्ब है क्योंकि व्यक्ति अपनी दिनचर्या में व्यक्तिगत या सार्वजनिक रूप से जो व्यवहार करता है वही आदतें उसकी मनोवृत्तियों का दिग्दर्शन करवाती है। अगर हम जीवन-शैली की शाब्दिक परिभाषा करें तो एक व्यक्ति की रुचियों, विचारों, व्यवहारों और उसके रहन-सहन को जीवन शैली कहते हैं। सभ्य जीवनशैली वह है जो हमें बुराई से निकालकर अच्छाई की ओर ले जाए। जैसे नदी के बहते जल में स्वत: शुद्धिकरण की प्रक्रिया होती है। अगर कहीं से गंदगी आ भी जाए तो उसे साफ करने की आवश्यकता नहीं होती। नदी उसे स्वत: साफ कर देती है। महापुरुषों का जीवन भी बहते जल की भाँति निर्मल एवं जन-जन के लिए उपयोगी होता है।



गुरुदेव श्री का जीवन भी नदी के जल की भाँति निर्मल व नैसर्गिक था जिन महानुभावों को गुरुदेव की जीवन-शैली देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उनके मुख पर एक ही शब्द था कि गुरुदेव सरीखी जीवन-शैली दुर्लभतम है। उत्तर भारत के हजारों श्रावकों के हृदय से सदैव एक ही आवाज़ उठती थी कि गुरुदेव की संयमी व संस्कारित जीवन-शैली प्रत्येक साधक के लिए अनुमोदनीय एवं अनुकरणीय है।

मेरा सौभाग्य है कि मुझे गुरुदेव को बहुत ही समीप से देखने का अवसर प्राप्त हुआ। आज भी आँखें उनकी मनोरम छवि देखने के लिए तरसती हैं। गुरुदेव श्री का सम्पूर्ण जीवन सहज, सरल, स्पष्ट, स्नेहिल, सात्त्विक व समन्वयपूर्ण था। गुरुदेव पद, प्रतिष्ठा, प्रदर्शन व प्रतिस्पर्धा की मिथ्या दौड़ से कोसों दूर थे। गुरुदेव की कथनी व करनी में साम्यभाव की एकरूपता थी। वे सदैव यही फरमाते थे कि जीवन को परमात्मतत्व से संलग्न करना ही मेरा एकमात्र लक्ष्य है। जन्म-मृत्यु के चक्र को तोड़कर मोक्ष प्राप्ति ही मेरा ध्येय है। गुरुदेव का जीवन वैराग्यमयी विचारधारा से ओत-प्रोत था। जो कुछ चर्चा में था वही उनकी चर्या में था एवं जो बात जिह्वा पर थी वही उनके जीवन में थी।

गुरुदेव प्रतिकूलता में भी प्रसन्नचित्त रहते थे। गम व विरोध की आंधियाँ भी उन्हें कभी पस्त नहीं कर पाई। किसी से विचार भेद होने पर भी उन्होंने कभी आत्मीयपूर्ण व्यवहार को तिलांजलि नहीं दी। **'माध्यस्थभावम् विपरीत वृतौ:'** विपरीत वृत्तिवालों के प्रति भी उनके मन में माध्यस्थ भाव था। जन-जन के प्रति प्रगाढ़ मैत्री थी। पामर प्राणियों के प्रति प्रेम व करुणा का भाव था। साम्प्रदायिक भावनाग्रस्त व्यक्तियों के प्रति उदार भाव था। अपमान करने वालों को भी आशीष प्रदान करते थे। कांटे बिखेरने वालों का भी फूलों से स्वागत करते थे। हृदय में करुणा एवं सुमधुर व्यवहार ही उनकी विशेषता थी।

ऐसे महान गुरु को प्राप्त कर मेरा जीवन धन्य हो गया। मेरी यही हार्दिक अभिलाषा है कि मोक्षप्राप्ति तक प्रत्येक भव में मुझे ऐसे ही गुरु की शरण प्राप्त हो।

गुरुदेव का प्रत्येक शिष्य के प्रति मातृवत् वात्सल्य था। पितृवत अनुशासन था गुरुदेव के जीवन में प्रेम व अनुशासन का अद्भुत समन्वय था।

भगवान महावीर के अनेकांतवाद के सिद्धांत को उन्होंने जीवन का

आश्रय स्थल बनाया। इतने विराट व्यक्तित्व के स्वामी होने पर भी विपरीत परिस्थितियों में मौन रहना उनकी अनूठी कला थी। सुविधावादी युग में भी संयमनिष्ठ रहना उनका स्वभाव था। दृष्टिकोण सकारात्मक एवं विजन क्लीयर था। विचारधारा व भावनाओं का सौंदर्य जीवन के कण-कण में दीप्तिमान था। संयमित मनोवृत्तियाँ एवं महत्वाकांक्षा शून्य जीवन ने उनकी साधना को भव्यतम शिखर पर पहुँचा दिया था। आग्रह व अहंकार की काली छाया कभी उनके जीवन का स्पर्श नहीं कर पाई। वे प्रभु की आज्ञा का पालन करने वाले एक पाप भीरू साधक थे।

गुरुदेव की प्रत्येक अदा में एक अद्‌भुत आकर्षण था। मन शांत एवं जागृत था। आचार-विचार में सादगी व वैराग्य झलकता था। उनका जीवन एक चलता-फिरता आगम ज्ञान था। साधना में निरंतरता थी परन्तु वृत्तियों में गहरा ठहराव झलकता था। गुरुदेव मोक्षमार्ग के अविश्रांत साधक थे। उनके मन में संघ एकता एवं अभिवृद्धि की प्रबल भावना थी।

योग्य शिष्यों के निर्माण में उनकी विशेष उत्सुकता थी। समाज को कुरीतियों से बचाने एवं युवा वर्ग में संस्कार पोषण की गहरी तड़प थी क्योंकि गुरुदेव का मंतव्य था कि युवा ही धर्म को एक नई दिशा दे सकते हैं। युग वर्ग अगर जागृत होगा तभी धर्म आगे बढ़ सकता है। जिनशासन का दिग्-दिगन्त तक विस्तार हो यही गुरुदेव की मनोभावना थी।

संयम के पथ पर अग्रसर होने वाले साधकों के लिए आदर्श गुरुदेव थे। गुरुदेव जिनशासन के गौरव थे। संत तो स्थान-स्थान पर मिल जाएंगे परन्तु ऐसा संतरत्न मिलना दुर्लभ है। गुरुदेव ने अपने जीवन में जो कार्य किए संसार युगों-युगों तक उसका स्मरण करेगा। मैंने भी पूर्व

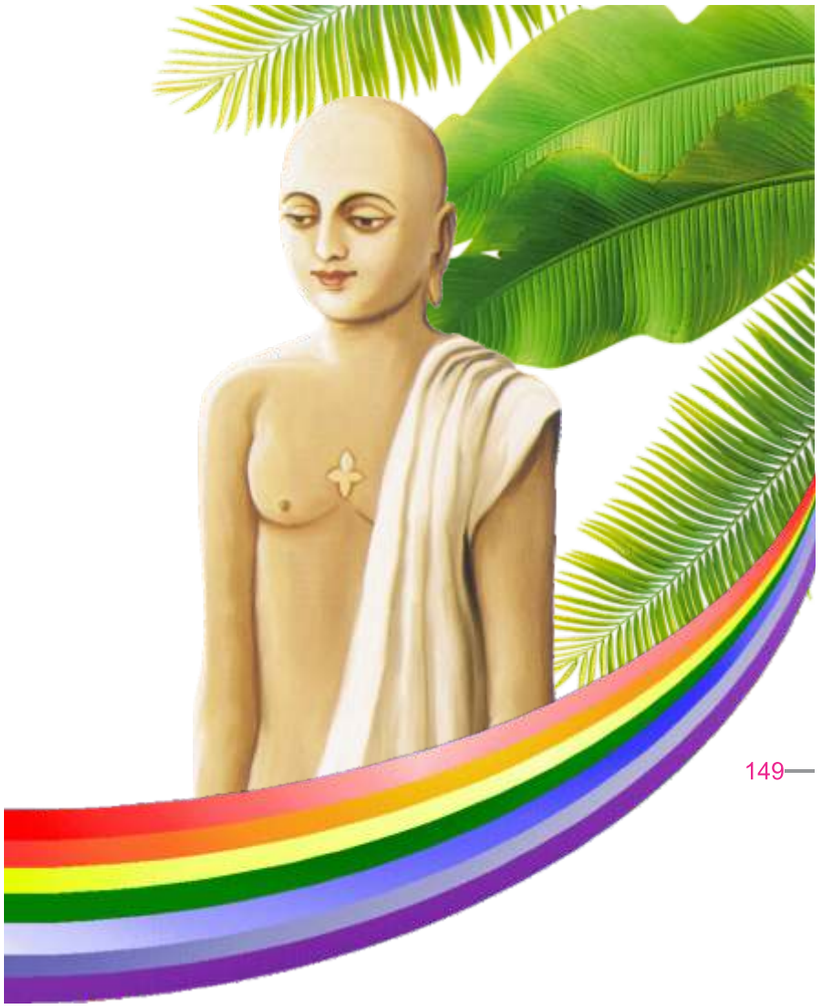



जन्म में कोई महान पुण्य किया होगा जो मुझे सुदर्शन युग में जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। गुरुदेव ने मुझे अपनाया। अपना अंतेवासी शिष्य बनाया। मुझे हृदय से लगाकर अपना शुभाशीष दिया। गुरुदेव का यह कथन कि *अरुण! तुम निकटभवी हो*। यह स्मरण आते ही मेरे मन में श्रद्धा की वीणा के तार झंकृत हो जाते हैं। मेरा रोम-रोम गुरुदेव का आभारी है।

**ऐसी दिव्य आत्मा को शत्-शत् नमन।**

गुरुदेव ने कभी माईक का
न प्रयोग किया,
न ही समर्थन किया।

# 49 माइक और गुरुदेव

**पंचमहाव्रती साधक करुणा व वात्सल्य की जीवंत मूर्ति होता है। अहिंसा के महापथ पर अग्रसर होने वाला साधक अपने आचार-व्यवहार के प्रति जागरूक रहता है। श्रमण परम्परा अनादि काल से निवृत्ति प्रधान परम्परा रही है। त्याग ही इस परम परम्परा का शृंगार है। समस्त हिंसक प्रवृत्तियों से निवृत्ति लेने वाला साधक अणु मात्र भी हिंसा का समर्थन नहीं कर सकता। गुरुदेव अहिंसा प्रधान धर्म में आस्था रखने वाले प्रतिनिधि संत रत्न थे। निवृत्ति मार्ग के अनन्य उपासक थे।**

गुरुदेव को संयम के संस्कार अपनी गुरु परम्परा से प्राप्त हुए। संयम सुमेरू पूज्य गुरुदेव श्री मयाराम जी महाराज ने जिस दृढ़ता के साथ संयम रूपी वाटिका का सिंचन किया। उसकी भीनी-भीनी खुशबू आज भी जनमानस के मन में महक रही है। उनके संयम की चमक आज भी हमें चमत्कृत कर देती है। पूज्य छोटेलाल जी महाराज ने गुरु मयाराम जी महाराज द्वारा प्रज्वलित मशाल को आगे बढ़ाया। पूज्य श्री नाथूलाल जी महाराज ने तो स्वयं गुरुदेव के मस्तक पर हाथ रखकर उन्हें संयम से अभिमंत्रित किया था। पूज्य दादा गुरुदेव की छत्रछाया में गुरुदेव के अध्यात्मिक जीवन की नींव दृढ़तर होती चली गई। दादा गुरुदेव की संयमी विचारधारा को उन्होंने अपने जीवन का आधार बनाया।

पूज्य श्री मदनलाल जी महाराज साहब ने वर्षों तक अपनी शिक्षाओं व अनुभवों के माध्यम से गुरुदेव के संयमरूपी कवच को दृढ़तम बनाया। पूज्य वाचस्पति गुरुदेव का एक ही संकल्प था भले ही प्राण चले जाए परन्तु संयम में शिथिलता स्वीकार नहीं। क्योंकि संयम ही मुनि जीवन की आधारशिला है। इन्हीं संस्कारों व विचारधाराओं को आत्मसात कर गुरुदेव ने आजीवन संयम को आंच नहीं आने दी।

पंजाब में स्थानकवासी परम्परा के अनेक सम्मेलन हुए। उन सम्मेलनों का एक ही लक्ष्य था साधु अपने संयमी जीवन को निर्दोष बनाए। क्योंकि यदि संयम रहेगा तभी स्थानकवासी परम्परा का अस्तित्व सुरक्षित रहेगा। परन्तु जब से ध्वनि-विस्तार यंत्र अर्थात् माईक का आविष्कार हुआ तो तब से बीच-बीच में आवाजें उठनी लगीं कि श्रावकों की सुविधा के लिए माइक का उपयोग करना चाहिए परन्तु इस विषय पर सभी साधक कभी एकमत नहीं हुए।



मेरे गुरुदेव ने कभी भी माइक में बोलने का समर्थन नहीं किया। गुरुदेव का स्पष्ट मंतव्य था कि माइक के लिए सचित विद्युत का उपयोग होता है। जिस कार्य में तेउकाय जीवों की हिंसा हो ऐसा कार्य कभी धार्मिक नहीं हो सकता। गुरुदेव ने दीर्घ दृष्टि से सोचते हुए कहा कि बात माइक तक ही नहीं रुकने वाली, यदि एक बार माइक का उपयोग सार्वजनिक कर दिया तो एक छिद्र से अनेक विकृतियाँ समाज में पनपने लगेंगी। जिससे संयम में शिथिलता का बोलबाला हो जाएगा।

एक बार राष्ट्रीय कांफ्रेंस के अध्यक्ष श्रीमान् लुंकड़ जी गुरुदेव के दर्शनार्थ आए तो उन्होंने कहा कि गुरुदेव आज तो आपकी आवाज में करंट है पर आयु के साथ-साथ जब वाणी का सामर्थ्य क्षीण होगा तब आप क्या करोगे? गुरुदेव ने मुस्कुराते हुए कहा कि फिर मैं अपने

आपको सुनाऊँगा। प्रवचन का उद्देश्य मात्र परकल्याण ही नहीं, स्व-कल्याण भी है।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि पूज्य वाचस्पति गुरुदेव ने कभी श्रमण संघ से त्यागपत्र नहीं दिया। मात्र माइक के कारण तात्कालिक संतों से संबंध-विच्छेद हुआ था,यह सत्य जानकर आप हैरान होंगे कि माइक पर न बोलने वालों को श्रमण संघ से बाहर गिना जाने लगा और माइक का उपयोग करने वाले श्रमणसंघी कहलाने लगे। जबकि सत्य यह है कि गुरुदेव सच्चे श्रमण संघी थे क्योंकि उन्होंने उपाचार्य जी के आदेश का पालन किया था।

एक बार पूज्य पंजाब केसरी श्री प्रेमचंद जी महाराज दिल्ली में प्यारेलाल जैन बीड़ी वालों की कोठी में विराजमान थे। उन्होंने श्रावक श्री जम्मुप्रसाद जी के माध्यम से निवेदन किया था कि कल रविवार को प्रवचन में यदि आप सम्मिलित हो तो हमें भी आपकी वाणी सुनने का लाभ मिलेगा। गुरुदेव ने कहा कि आपके दर्शन कर हमें हार्दिक प्रसन्नता होगी परन्तु माइक के कारण मैं प्रवचन सभा में आने में असमर्थ हूँ। गुरुदेव के इस विनयपूर्ण निवेदन को सुनकर पूज्य प्रेमचंद जी महाराज का हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने कहा कि कल मैं भी प्रवचन में माइक का प्रयोग नहीं करूँगा। दोनों महापुरुषों का हार्दिक मिलन हुआ। पूज्य प्रेमचंद जी महाराज बोले-तुम्हारे स्नेह के कारण आज मैं भी माइक में नहीं बोला।

इससे ज्ञात होता है कि भले ही गुरुदेव ने माइक का उपयोग नहीं किया परन्तु व्यक्तिगत रूप से उनका किसी के साथ वैर-विरोध नहीं था। संयम की सुरक्षा के साथ-साथ सबसे आत्मीयपूर्ण व्यवहार उनकी विशेषता थी। गुरुदेव का संयम भले ही कठोर था परन्तु हृदय पुष्प की भाँति मृदु था।

**त्याग व संयम की साक्षात् मूर्ति को कोटिशः नमन।**



**क्रोध दृश्य है,**
**आप द्रष्टा हैं**

**विकारों को मात्र,**
**देखना है**

गुरुदेव के जीवन में कई तरह की
प्रतिकूलताएं आईं परन्तु वाहन
का न प्रयोग किया, न ही समर्थन किया।

# 50 वाहन और गुरुदेव

**श्रमण** शब्द का अर्थ है *'श्रम करोति इति श्रमण:'* जो साधक आत्महित में श्रम करता है वही सच्चा श्रमण है। श्रमण शब्द स्वयं में ही स्वालंबन का सूचक है। भगवान महावीर ने साधक को संयम पथ पर अग्रसर होने से पूर्व स्वालंबन का पाठ पढ़ाया। भगवान का स्पष्ट उपदेश था कि यदि साधक पराश्रित होकर सुविधाओं की खोज करेगा तो वह अपने संयम को सुरक्षित नहीं रख सकता।

पूज्य गुरुदेव महावीर परम्परा के सजग सिपाही थे। जैन धर्म की मूल परंपराओं के प्रबल समर्थक थे। गुरुदेव का यह स्पष्ट अभिमत था कि यदि मूल सुरक्षित रहेगा तभी शाखाएं हरी भरी रहेगी। गुरुदेव जैन धर्म के मूल सिद्धांतों के रक्षक थे। उनके जीवन में अनेकों व्यवधान, रोग, प्रतिकूलताएं व प्रलोभन भी आए परंतु गुरुदेव जीवन में कभी असत्य व असंयम के समक्ष नहीं झुके।



सन् 1959 में वाचस्पति गुरुदेव छपरौली से यमुना नदी पारकर हरियाणा प्रांत में पधारे। उस अवसर पर गुरुदेव अपने गुरुदेव को यमुना नदी तक छोड़ने आए थे।

दिसंबर 1974 में सुशील मुनि जी के नेतृत्व में दिल्ली में विश्वधर्म सम्मेलन आयोजित हुआ। इस अवसर पाश्चात्य धार्मिक गुरुओं ने जैन मुनियों को धर्म प्रचार के लिए विदेश यात्रा का निमंत्रण दिया। उस समय पर जैन-समाज का एक धनी वर्ग जैनत्व को देश की सीमाओं से बाहर निर्यात करने की योजना बना रहा था। सुशील मुनि जी ने तो इंग्लैंड व अमेरिका जाने की घोषणा भी कर दी। संयम का समर्थन करने वाले वर्ग ने विरोध का स्वर मुखर किया। उन्होंने कहा कि निवृत्ति मार्ग का चिन्ह मुखवस्त्रिका पहनकर प्लेन की यात्रा करना जैन समाज कतई बर्दाश्त नहीं करेगा। कुछ श्रावक गुरुदेव के चरणों में आए। गुरुदेव ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि हम संयम के पक्षधर है। हम कभी असंयम का पोषण नहीं कर सकते। विदेश-यात्रा के विषय में गुरुदेव का स्पष्ट मन्तव्य था कि यह उपक्रम किसी भी दृष्टि से धर्म-प्रभावना का अंग नहीं है। इसमें स्वार्थ एवं महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति ही मुख्य लक्ष्य है क्या हमारे देश में लोग धर्म के प्रति पूर्ण जागरूक हो चुके हैं? क्या धर्म प्रचार के लिए विदेश-यात्रा का अर्थ इंग्लैंड व अमेरिका ही है? एशिया या अफ्रीका के पिछड़े क्षेत्रों में जाकर संघर्ष क्यों नहीं करते? भगवान महावीर ने तो धर्म साधना के लिए अनार्य क्षेत्र का चयन किया था।

गुरुदेव आगम के प्रति आस्थावान एवं गुरु-परम्परा के निर्वाहक थे। गुरुदेव अपने पूर्वजों द्वारा निर्मित की गई उज्जवल परम्परा को स्वार्थ या महत्त्वाकांक्षा की बलि नहीं चढ़ाना चाहते थे। उन्होंने कभी वाहन का समर्थन न करते हुए पाद-विहार को महत्त्व दिया।

पाद-विहार करना जैन साधु की मूल पहचान है। अगर किसी के मन में धर्म प्रचार की प्रबल भावना है तो वह मुख वस्त्रिका उतार कर धर्म प्रचार करने में पूर्णत: स्वतंत्र है। परन्तु महावीर के संयम मार्ग के चिन्ह को धारण कर असंयम का सेवन करना जिनशासन का जघन्य अपराध है।

गुरुदेव के जीवन काल के अंतिम वर्षों में जब गुरुदेव का जंघा बल क्षीण हो गया तब गुरुदेव ने उपचार के लिए डोली का प्रयोग स्वीकार किया। उसे भी संयमी मुनियों को ही उठाने की आज्ञा थी। डोली के उपयोग का लक्ष्य धर्म प्रचार नहीं अपितु रोग के उपचार के लिए किया था। रायकोट में अत्यंत दुर्बलता के कारण डोली का प्रयोग प्रारम्भ किया। तत्पश्चात् पटियाला, अंबाला व दिल्ली तक डोली का उपयोग किया।

अपने जीवनकाल में गुरुदेव ने कभी व्हीलचेयर का प्रयोग नहीं किया। गुरुदेव अक्सर यही फरमाते अगर शारीरिक बल क्षीण हो गया तो एक स्थान पर बैठकर साधना कर लूँगा। परन्तु वाहन का उपयोग नहीं करूँगा। परन्तु गुरुदेव को कभी स्थिरवास की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। उन्होंने पग-विहार करते-करते संसार को अलविदा कहा। कभी संयम से समझौता नहीं किया।

वर्तमान काल में तो सड़क व सेतु निर्माण का कार्य इतनी प्रगति पर है कि संतों को नदी पार करने का दोष ही नहीं लगाना पड़ता। परन्तु दूसरी ओर विहार-यात्रा में और अनेकों चुनौतियों ने सिर उठा रखा है। पथरीली सड़कें, अनियंत्रित ट्रैफिक, प्रदूषण का वातावरण और ध्वनि प्रदूषण के कारण आज सकुशल विहार करना भी एक बड़ी चुनौती है। परन्तु गुरुदेव ने इन समस्त परिस्थितियों में भी संयम की भावना को शिथिल नहीं होने दिया।

**ऐसे त्याग की मूर्ति को शत-शत प्रणाम!**

## मानव
## तू मात्र ज्ञाता बन,
## द्रष्टा बन।

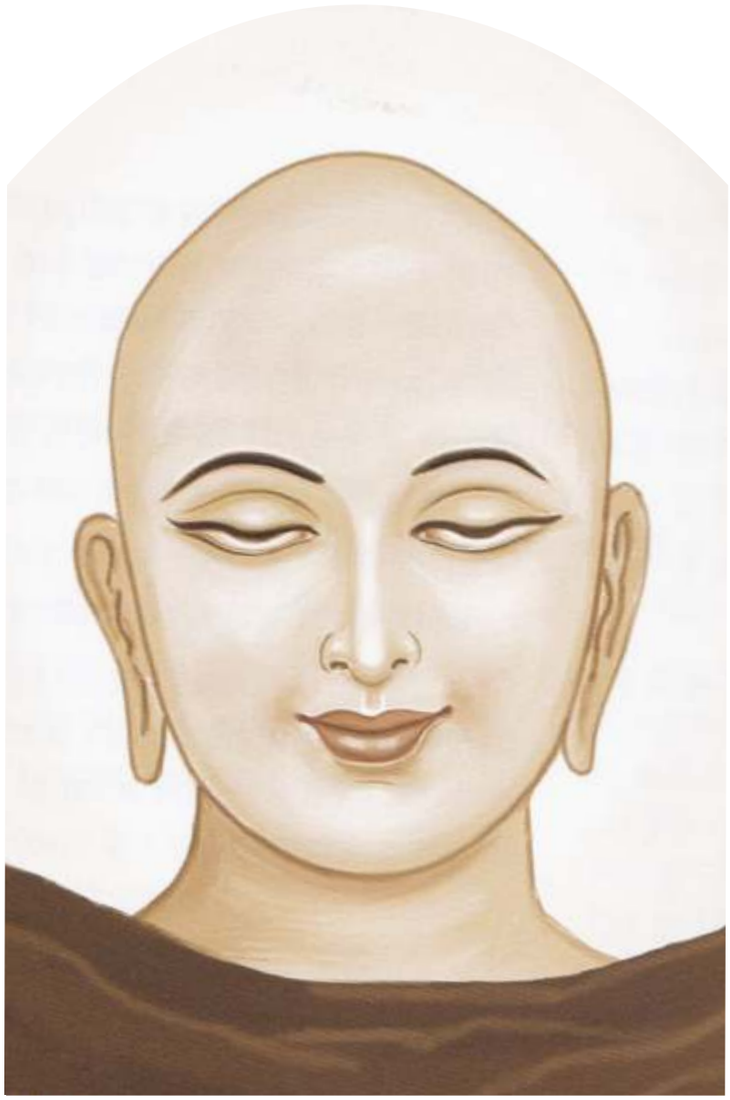

रत्नत्रय प्रकाशन
दिल्ली

## गुरु अरुणोद्घोष.....

### कट्टर नहीं पवित्र बनो

केवल एक ही संत, एक ही गच्छ, एक ही संघ से ही मत जुड़ें। जिस संत में सच्चाई हो, सादगी हो, संयम हो, वहीं मस्तक झुका दें। जैन समाज पहले ही बहुत छोटा है। श्रावक वर्ग में विघटन पैदा करके अपने पक्ष में करके श्रावकों को एक पक्षीय (संकीर्ण व कट्टर) मत बनाएं। पंजाब परंपरा शुरु से ही उदारवादी रही है।

gurusewakparivaar.rog
info@gurusewakparivaar.org
88000779013
http://www.facebook.com/gsparivaar


Google Play

Available on the App Store